तमसो मा ज्योतिर्गमय

परम का विज्ञान

सूरज डूबता है, और हम मान लेते हैं कि रात आ गई। वह मानना बड़ा झूठा है। ए क रात तो बाहर है, जो मिट जाती है, लेकिन एक रात भीतर भी है, जो किसी सूर ज के उगने से कभी नहीं मिटती। रात के अंधेरे में हम दिया जला लेते हैं और सोच ते हैं, प्रकाश हो गया, लेकिन अंधेरा ऐसा भी है, जहां हम कभी कोई दिया नहीं जल ाते और जहां कभी भी प्रकाश नहीं पहुंचता। लेकिन शायद उस अंधेरे का भी हमें को ई पता नहीं है। और जब तक उस अंधेरे का पता न हो, तब तक प्रकाश की आकांक्ष ा भी कैसे पैदा हो सकती है?

उपनिषदों के किसी ऋषि ने गाया है, परमात्मा से प्रार्थना की है कि मुझे मृत्यु से अ मृत की ओर ले चल, अंधेरे से प्रकाश की ओर ले चल। यह प्रार्थना हमने सुनी है औ र यह भी हो सकता है, यह प्रार्थना किन्हीं क्षणों में हमने भी की हो। लेकिन जिन्हें य ह भी पता न हो कि किस अंधेरे को मिटाना है, उनकी, प्रकाश के लिए की गई प्रार्थ ना का क्या अर्थ हो सकता है?

हम एक ही अंधेरे से परिचित हैं, जिसे मिटाने के लिए किसी परमात्मा की कोई जरू रत नहीं है, आदमी काफी है। वह अंधेरा हमारे पास है। हमारे भीतर भी कोई अंधेरा है, जिसका हमें पता नहीं। और जिस दिन भीतर के अंधेरे का पता चल जाए, उस दिन रोआं-रोआं, श्वांस-श्वांस एक ही प्रार्थना करने लगती है कि कैसे अंधेरे के बाहर जाऊं।

सुना है मैंने, एक फकीर था शेख फरीद। सुबह-सुबह स्नान करने नदी की तरफ जाता है। रास्ते में एक आदमी मिला और उसने पूछा, ईश्वर है? ईश्वर कहां है? ईश्वर कैसा है?

फरीद ने कहा, मैं स्नान करने जाता हूं। अच्छा हो कि तुम भी मेरे साथ चलो। हो स कता है, स्नान करने में तुझे जवाब भी दे दूं।

उस आदमी ने सोचा, स्नान करने से ईश्वर के संबंध में पूछे गए सवाल का जवाब कै से मिलेगा? लेकिन जानने के लिए फकीर के साथ हो लिया।

वे नदी पर पहुंचे। फरीद स्नान करने लगा। वह आदमी भी स्नान करने लगा। उस आ दमी ने एक डुबकी ली है और फरीद ने उस आदमी की गर्दन पानी के भीतर पकड़ ली। फरीद मजबूत आदमी थे।

वह जिज्ञासु बड़ी मुश्किल में पड़ गया। उसके प्राण एक ही आकांक्षा कर रहे हैं—कैसे बाहर निकल जाऊं, श्वांस कैसे ले लूं, कैसे बाहर निकलूं? सारा—रोआं-रोआं तड़फने लगा है।

फरीद मजबूत आदमी है, वह उसे पानी में दबाए चला गया है। बड़ी मुश्किल से—बड़ी मुश्किल से वह आदमी छूट पाया है। वह बाहर निकला है, तो फरीद पर टूट पड़ा है, कहा है—कि मैंने पूछा था, ईश्वर कहां है? और तुम मेरे प्राण लिए लेते हो? मैंने

सोचा था, किसी साधु-संन्यासी के पास जाता हूं, किसी हत्यारे के पास नहीं। यह तुम ने क्या किया?
फरीद ने कहा—यह बात पीछे कर लेंगे। अभी तुझे कुछ और पूछना है? तुम पानी के भीतर थे तो तुम्हारे मन में कितने सवाल थे?
उस आदमी ने कहा, सवाल?
फरीद ने पूछा, कितने विचार थे?
उस आदमी ने कहा, विचार? न कोई विचार था, न कोई सवाल था। एक ही ख्याल था, कैसे एक श्वांस ले लूं। फिर वह ख्याल भी मिट गया। फिर सारे प्राण एक पुकार से भर गए कि कैसे श्वांस लें। फिर मुझे पता भी नहीं कि श्वांस चाहिए भी, फिर मैं ऊपर उठ रहा था। सारी ताकत लगाई थी बाहर निकलने के लिए। लेकिन यह भी चेतन नहीं था। यह तो हो रहा था, यह भी मैं नहीं कर रहा था।
फरीद ने कहा, जिस दिन परमात्मा को ऐसे ही पुकारोगे, उस दिन पूछने की जरूरत नहीं रहेगी कि परमात्मा कहां है।
हमने बहुत बार प्रार्थना की है। प्रकाश की तरफ कौन नहीं जाना चाहता है? लेकिन अंधेरे का अनुभव ही हमें नहीं है, और अंधेरे का अनुभव न हो तो प्राण प्यास से मरते नहीं, तो हम प्रकाश की तरफ कैसे चले जाएं? फिर प्रार्थना झूठी हो जाती है। जिस प्रार्थना के पीछे प्यास न हो, उससे ज्यादा असत्य प्रार्थना कोई भी नहीं है।
हमारी सारी प्रार्थनाएं तब झूठी हो जाती हैं और ज्ञान पाने की हमारी सारी चेष्टाएं और श्रम व्यर्थ हो जाते हैं, क्योंकि अज्ञान का, अंधेरे का ठीक-ठीक बोध ही हमें नहीं हैं। आज की सुबह तो मैं यह बात करना चाहूंगा कि भीतर अंधेरा है, घना अंधेरा है। लेकिन शायद हम अंधेरे के धीरे-धीरे इतने आदी और परिचित हो गए हैं कि उससे हमें कोई पीड़ा नहीं होती। और यह भी हो सकता है कि अंधेरे में रहते-रहते हम यही भूल गए हैं कि वह अंधेरा है।
भीतर के अंधेरे का हमें कोई बोध, कोई चोट, कोई परेशानी, कोई चिंता नहीं है। और जिस आदमी को भीतर के अंधेरे से पीड़ा और एंगझाइटी पैदा न होगी, उस आदमी के जीवन में धर्म का कभी भी कोई द्वार नहीं खुलता है।
धार्मिक लोग हैं—हिंदू हैं, मुसलमान हैं, बौद्ध हैं, जैन हैं, लेकिन सचमुच धार्मिक आदमी नहीं हैं। क्योंकि बहुत मुश्किल से ही इस बात का बोध होता है कि मेरे भीतर अंधेरा है, मैं अज्ञान में हूं। मुश्किल से यह बात ख्याल में आती है कि मैं मृत्यु से घिरा हूं, अंधेरे से घिरा हूं। जीवन की बुनियादी भ्रांति में से एक भ्रांति यह है कि हम जानते हैं कि भीतर कुछ भी नहीं करना है। जो भी करना है, वह बाहर करना है।
धन कमाना है बाहर। भीतर भी कोई धन हो सकता है? यश कमाना है बाहर, भीतर भी कोई यश है? रोशनी पैदा करनी है बाहर, दिए जलाने हैं बाहर। भीतर भी कोई दिया जलाने की बात है?
जो भी करना है, बाहर करना है। भीतर करने का कोई सवाल ही नहीं है। और इसलिए भीतर अलग हम वैसे ही रह जाते हैं, जैसा जन्म के साथ पैदा हुए थे, मरने के ि

दन तक, तो कोई आश्चर्य नहीं है। हम भीतर के साथ बिलकुल तृप्त और संतुष्ट हैं। हमें भीतर कुछ परिर्वतन ही नहीं करना है। भीतर न कोई अभाव है, न कमी है। कुछ है भीतर जिसे बदलना है, कुछ है भीतर जिसे लाना है, जो नहीं है।

यूनान में एक फकीर था गुरुजिएफ। रूस का एक बहुत बड़ा गणितज्ञ आस्पेंस्की उससे मिलने गया। आस्पेंस्की ने गुरुजिएफ से कहा, हम सबके भीतर आत्मा है, कैसे उसे पाएं?

गुरुजिएफ बहुत हंसने लगा, उसने कहा, सबके भीतर आत्मा? नहीं, सबके भीतर आत्मा नहीं है। जिन्हें अमृत का कोई पता नहीं, उनके भीतर आत्मा होना न होना बराबर है।

जैसे हम कहें, प्रत्येक बीज के भीतर वृक्ष है। हो सकता है वृक्ष है नहीं। और बीज, बिना वृक्ष हुए भी मर सकता है। बीज वृक्ष भी बन सकता है। लेकिन बीजों को अगर कभी यह ख्याल पैदा हो जाए कि हम तो वृक्ष हैं, तो उनकी दौड़ बंद हो जाएगी वृक्ष होने की।

जो हमारे अंदर नहीं है, वह हमने मान लिया है, इसलिए दौड़ बंद हो गई है। प्रकाश हमारे भीतर बिलकुल नहीं है, लेकिन हमने मान रखा है। ज्ञान हमारे भीतर बिलकुल नहीं है, लेकिन हमने मान रखा है। अमृत हमारे भीतर बिलकुल नहीं है, लेकिन हमने मान रखा है। परमात्मा हमारे भीतर बिलकुल नहीं है, लेकिन हम सब दोहराए चले जाते हैं कि भगवान सबके भीतर है।

हो सकता है--परमात्मा भी हो सकता है, अमृत भी हो सकता है, बीज वृक्ष बन सकता है, और आदमी भी आत्मा बन सकता है, लेकिन आदमी अभी आत्मा है नहीं, सिर्फ एक संभावना है, एक पोटेंशियलिटी है। आदमी प्रकाश हो सकता है, लेकिन प्रकाश है नहीं।

आदमी एक गहन अंधेरा है। आदमी जान सकता है, लेकिन आदमी सोया हुआ है। हम जो हो सकते हैं, उसे हमने मान लिया है कि हम हैं। इसलिए जीवन की सारी गति अवरुद्ध हो गई है, सब रुक गया है।

अगर एक गरीब आदमी मान ले कि मैं धनी हूं, और एक भिखारी मान ले कि वह सम्राट है, फिर उस भिखारी के सम्राट होने की कोई उम्मीद न रहेगी। उसने मान ही लिया है कि वह सम्राट है। वह एक सपनों में खो गया है कि मैं एक सम्राट हूं। और वह भिखारी है, सड़क के किनारे बैठा हुआ। हाथ उसके भीख के लिए फैले हुए हैं, भीतर वह मन से सोच रहा है कि मैं सम्राट हूं। फिर यह भिखारी कभी सम्राट नहीं हो सकेगा।

हम क्या हैं, यह हमें ठीक से जानना जरूरी है, ताकि हम वह हो सकें, जो हम हो सकते हैं। लेकिन आदमी के ऊपर एक गहरी मूर्छा छा गई है। और हम सबने वह मान लिया है, जो हम हो सकते हैं, जो हम अभी हुए नहीं हैं। और इसलिए भीतर हम रुक गए हैं।

बाहर विकास हो रहा है, भीतर कोई विकास नहीं हो रहा है। तीन हजार वर्षों में आदमी ने बाहर तो बहुत गति की है—छोटे मकान बड़े मकान हुए हैं, बीमारियां कम हुई हैं, उम्र आदमी की बढ़ी है। ज्यादा सुख की सुविधाएं जुटी हैं। आदमी जमीन से चांद तक पहुंच गया है। लेकिन भीतर? भीतर हम वहीं खड़े हैं, जहां आदिम-आदमी खड़ा है। हम भीतर कहीं भी नहीं गए हैं। भीतर हम इंच भर भी नहीं हिले हैं। भीतर हम वहीं के वहीं खड़े हैं।

बाहर विकास हो रहा है, भीतर आदमी ठहर कर खड़ा हो गया है। और इसीलिए इतनी परेशानी है दुनिया में। आदमी छोटा पड़ रहा है और आदमी का विकास बड़ा होता चला जा रहा है। आदमी बहुत छोटा हो गया है, विकास बहुत बड़ा हो गया है। उसके हाथ में एटम और हाइड्रोजन बम हैं और आदमी—और आदमी बिलकुल आदिम है, बिलकुल प्रीमीटिव है। उसमें कोई विकास नहीं हुआ है।

अविकसित आदमी के हाथ में विकसित साधन बड़े खतरनाक सिद्ध हो रहे हैं। अज्ञानी आदमी के हाथ में विज्ञान का सारा ज्ञान स्वीसाइडल, आत्मघाती सिद्ध हो रहा है। यह होगा ही, यह होना बिलकुल स्वाभाविक है। लेकिन अगर यह एक बार ख्याल आ जाए कि हमारे जीवन का सारा उपक्रम बाहर ही नहीं है, जीवन का सारा श्रम बाहर ही नहीं खो जाना चाहिए। हम भी हैं, मैं भी हूं, मेरा होना भी है और मेरे होने का भी, मेरे बीइंग का भी एक विकास है।

क्या वहां प्रकाश है? कभी भीतर आंख बंद करके खोज की है? वहां प्रकाश है? वहां कोई दिया जलता है, वहां कोई सूरज निकलता है? वहां घनघोर अंधेरा है? वहां कोई प्रकाश नहीं है। वहां कोई सूरज नहीं निकलता। आंख बंद की कि हम अंधेरे में खो जाते हैं, और इसीलिए हम आंख बंद करने से डरते हैं, इसीलिए हम भीतर झांकने से भी डरते हैं।

लोग कहते हैं, सुकरात से लेकर आज तक, सारे लोग कहते हैं, नो दाऊसेल्फ, अपने को जानें, भीतर जाएं। निरंतर शिक्षा दी जाती है, भीतर जाओ, अपने को जानो। लेकिन कोई आदमी भीतर नहीं जाना चाहता है। क्योंकि भीतर आंख बंद करता है, तो अंधेरा होता है। अंधेरे से डर लगता है। बाहर कम-से-कम प्रकाश तो है। बाहर कम-से-कम दिखाई तो पड़ता है, भीतर तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता।

अगर भीतर भी कभी कुछ दिखाई पड़ता है, तो बाहर के ही प्रतिबिंब होते हैं, बाहर के ही रिफ्लेक्शन होते हैं। आंख बंद होती है, मित्र दिखाई पड़ते हैं, दुश्मन दिखाई पड़ते हैं। फिर भी आंख बंद न हुई, फिर भी हम बाहर ही हैं। बाहर की तस्वीरों को देखे चले जा रहे हैं। वहां कुछ रोशनी है। लेकिन भीतर जितने गहरे उतरते हैं, वहां उतना अंधेरा मालूम देता है। जैसे कोई गहरी खोह में उतर जाए।

सी0 एम0 जोड एक बड़ा विचारक था अभी। किसी ने जोड से कहा था—कभी अपने भीतर जाएं, कभी उतरें अपने भीतर। कब तक बाहर खोजते रहेंगे? जोड बीमार पड़ा। सोचा कि अब बीमारी में बाहर जा भी नहीं सकता हूं, डाक्टर कहते हैं, बिस्तर पर ही पड़ा रहना पड़ेगा। तो सोचा कि जब बाहर नहीं जा सकता, तो भीतर जाने की

ही कोशिश करके देख ली जाए। फुर्सत अनायास मिल गई है। सोऊंगा भी तो कब त
क सोऊंगा। आंख बंद की, तो भीतर घनघोर अंधेरा है भीतर तो कुछ भी नहीं हैं, क
हां जाएं?
हम सब भीतर जाने से बचते हैं; क्योंकि वहां अंधेरा है। यहां डर भी हो सकता है,
अनजान रास्ता भी हो सकता है? अनजान खड्ड भी हो सकती है। जो लोग ध्यान के
थोड़े भी गहरे प्रयोग करते हैं, उनको पहला अनुभव यह आना शुरू हो जाएगा। वह ऐ
सा है, जैसे किसी गहरे, अंधेरे कुएं में गिर रहे हों, जिसकी नीचे कोई बाटम नहीं है,
कोई तलहटी नहीं है, गिरते ही जा रहे हैं, अंधेरा है, डार्क एबिस है। ईसाई फकीर
ने नाम दिया है, डार्क नाइट आफ सोल, आत्मा की अंधेरी रात।
जो लोग भीतर भी उतरते हैं, पहला अनुभव अंधेरे का है, घनघोर अंधेरे का है। लेि
कन अगर कोई चाहे तो उजाले की कल्पना कर सकता है। कोई चाहे तो अंदर भी बै
ठकर कल्पना के झूठे दिए जला सकता है। सोच सकता है कि माथे के बीच में दिए
की ज्योति जल रही है। सोच सकता है कि माथे के पास सूरज चमकता है। सोच सक
ता है। कल्पना कर सकता है, इमेज बना सकता है, और तब--तब वह अपने प्रकाश
तक कभी नहीं पहुंचेगा क्योंकि अति अंधेरे से गुजरने से उसने इंकार कर दिया है। तो
जिनको भी सुबह तक पहुंचना है, उन्हें रात से गुजरना पड़ेगा। और जिन्हें भी उस प्र
काश को खोजना है, जो भीतर जल सकता है, उन्हें अंधेरी रात के भीतर गुजरना प.
डेगा।
हम सब अंधेरी रात से बचने के लिए दो काम करते हैं। एक काम तो यह करते हैं ि
क भीतर जाते ही नहीं, उस उपद्रव से ही बच जाते हैं। हम जितना अपने से डरते हैं
, उतना किसी से भी नहीं डरते हैं। अगर आपको एक कमरे में अकेला छोड़ दिया ज
ाए और कहा जाए, रह जाएं तीस दिन अकेले इस कमरे में। तो आप कहेंगे, अकेला
मैं नहीं रह सकता। इसका मतलब क्या हुआ?
इसका मतलब हुआ कि आप किसी के भी साथ रह सकते हैं, सिर्फ अपने साथ नहीं र
ह सकते। इसका मतलब यह हुआ, कोई भी साथ आप अपने से बेहतर साथ समझते
हैं। किसी के भी साथ रहकर अ ब स कोई भी काम देगा। अगर आदमी न मिले, तो
आदमी एक कुत्ता पाल लेता है। कुत्ते के साथ भी रह सकता है, लेकिन अपने साथ
नहीं रह सकता है। अकेला नहीं रह सकता। रेडियो खोल लेगा! जिस गीत को हजार
बार सुना है, उसे फिर सुनेगा। जिस अखबार को सुबह से पच्चीस बार पढ़ चुका है,
उसे फिर से उठा लेता है, उसे पढ़ना शुरू कर देता है! अपने साथ नहीं रह सकता
है आदमी।
हम इस योग्य भी नहीं कि अपने साथ रह सकें? हम खुद को भी दोस्ती के योग्य नह
ीं मानते। तो एक तो हम बाहर उलझे रहते हैं, ताकि भीतर न जाना पड़े। एक तो
हम दूसरे लोगों के साथ रहे आते हैं, ताकि अपने साथ न होना पड़े। इतने व्यस्त रह
ते हैं, इतने आकुपाइड रहते हैं कि भीतर ख्याल न आए। सुबह से सांझ, आखिरी रा
त, सोने के क्षण तक व्यस्त हैं।

इस व्यस्तता के पीछे मनोवैज्ञानिक बीमारी है, कोई आदमी विश्राम नहीं करना चाहत ा है, क्योंकि विश्राम में अपने साथ होना पड़ेगा। और अगर विश्राम के लिए पहाड़ी स्टेशन चला जाता है या समुद्र के तट चला जाता है, तो दस-पांच लोगों को साथ ले जाता है। और वहां जाकर पूरी तरह व्यस्त हो जाता है। वही दुनिया वहां पैदा कर लेता है, जो घर पर है। वही दुनिया फिर खड़ी कर लेता है। लेकिन अकेला नहीं होन ा चाहता है। और हम चौबीस घंटे इसीलिए व्यस्त हैं कि कहीं अकेले न हो जाएं।
अगर एक आदमी को जेल में रहने का मौका मिल जाए, तो वह जेल में भी अकेला नहीं रहता। वह गीता पर टीका लिखने लगता है बैठकर। अगर उसको कागज न मिले, तो दीवाल पर कोयले से लिखने लगता है। लेकिन व्यस्त हो जाता है। इधर तीस-चालीस साल में हिंदुस्तान के जेल में आने वाले लोगों ने जितनी किताबें बढ़ाईं, उतनी और किसी ने नहीं बढ़ाईं।
जेल! बड़ी जरूरी बात है कि वहां कुछ न कुछ लिखा जाए? क्योंकि वहां अकेले रहने का और खुद को एनकांउटर करने का एक मौका मिला है, जिसे चूक जाना जरूरी है? एक मौका मिला है, जहां खुद के साथ रहना पड़ेगा, और कोई किसी के साथ न हीं रहता है। कोई न कोई उलझन चाहिए, कोई न कोई व्यस्तता चाहिए। कहीं न क हीं मन लगा होना चाहिए, ताकि भीतर झांकने का मौका न मिले।
हर आदमी व्यस्त है, क्योंकि कोई भी आदमी अपने साथ एक क्षण भी नहीं रहना चा हता। हमारा प्रेम भी हमारी व्यस्तता है दूसरे के साथ। और हमारी प्रार्थना भी हमारी व्यस्तता है दूसरे के साथ। और हमारी धन की खोज भी व्यस्तता है। और यश की खोज भी व्यस्तता है। हमारी राजनीति भी व्यस्तता है। और हमारी पूजा प्रार्थना भी व यस्तता है।
जबकि धर्म में प्रवेश उनका होता है, जो कि अनआकुपाइड होने को तैयार हैं, जो सब व्यस्तता छोड़ने को तैयार हैं, थोड़ी देर को ही सही।
अनआकुपाइड होने का क्या मतलब है?
मतलब होता है—मैं किसी के साथ नहीं, अपने ही साथ हूं। थोड़ी देर के लिए मैं अपने ही साथ हूं। लेकिन अपने साथ होना कठिन गुजरता है क्योंकि अपने साथ होते ही घनघोर अंधेरा घेर लेता है।
बाहर जो अंधेरा आपने देखा है, वह बहुत घनघोर अंधेरा नहीं है। बाहर जिसे हम अंधेरा कहते हैं। वह एक अर्थों में प्रकाश ही है, क्योंकि प्रकाश की भी डिग्रियां हैं, थोड़े कम प्रकाश को हम अंधेरा कहते हैं। और थोड़े कम प्रकाश को और ज्यादा अंधेरा कहते हैं। बाहर एब्सलूट डार्कनेस है ही नहीं। बाहर सब अंधेरा रिलेटिव है। और इसलिए बाहर एब्सलूट लाया नहीं जा सकता। तब प्रकाश भी रिलेटिव होगा, सापेक्ष होगा।
बाहर प्रकाश और अंधेरा एक ही चीज के, एक ही इस्पेक्ट्रम के दो छोर हैं। लेकिन भीतर एब्सलूट लाइट, पूर्ण प्रकाश की संभावना है। ध्यान रहे, भीतर एब्सलूट अंधेरे से गुजरने की हिम्मत होनी चाहिए। पूर्ण अंधेरे से गुजरने की हिम्मत होनी चाहिए। एक

अंधेरी रात भीतर है, लेकिन हम उससे बचना चाहते हैं। बचने के लिए एक उपाय य ह है कि हम उलझें रहें बाहर। जन्म से लेकर मरने तक, हम उलझे ही उलझे समाप्त हो जाते हैं।

आपने देखा होगा, आदमी रिटायर होता है तो बड़ा परेशान होता है। आदमी की नौ करी छूटती है, बड़ी मुश्किल हो जाती है। जो आदमी बीस साल जिंदा रह सकता था , वह पांच-दस साल ही जिंदा रहता है। दस साल की उम्र खो गई। रिटायर्ड आदमी दस-पांच साल की उम्र खो देता है। इसीलिए तो कोई भी रिटायर्ड नहीं होना चाहता है—चाहे सत्तर साल का हो जाए, चाहे पचहत्तर साल का हो जाए, तब भी राष्ट्रपति होना चाहता है, प्रधानमंत्री होना चाहता है।

कोई भी रिटायर्ड नहीं होना चाहता। अगर मरे हुए आदमी को मौका मिले तो राष्ट्रपि त होने के लिए खड़े हो जाएंगे। वह तो गनीमत यह है कि यहां उन्हें दफना देते हैं, छोड़ते नहीं हैं। उनको या तो कब्र में गाड़ देते हैं, या आग लगा देते हैं। शायद इसी डर से कि वह वापस न आ जाएं, खड़े न हो जाएं।

कोई आदमी खाली नहीं होना चाहता है और इसलिए रिटायर्ड आदमी की उम्र कम ह ो जाती है—मनोवैज्ञानिक कहते हैं, ठीक ही कहते हैं कि इसलिए कम हो जाती है कि पहली दफे उनको अपने साथ रहना पड़ता है। और जैसे ही वह अपने साथ होता है, बड़ी मुश्किल में पड़ता है। खुद की कंपनी बड़ी मुश्किल है, खुद का साथ बड़ा मुश्कि ल है। इसलिए हर आदमी व्यस्त है। रिटायर्ड आदमी नई व्यस्तताएं खोज लेता है।

चर्चिल, पीछे के दिनों में छूट गया था तब—छूट गया था या छुड़ा दिया गया था—जो लोग छुड़ा दिए जाते हैं, वे भी यह कहते हैं कि हम छूट गए। जिनको धक्के दे दिए जाते हैं, वे भी यह कहते हैं कि हम बाहर आ गए हैं। चर्चिल आखिरी दिनों में छूट गया था, या छुड़ा दिया गया था। मेरे एक मित्र उसको मिलने गए थे। वह अपने बगी चे में काम कर रहा था—

मित्र ने पूछा—यह क्या कर रहे हैं?

चर्चिल ने कहा—क्या करूं? मैं एक मिनट भी बैठा नहीं रह सकता। इसलिए पौधों के लिए गड्ढा खोद रहा हूं।

गड्ढा खोदना बुनियादी जरूरत नहीं थी; परंतु चर्चिल की भी तो कुछ भीतरी जरूरत है? वह जो सुबह से रात तक राजनीति में उलझा था, वह बुनियादी सेवा ही नहीं थ ी, वह व्यक्ति की भीतरी जरूरत भी है। अब वह आदमी खाली हो गया, अब उससे कोई नहीं कहता कि छोड़ो। अब वह बगीचे में गड्ढा खोद रहा था। वह कहता है बिना किए एक मिनट नहीं रहा जा सकता।

औरंगजेब ने अपने बाप को बंद कर दिया था। आखिरी वक्त बाप को बंद कर दिया था कारागृह में। तो औरंगजेब के बाप ने एक चिट्ठी भेजी और औरंगजेब को कहा—कि एक काम करो, यहां अकेले रहना बहुत मुश्किल है। तुम एक काम करो, इतनी कृप ा करो कि तीस बच्चे भेज दो, जिनको मैं पढ़ाता रहूं।

औरंगजेब ने अपनी आत्मकथा में लिखवाया है कि मेरे बाप को फुरसत में रहना जरा भी पसंद नहीं है। उसने तीस बच्चे बुला लिए और अब उसने पढ़ाने का काम शुरू कर दिया है। और तीस बच्चों के बीच में फिर उसने वह अकड़ वापस पा ली है, जो एक बादशाह की होती है। तीस बच्चों के बीच में वह फिर बादशाह हो गया है। फिर उनको डांट रहा है, ठीक कर रहा है, सुधार रहा है, समझा रहा है। पढ़ा रहा है, बुझा रहा है। फिर उसने चारों तरफ चिंताएं खड़ी कर लीं। वह अकेला नहीं रह सकता, वह आराम नहीं कर सकता।

कौन रह सकता है अकेला?

जो आदमी अकेला रह सकता है, वह परमात्मा के पास पहुंच सकता है। और जो आदमी अकेला नहीं रह सकता है, वह कभी भी भीतर प्रवेश नहीं कर सकता है। अकेला होना तो भीतर होने की पहली शर्त है। अकेले होने की, अव्यस्त होने की, अनआकुपाइड होने की थोड़ी हिम्मत जुटाएं।

लेकिन या तो हम बाहर व्यस्त होते हैं। या बाहर से ऊब गए हैं और हर आदमी ऊब जाता है। कब तक कोई आदमी, कितनी ही कम बुद्धि का आदमी हो, तो भी रिपिटीशन उबा देने वाला है। ज्यादा बुद्धि के लोग जल्दी ऊब जाते हैं। बुद्ध जैसे लोग जवानी में ऊब जाते हैं। कम बुद्धि के लोग बुढ़ापे में ऊबते हैं, इसलिए बुढ़ापे में धार्मिक हो पाते हैं। ज्यादा बुद्धिमान आदमी हो तो बचपन में ही धार्मिक हो जाएगा। कम बुद्धि का आदमी हो तो फिर ख्याल मरते वक्त तक आएगा। लेकिन हर आदमी ऊब जाता है।

सिर्फ जानवर नहीं ऊबते हैं। आपने जानवर को कभी बोर होते नहीं देखा होगा। किसी भैंस को आपने कभी बोर्डम में नहीं देखा होगा कि ऊब गई हो, परेशान हो। भैंस कभी नहीं ऊबती। ऊबने के लिए बुद्धि चाहिए, और जितनी तेज बुद्धि हो, उतनी जल्दी ऊब पैदा हो जाती है।

बुद्ध ने एक आदमी को मरते देखा और पूछा कि क्या मैं भी मर जाऊंगा। हमने पूछा कभी एक आदमी को मरते देखकर? हम हर रोज न मालूम कितने आदमियों को मरते देखते हैं। हम कभी नहीं यह पूछते कि क्या मैं मर जाऊंगा। हम अपने को टालते हैं कि कहीं दूसरे के मरने से मेरे मरने का ख्याल न आ जाए।

इसे टालने की तरकीब क्या है हमारी? हम दूसरे के साथ बड़ी सहानुभूति करते हैं, जबकि सहानुभूति अपने साथ करनी चाहिए। हम कहते हैं कि बेचारा मर गया। हम कभी यह नहीं कहते कि बेचार अब मरेगा। हम अपने माइंड को डाइवर्ट करते हैं, उसकी सहानुभूति में कि बेचारा मर गया। दो बच्चे छोड़ गया, पत्नी छोड़ गया, बड़ा बुरा हुआ। ऐसा नहीं होना था, क्या इलाज नहीं हो पाया? क्या नहीं हो पाया? हम उस आदमी में अपने को उलझाकर, वह जो एक सवाल उठता है हमारे भीतर—आकर खड़ा हो जाता है कि क्या मैं मर जाऊंगा? उससे हम फिर बच जाते हैं। दो घंटे बाद वह आदमी भूल जाता है, दूसरे काम में हम लग जाते हैं।

बुद्ध ने पूछा, क्या मैं मर जाऊंगा? बुद्ध ने एक बूढ़े हुए आदमी को देखकर पूछा कि क्या मैं बूढ़ा हो जाऊंगा?

यह हम कभी नहीं पूछते? असल में हम मैं के संबंध में सवाल ही नहीं उठाते। हम मैं को हमेशा सवाल के बाहर रख देते हैं। हम यह पूछ सकते हैं, फलां आदमी बेचारा, कितनी जल्दी बूढ़ा हो गया है? हम यह पूछ सकते हैं, फलां आदमी कितना बीमार होता है। हम यह पूछ सकते हैं, फलां आदमी मर गया, अच्छा नहीं हुआ, या अच्छा हुआ। लेकिन हम इन सवालों को अपने मैं से कभी नहीं जोड़ते हैं। जबकि अगर कोई जोड़े तो हम कहेंगे, ऐसी बातें मत करो।

एक महिला मेरे साथ सफर में थी, कुछ दिन हुए। वह कहने लगी आत्मा तो अमर है ।

मैंने उससे कहा, अगर मैं तुझे यह बताऊं कि आज जो यह ट्रेन चल रही है, टकरा जाएगी और हम और तुम दोनों मर जाएंगे।

उसने कहा, ऐसी अपशकुन की बातें मत कहिए। ऐसी बात ही मत कहिए। आप दूसर ी बात करिए। आप जैसे आदमी ऐसी बात कहें, तो बहुत डर लगता है कि कहीं टक रा न जाए, एक्सीडेंट न हो जाए। यह बात ही मत करिए।

मैंने उससे कहा–अभी तू कहती थी, आत्मा अमर है, और अब तू कहने लगी, अपश कुन की बातें मत करिए। अगर आत्मा अमर है तो मृत्यु अपशकुन नहीं है, क्योंकि मृ त्यु है ही नहीं। और अगर मृत्यु अपशकुन है, तो आत्मा अमर है, यह बात झूठ है। इन दोनों में से कुछ एक तय कर लें।

उसने कहा–वह कुछ भी हो, मैं मरने के बावत कुछ भी नहीं जानना चाहती हूं।

हममें से कोई भी नहीं सोचता है। इसलिए हम मरघट गांव के बाहर बनाते हैं। बनान ा चाहिए बीच में, ठेठ बाजार में। क्योंकि हर बच्चा देख सके, जागे। जबसे होश आए , तब से उसको मरघट दिखाई पड़ना चाहिए। क्योंकि मरघट से बड़ी सचाई जिंदगी में दूसरी नहीं है। लेकिन उसको हम झूठ किए हुए हैं। उसे इतनी दूर बनाए हुए हैं ि क वहां न कोई जाए, न कोई देखे। छोटे बच्चों को कभी हम मरघट ले जाते ही नहीं । कोई मर जाए, रास्ते से निकलता हो तो छोटे बच्चों को मां-बाप भीतर बुला लेते हैं कि भीतर आओ, कोई मर गया है। कोई मर गया है, तो सब बाहर आ जाओ, क योंकि तुम्हें भी मरना पड़ेगा। इस आदमी को ठीक से देख लो, इस सवाल को भीतर जाने दो। इस सवाल को अपने मैं से जुड़ने दो।

लेकिन हम नहीं जुड़ने देते। कोई मर रहा है हमेशा, हम कभी नहीं मरते। हमेशा को ई और मरता है, समबडी डाइट, वह कोई और है। लेकिन कभी यह कोई और की जगह, मेरा मैं नहीं होता, इसको हम जोड़ते ही नहीं। हम गलत हैं।

हम जिंदगी के सब बड़े सवाल टालते हैं, जिनसे भीतर जाना पड़े।

और इसलिए जिंदगी को ही हम टाल देते हैं। और इसीलिए हम ऊब भी नहीं पाते, नहीं तो हम भी ऊब जाएं।

कम से कम बुद्धि का आदमी भी धीरे-धीरे ऊब जाता है। वही दफ्तर सुबह, वही सांझ, वही सोना, वही उठना, वही बैठना। चौबीस घंटे वही। अगर कोई ऊब भी जाता है आदमी, तो वह नई रुटीन पूछता है। वह यह नहीं पूछता कि मैं बाहर से ऊब गया, तो मैं भीतर जाऊं? वह यह पूछता है कि मैं इससे ऊब गया, अब मैं क्या करूं? एक आदमी धन कमाते-कमाते ऊब जाता है, तो वह कहता है, माला फेरूं? मंदिर जाऊं? गीता पढ़ूं? कि क्या करूं। फिर वह बाहर एक नई रुटीन पूछता है। एक आदमी सिनेमा देखते-देखते ऊब गया, तो वह कहता है, अब मैं सुबह चार बजे उठूं? प्रार्थना करूं? क्या करूं?

हम बाहर से कभी नहीं ऊबते! बाहर एक चीज से ऊबते हैं, तो सब्स्टीट्यूट, तत्काल दूसरा खोज लेते हैं। लेकिन रहते सदा बाहर हैं, भीतर कभी नहीं आते। चाहे माला जपो, और चाहे सिनेमा देखो, दोनों हालत में आदमी बाहर होता है। चाहे गीता पढ़ो, चाहे उपन्यास पढ़ो, दोनों हालत में आदमी बाहर होता है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। हम बाहर ही उलझे होते हैं। हमारी कांससनेस बाहर ही उलझी होती है। वह गीता अच्छी किताब है, पुराण अच्छी किताब है, कोई किताब बुरी हो सकती है। दूसरी बात है, किताब का अच्छा और बुरा होना दूसरा सवाल है, लेकिन किताब बाहर है। और हमारी चेतना बाहर उलझी रहती है।

हम चेतना को कभी भीतर की तरफ नहीं लाते। वहां एक बड़ी अंधेरी रात हमारी प्रतीक्षा कर रही है। उसका एक अनकांसेस फियर है, एक डर हमारे मन में है कि वहां गए, तो अंधेरा है। और वहां गए तो अनजान, और वहां गए तो अननोन, और वहां गए तो कोई ऐसे रास्ते, जिन पर हम कभी नहीं चले। और वहां जाएं, तो कहीं हम खो न जाएं, भटक न जाएं; क्योंकि हमारी सब तख्तियां, हमारी पदवियां, हमारे दरवाजे पर लगे हुए बोर्ड, वह सब यहीं रह जाएंगे। हम वहां भीतर जाएंगे, न वहां नाम होगा, न वहां पिता होगा, न धर्म होगा, न ठिकाना होगा, न कोई बिजली होगी, न कोई बदली होगी, न कोई पद-प्रतिष्ठा होगी। वहां हम सब कपड़े बाहर ही छोड़ जाएंगे।

अंदर हम नंगे, खाली, शून्य की तरह घुसने की हिम्मत नहीं कर पाते हैं। बहुत अंधेरा है, बाहर लौट आते हैं और बाहर उलझ जाते हैं। एक रास्ता है कि आदमी बाहर उलझा रहे, बाहर ही सब्स्टीट्यूट खोजता रहे उलझने के। और एक रास्ता है कि भीतर जाएं और कल्पना में उतर जाएं। इमीजिनेशन में चला जाए। बाहर से छोड़ दे। न किताब पढ़े, न मंदिर जाए, न दुकान चलाए। बाहर की दुनिया का ख्याल ही छोड़ दे, भीतर चला जाए।

लेकिन फिर भीतर एक कल्पना की दुनिया न बना ले। भगवान को खड़ा न कर ले कि मुरली बजाते हुए खड़े हो जाएंगे। आदमी भगवान को निर्मित करने की क्षमता रखता है। और अधिक भगवान आदमी के ही निर्माण किए हुए होते हैं।

ऐसे भगवान की खोज बहुत मुश्किल है, जो हमारा निर्माण किया हुआ नहीं होता है। लेकिन जब तक ऐसे भगवान की खोज न हो तब तक जीवन बेकार है। भीतर हम भ

गवान को ही खड़ा कर लेते हैं, और उस भगवान के आस-पास नाच सकते हैं, खुश हो सकते हैं। भीतर हम कल्पना का सूरज बना सकते हैं और उसकी रोशनी फैला स कते हैं। और पूरे शरीर में रोशनी भर जाए, ऐसा लग सकता है। लेकिन वह सब कल पना का चमत्कार होगा।

कभी हम भीतर नहीं गए कहीं कोई प्रकाश नहीं हुआ, तो हमने एक झूठा प्रकाश भी कल्पित का लिया है। हम अंधेरे में ही नहीं उतरे हैं। हमने अंधेरे की पीड़ा और तक लीफ को नहीं जाना है। उस एंग्विस, संताप से नहीं गुजरे, जो अंधेरे का है। हम अंधे रे में गए ही नहीं, जहां कि हमें नग्न हो जाना पड़ता है, सारे वस्त्र छिन जाते हैं। स ब रास्ते खो जाते हैं। सब जाना-पहचाना नक्शा खो जाता है और अंधेरे में कोई रास्त ा नहीं सूझता है। चिल्लाते हैं, कोई आवाज नहीं सुनता, पुकारते हैं, कोई साथ नहीं होता।

हमने उस तकलीफ को नहीं झेला। उस अंधेरे में जाने की तकलीफ को मैं तपश्चर्या कहता हूं। वही तपश्चर्या है एकमात्र।

भूखा मरना तपश्चर्या नहीं है। भूखा-मरना अभ्यास की बात है। कोई आदमी थोड़ा अभ याा कर ले, तो खाना खाना मुश्किल हो जाता है। खाना ही खाना नहीं, खाना खाना ही मुश्किल हो जाता है। कोई आदमी अभ्यास कर ले।

मैंने सुना है, जर्मनी में एक बड़ा सर्कस था। उस सर्कस में एक आदमी ऐसा भी था ज ो उपवास के लिए प्रसिद्ध था। उसका भी एक स्टाल होता था। जहां लोग उसे देखने आते थे। उसने बीस दिन उपवास किए, पच्चीस दिन उपवास किए, पैंतीस दिन उपवा स किए। वह आदमी बिलकुल सूखता जाता था, और उपवास और उपवास, उसका य ही काम था। इसके लिए उसे पैसे मिलते थे।

एक बार ऐसा हुआ कि एक बहुत बड़े नगर में यह सर्कस कई महीने चला। सर्कस में और भी अजीब-अजीब चीजें थीं देखने लायक। लोग उन सब चीजों को देखते, सर्कस देखते थ। उसकी झोपड़ी बिलकुल पीछे की तरफ थी।

धीरे-धीरे लोग उसकी झोपड़ी भूल गए। कई महीने तक कौन रोज-रोज देखने जाता? उपवास करने वाले में देखने जैसा क्या है?

उपवास करने वाले को गांव बदल देने चाहिए, नहीं तो फिर देखने वाले मिलना बहुत मुश्किल हो जाते हैं। उसे दूसरा गांव चुनना चाहिए, दो-चार दिन में गांव बदल लेना चाहिए।

लेकिन बहुत मुश्किल मामला था। एक ही गांव में उपवास करने वाले को कौन देखने जाए? कुछ दिनों में मैनेजर भी भूल गया। कोई छः महीने बाद जब सर्कस उखड़ने लगा तब लोगों को ख्याल आया कि अपने पास एक आदमी भी हुआ करता था, जो उपवास करने वाला है। वह कहां है? कुछ दिनों से उसका पता ही नहीं।

तो मैनेजर और दूसरे लोग भागे हुए गए उसकी झोपड़ी की तरफ। वह आदमी भीतर करीब-करीब मरने के आखिरी क्षणों में पहुंच गया है। श्वांस अटकी थी सिर्फ उसकी।

मैनेजर ने कहा—पागल! अगर तुझे लोग देखने नहीं आते थे, तो तूने खाना क्यों नहीं शुरू कर दिया?

उस आदमी ने बड़ी धीमी आवाज में, जान बिलकुल निकलने के करीब थी, कहा—खाना? पहले तो खाना छोड़ने में बड़ी तकलीफ हुई, अब खाना खाने में उतनी तकलीफ होती है।

अभ्यास की बात है। कोई देखने नहीं आता था, लेकिन वह खाना नहीं खाता था। अगर तीन-चार दिन आप भी खाना न खाएं तो पांचवे दिन से भूख मरनी शुरू हो जाती है, क्योंकि शरीर एक नई तरकीब खोज लेता है। शरीर अपने को ही खाने लगता है भीतर से फिर बाहर से खाने की जरूरत नहीं रह जाती। इसलिए तो भोजन छोड़ने वाले आदमी का वजन एक पौंड डेढ़ पौंड रोज गिरता चला जाता है। अपना ही मांस पचना शुरू हो जाता है।

उपवास एक तरह का मांसाहार है, खुद का मांसाहार है। दूसरे का मांस खाओ, तो ब.डा झंझट खड़ा होता है। अपना ही खाओ, तो कोई झगड़ा-झंझट नहीं। लेकिन अपना ही मांस शरीर पचाना-शुरू कर देता है, अपनी ही चर्बी पचाना शुरू कर देता है। फिर बाहर से भोजन लेने की क्षमता खो जाती है, नया रास्ता खुल जाता है।

शरीर के पास बड़ी व्यवस्थाएं, इमरजेंन्सी व्यवस्थाएं हैं। अगर आप खाना बंद करेंगे, शरीर भीतर से पचाना शुरू कर देगा और इसीलिए शरीर बहुत से डिपोजिट करके रखता है। बहुत सा भोजन इकट्ठा करके रखता है। मोटा जो आदमी है, वह मोटा इसीलिए है कि उस आदमी ने ज्यादा भोजन इकट्ठा कर लिया है। जैसे तिजोरी में कुछ आदमी ज्यादा इकट्ठा कर लेते हैं, मोटे आदमी ने शरीर में ज्यादा डिपाजिट कर लिया है। वह घबराहट से कर लिया है उसने।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं, मोटा आदमी एक तरह का कंजूस आदमी है। और अक्सर कंजूस और मोटा साथ-साथ मिले हैं। उसका कारण होता है। उसका कारण कुल इतना है, उसका जो मन है, वह इकट्ठा करने वाला है। वह सब तरफ इकट्ठा करता है। वह शरीर में इतनी चर्बी इकट्ठा कर लेता है कि कब जरूरत पड़ जाए। मान लो कि कई दिन तक भोजन न मिले, तो फिर क्या होगा? तो वह इकट्ठा कर लेता है। वह बहुत भीतरी कंजूसी है।

अगर आदमी उपवास करे, तो दो चार दिन में अभ्यास हो जाता है। और अगर उपवास करने को आदर मिलता हो, तो अभ्यास बहुत आसानी से होता है। क्योंकि अहंकार की तृप्ति जिस बात से भी होती है। आदमी उसे करने में हमेशा सरलता अनुभव करता है। अगर आप शीर्षासन करने वाले को आदर देते हों, तो आदमी शीर्षासन करके खड़ा होता है, और अगर आप घंटों शीर्षासन करने वालों को महात्मा समझतें हों, तो आदमी चौवीस घंटे शीर्षासन भी कर सकता है। आदमी के अहंकार की बड़ी लीलाएं हैं, सिर्फ उसके अहंकार को रस मिलना चाहिए।

उपवास करने को इसीलिए मैं कोई तपश्चर्या नहीं कह सकता। कांटों पर लेट जाना भी कोई तपश्चर्या की बात नहीं है, सिर्फ अभ्यास की बात है। और शरीर इम्यून हो जाता है, बहुत जल्दी सक्षम हो जाता है। कांटे की चुभन फिर पता नहीं चलती।

मैं जब यूनिवर्सिटी में पढ़ता था, तो एक तख्त पर ही सोता था, तो वर्षों से तख्त पर सोता था। फिर एक बहुत बड़े परिवार में इंदौर में मेहमान हुआ। उन्होंने मेरे लिए बहुत अच्छा इंतजाम किया। उनके गद्दे ऐसे थे कि उसमें कोई ग्यारह-बारह इंच, पंद्रह-पंद्रह इंच मोटे गद्दे थे, कि उनमें पूरा आदमी समा जाए।

मैं उन पर सो तो गया, लेकिन नींद आनी मुश्किल हो गई। आधा घंटा बीता, एक घंटा बीता। करवट बदलता हूं, नींद नहीं आती। बड़ी मुश्किल में पड़ गया कि हो क्या गया? इतनी आराम की उन्होंने व्यवस्था की है, मुझे तकलीफ क्यों हो रही है, आखिर दो बज गए, फिर यही रास्ता रहा कि मैं जमीन पर नीचे उतर कर सो जाऊं। जमीन पर सोया, तब बड़ी अच्छी नींद आई।

सुबह उन्होंने आकर देखा, मैं जमीन पर सोया हुआ हूं। उन्होंने कहा—आपने यह क्या किया? क्या गद्दा पसंद नहीं आया?

मैंने कहा—गद्दा बहुत पसंद आया, लेकिन शरीर की आदत खराब हो गई है। अब गद्दे की आदत डालने के लिए फिर अभ्यास करना पड़ेगा।

शरीर इम्यून हो जाता है किसी भी चीज के लिए। भंगी हैं, हजारों वर्षों से हम उनसे पाखाना ढुलवा रहे हैं। हम सोचते हैं। विचारों की कितनी बदबू आती होगी। यह बात बिलकुल सरासर झूठ है। उनको बदबू आती ही नहीं। बदबू आती होती, वे कभी की बगावत कर देते। वे इम्यून हो गए हैं।

हां, हमारी बाबत में तो यह भी कह सकते हैं आप, कि हमको बहुत बदबू आती है। बदबू आती नहीं है। पाखाने की बदबू इतनी अच्छी नहीं है कि रोज-रोज ली जा सके। अगर कोई अच्छे से अच्छा, कीमती से कीमती इत्र भी आप लगाएं तो दो दिन के बाद उसकी सुगंध आनी बंद हो जाती है। कीमती से कीमती साबुन का उपयोग करें, दूसरों को उसकी खुशबू आ सकती है, आपको नहीं आएगी। शरीर आदी हो जाता है। और शरीर जिस चीज के लिए आदी हो जाता है, वही सहज हो जाती है। कांटों पर सो सकते हैं, अंगारों पर चल सकते हैं, आदत बनाने की बात है। इनसे तपश्चर्या का कोई भी संबंध नहीं है।

तपश्चर्या तो सिर्फ एक है धर्म की दुनिया में, वह है भीतर की अंधेरी रात में प्रवेश करना। और उसकी कोई आदत नहीं बनाई जा सकती। क्योंकि उसमें हम कभी गए नहीं। और उसकी आदत बन भी नहीं सकती। क्योंकि जैसे उसके भीतर प्रवेश कर रहे हैं, या तो बाहर भागने का मन होता है और या और भीतर चले जाने को। उसमें रुका नहीं जा सकता। पूर्ण अंधकार को कोई भी सहने में समर्थ नहीं है।

दो ही उपाय हैं, दो ही आल्टरनेटिव हैं—अंधकार पूरा सामने आएगा, तो या तो आप फौरन भागकर बाहर आ जाएंगे, जहां सूरज है, प्रकाश के बल्ब जले हुए हैं, लोग हैं, सड़कें उजाली हैं, मकान हैं, सब प्रकाशित हैं, आप वहां आ जाएंगे। और या अगर ि

हम्मत की तो भीतर जाने की कोशिश करेंगे। वहां भी एक प्रकाश है लेकिन उस प्रकाश का हमें कोई पता नहीं है इसलिए हम फौरन बाहर चले आते हैं। फौरन बाहर चले जाते हैं। हम भीतर के अंधकार में कभी प्रविष्ट ही नहीं होते।

भीतर के अंधकार में प्रवेश को मैं साधना कहता हूं, तपश्चर्या कहता हूं।

और जो भीतर के अंधकार में प्रविष्ट होगा, वह उस प्रकाश को भी पा सकता है, जिसकी बातें हमने सुनी हैं, लेकिन जिसका हमें कोई भी पता नहीं है। सुनते हैं हम। कुरान भी यही कहती है, गॉड इज लाइट, ईश्वर प्रकाश है। बाइबिल भी यही कहती है, उपनिषद भी यही कहते हैं, हजारों-हजारों लोगों ने भी यही कहा है, प्रकाश है।

लेकिन हमने तो अंधेरा भी नहीं जाना, तो हम प्रकाश को कैसे जान सकते हैं? प्रकाश को जानने की शर्त है एक ही, कि इस अंधेरे को जानने को तैयार हो जाएं। कोई कीमत तो चुकानी ही पड़ेगी। लेकिन धर्म की दुनिया में हम कोई कीमत नहीं चुकाना चाहते हैं। हम बिना कीमत के चाहते हैं, सस्ता, मुफ्त।

धर्म अकेली चीज है, जिसे हम मुफ्त चाहते हैं।

एक गांव में बुद्ध ठहरे। एक आदमी ने आकर कहा बुद्ध से कि आप इतने वर्षों से समझा रहे हैं लोगों को। कितने लोगों को वह प्रकाश मिला? कितने लोगों ने मोक्ष जाना? कितने लोग निर्वाण को पा गए? कितने लोगों ने जान लिया है? इसे मैं पूछने आया हूं।

बुद्ध ने कहा—सांझ आना। तब तक एक छोटा काम कर लाओ। यह कागज ले जाओ और गांव में हर आदमी से पूछकर आओ कि वह चाहता क्या है?

वह आदमी गया। छोटा-सा गांव है। उसने एक-एक आदमी से गांव में जाकर पूछा—कोई दो-तीन सौ लोग रहते होंगे। एक-एक से पूछा कि तुम चाहते क्या हो?

किसी ने कहा—बेटा नहीं है, बेटा चाहता हूं। किसी ने कहा, धन नहीं है, धन चाहता हूं। किसी ने कहा, बीमार हूं, स्वास्थ्य चाहता हूं। किसी ने कुछ कहा, किसी ने कुछ कहा।

सांझ होते-होते उस आदमी को उतर मिल गया। वह लौटकर नहीं आया बुद्ध के पास। क्योंकि एक भी आदमी ने यह नहीं कहा कि मैं निर्वाण चाहता हूं, सत्य चाहता हूं, मोक्ष चाहता हूं, परमात्मा चाहता हूं। हालांकि ये तीन सौ लोग कई बार मंदिर में हाथ जोड़े देखे गए थे। उस आदमी ने पूछा कि लेकिन मैंने तुम्हें मंदिर में देखा है। उस लोगों ने कहा—मंदिर तो जरूर गए, लेकिन परमात्मा के लिए नहीं। वह लड़की की शादी करनी है,उसी के लिए भगवान के मंदिर में चले गए थे। उस लड़के को नौकरी नहीं मिलती है, उसी के लिए भगवान के मंदिर में चले गए। लेकिन बहुत शक आता है तुम्हारे भगवान पर; क्योंकि लड़कों को अभी तक नौकरी नहीं मिली, प्रार्थना करते बहुत दिन हो गए।

बुद्ध ने उस आदमी को बुलवाया और कहा—उस आदमी को लाओ। वह आया क्यों नहीं?

उस आदमी ने कहा—मैं क्या करूंगा? उत्तर मुझे मिल गया है।

बुद्ध ने कहा—फिर भी ले आओ।
वह आदमी गया। बुद्ध ने पूछा—क्या कहा लोगों ने? एक भी आदमी जानना चाहता है सत्य को?
उस आदमी ने कहा—कोई भी नहीं।
तो बुद्ध ने कहा—मैं किसी को जबर्दस्ती सत्य की दुनिया धक्का दे सकता हूं और मैं कोई निर्वाण लाकर दे सकता हूं? मेरे पास लोग आते हैं, वह कहते हैं, भगवान, हम आपके पैर पकड़ते हैं, प्रकाश मिल जाएगा? मैं प्रकाश दे सकता हूं?
बुद्ध ने कहा—मैं कैसे प्रकाश दूं? मैं कैसे सत्य दूं? सत्य कोई ऐसी चीज तो नहीं है कि कोई किसी को दे सके! प्रकाश कोई ऐसी चीज तो नहीं है कि मिल जाए! खोजनी पड़ेगी, और खोजने का प्रश्न ही तब खड़ा होगा जब अंधेरे में गिर जाएं। अंधेरे में गिरते ही पता चलता है कि सारे प्राण प्रकाश को खोजने लगे। अंधेरे में गिरते ही पता चलता है कि सारे प्राणों में प्यास भर गई है, प्रकाश कहां है?
और एक बार भीतर के अंधेरे का अनुभव हो जाए, तो फिर बाहर का प्रकाश भी प्रकाश मालूम नहीं पड़ेगा। क्योंकि भीतर के अंधेरे को जानते ही हमें पहली दफा पता चलेगा कि यह बाहर के प्रकाश से भीतर के अंधेरे के मिटने का कोई भी संबंध नहीं है। और जब तक मैं अंधेरे में हूं, तब तक दुनिया में कितने ही सूरज जलते रहें, उससे कुछ भी होने वाला नहीं है।
आदमी अगर अंधेरा है, दुनिया कितनी भी प्रकाशित हो जाए, उससे कुछ भी होने वाला नहीं है गांव-गांव में बिजली पहुंच जाए यह भी हो सकता है आज नहीं कल...।
मैं एक रूसी किताब पढ़ता था एक वैज्ञानिक की, उसकी योजना है कि सौ साल के भीतर रात हम मिटा देंगे। हम हर गांव के ऊपर कुछ विशेष गैसेस का एक बादल इकट्ठा कर देंगे और उस बादल को हम जब चाहें, तब जला सकते हैं और जब चाहें तब बुझा सकते हैं। वह गांव के कंट्रोल में होगा। गांव जब चाहे, जितना प्रकाश, उस बादल से पैदा किया जा सकता है। तब फिर रात को हम मिटा देंगे रात मिट जाएगी। रात को मिटने में कोई बहुत कमी नहीं रह गई है।
लेकिन फिर भी आदमी का अंधेरा नहीं मिटेगा। विज्ञान बाहर के अंधेरे को मटाने का प्रयास है, धर्म भीतर के अंधेरे को मिटाने का! इसलिए विज्ञान कितना ही सफल हो जाए, उससे धर्म को कोई बाधा नहीं पड़ती, क्योंकि धर्म का किसी अंधेरे से संघर्ष है।
जिस ऋषि ने यह गाया है—कि हे भगवान! मुझे अंधेरे से प्रकाश की तरफ से चल, वह बड़ा पागल रहा होगा। हम उसको एक कमरे में लाकर खड़ा कर दें और सब बल्ब जला दें और कहें, क्यों फिजूल परेशान हो रहा है? कहां भगवान से प्रार्थना करता है? इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड से प्रार्थना करनी चाहिए। भगवान से क्या संबंध है प्रकाश का? बिजली के दफ्तर से संबंध है। जितनी चाहो बिजली ले लो, प्रकाश कर लो।
तो वह ऋषि हम पर हंसेगा और कहेगा—तुम पागल हो गए हो। क्योंकि मैं जिस अंधेरी को बात कर रहा हूं, उसका बाहर के प्रकाश से कोई संबंध नहीं है।

लेकिन, उस अंधेरे का ही हमें पता नहीं है। हम मानने को भी राजी नहीं होंगे कि ह
म अंधेरे में जी रहे हैं। कोई आदमी मानने को राजी नहीं है। आदमी क्रोध कर रहा
हो और आप उससे कहो कि आप क्रोध में हो, तो वह कहता है—'क्रोध? कहां क्रोध
है? आप गलती में हैं, मैं क्रोध में नहीं हूं।
क्रोधी आदमी मानने को राजी नहीं होता है कि क्रोध में है, क्यों कि अगर मानने को
राजी हो जाए, तो क्रोध में होना बहुत मुश्किल हो जाएगा। पागल आदमी मानने को
राजी नहीं होता है कि पागल है। पागलखाने में चले जाएं, अगर एकाध पागल भी आ
पको मिल जाए, और वह मानने को राजी हो कि मैं पागल हूं, तो बड़ा चमत्कार हो
सकता है। कोई पागल मानने को राजी नहीं है।
कोई पागल मानने को राजी नहीं है कि वह पागल है, पागल का एक लक्षण यह भी
है। एक बीमार आदमी को शक भी आ सकता है, पागल को शक भी नहीं आता।
विलियम जेम्स पागलखाना देखने गया था। पागलखाने से देखकर लौटा और फिर बहुत
परेशान हो गया। बहुत परेशान हो गया। रात भर सो नहीं सका, सुबह उठा तो एक
दम उदास था। ऐसा था कि जैसे दस साल उम्र ज्यादा हो गई हो।
मित्रों ने पूछा—क्या हो गया है तुम्हें? कल से जब से तुम लौटे हो, खोए-खोए हो? ि
वलियम जेम्स ने कहा—मुझे एक शक आ गया और वह यह कि ये जितने लोग पागल
के पागलखाने में बंद हैं, कल तक ये लोग भी ठीक थे। और आज पागल हो गए। मैं
अभी ठीक मालूम पड़ता हूं, कल मैं भी पागल हो सकता हूं, एक।
दूसरे मुझे यह भी शक आता है। मैंने पागलों से पूछा—क्या तुम पागल हो? उन्होंने क
हा—नहीं! नहीं! कौन कहता है? उनमें से किसी को शक नहीं है कि वह पागल है। मु
झे शक आ गया है कि यह हमारा ख्याल कि हम पागल नहीं हैं, पागलों जैसा ही तो
न हो। तो मैं इस चिंता में पड़ गया कि कहीं मैं पागल तो नहीं हूं?
उसके मित्र खूब हंसने लगे और उन्होंने कहा—तब निश्चित है कि तुम पागल नहीं हो,
क्योंकि पागल को कभी शक नहीं आता। पागल को शक ही नहीं आता कि वह पाग
ल है।
मैंने तो यहां तक सुना है कि एक आदमी था अमेरिका में। एक सौ वर्ष पहले लिंकन
की कोई शताब्दी मनाई जाती थी। उसने, उस आदमी ने लिंकन का पार्ट किया, वह
लिंकन बना। लिंकन बनकर सारे अमेरिका में नाटक किया उसने। एक वर्ष तक वह ि
लकन का पार्ट ही करता रहा—आज एक गांव में, कल दूसरे गांव में, परसों तीसरे गां
व में। साल भर। लंबा वक्त है।
साल भर में वह आदमी इस भ्रम में पड़ गया कि मैं लिंकन हूं। उसको यह ख्याल पैदा
हो गया कि मैं लिंकन हूं।
रोज-रोज-रोज, हमको भी तो इसी तरह ख्याल पैदा होता है। रोज-रोज जो होता है,
वही ख्याल पैदा हो जाता है। अगर गांव में लोग रोज आपको नमस्कार करते हैं, तो
आपको ख्याल पैदा होता है कि आप नमस्कार के योग्य आदमी हैं। और अगर गांव
के लोग तय कर लें कि नमस्कार नहीं करना है, तो बड़ी बेचैनी होती है कि लोग कै

से पागल हो गए हैं। मैं नमस्कार के योग्य आदमी, कोई नमस्कार नहीं करता है। क्या हो गया है लोगों को?

उस आदती ने साल भर तक लिंकन का पार्ट किया, साल भर तक लोगों ने उसे लिंकन माना। जहां से गया, उसका स्वागत हुआ, मालाएं पहनाई गईं, लोगों ने नमस्कार किया, लोगों ने धन्यवाद दिए। साल भर में वह भूल गया कि मैं कौन हूं। यह ख्याल हो गया कि मैं लिंकन हूं। यह कोई बहुत मुश्किल नहीं है।

वह घर लौट आया, लिंकन के ही कपड़े पहने हुए। पत्नी ने, बच्चों ने कहा—आप अब यह कपड़े उतार दीजिए। अब यह अच्छे नहीं मालूम पड़ते। लोग क्या कहेंगे? आप सड़क पर इन कपड़ों को पहन कर चलेंगे। नाटक में ठीक है।

उसने कहा—कैसा नाटक? मैं अब्राहम लिंकन हूं।

फिर घर के लोगों ने कहा—शायद वह मजाक कर रहा है लेकिन जब दो-चार दिन मजाक चली तो और लंबी होती गई। मजाक थोड़ी देर चले तो समझ में आती है, फिर मुश्किल हो जाती है।

जब दो-चार दिन हो गया, वह लिंकन की उसी अकड़ में बोलता है। लिंकन जहां अटकता, वहीं अटकता है। लिंकन लंगड़ा कर चलता तो वह भी लंगड़ाकर चलता था। तब तो घर के लोगों ने कहा, यह कुछ गड़बड़ हो गई है। घर के लोगों ने समझाने की कोशिश की लेकिन जितना समझाया उतनी मुश्किल होती चली गई।

वह आदमी जिद्द पकड़ता चला गया कि मैं लिंकन हूं। कमी क्या है मुझमें? आखिर लिंकन होने में मेरी कमी क्या रह गई है?

फिर उन्होंने सोचा कि किसी मनोवैज्ञानिक को दिखाएं। बात आगे बढ़ गई? वह उसे मनोवैज्ञानिक के पास ले गए तो रोज उसे समझाया गया कि तुम लिंकन नहीं हो। कहो कि लिंकन नहीं हो।

एक छोटी-सी मशीन होती है लाइडिटेक्टर अदालतों में अब तो उन्होंने उपयोग करना शुरू किया है। एक छोटी-सी मशीन है, जैसे वजन तोलने की मशीन है, उसके ऊपर आदमी को खड़ा कर देते हैं। उससे पूछते हैं कि दो और दो कितने होते हैं, तो वह कहता है चार। वह झूठ क्यों बोलेगा? तो उसके हृदय की धड़कन एक तरह की होती है। ऐसे दस-पांच प्रश्न पूछते हैं जिसमें झूठ बोला ही नहीं जा सकता।

फिर उससे पूछते हैं, तुमने चोरी की? तो उसका हृदय तो कहता है, की, लेकिन ऊपर से कहता है, मैंने नहीं की। फिर हृदय की धड़कन में गड़बड़ी पैदा हो जाती है। वह मशीन नीचे नोट कर लेती है कि यहां इस जगह पर, इस आदमी के हृदय में दोहरी दिक्कत पैदा हुई। इसने एक दफा हां कहना चाहा, हृदय रुका, लेकिन कहा इसने और।

तो उस आदमी को, जो लिंकन हो गया था, मशीन पर खड़ा किया, और मनोवैज्ञानिक ने उससे कई प्रश्न पूछे—यह तुम्हारी पत्नी है? उसने कहा—हां। तुम्हारा बेटा है? उसने कहा—हां! घड़ी में कितने बजे हैं? उसने कहा इतने बजे हैं। फिर उसने पूछा, क्या तुम अब्राहम लिंकन हो?

वह आदमी बहुत घबड़ा गया था, बार-बार हर आदमी यही पूछता है, तो उसने कहा—मैं लिंकन, मैं अब्राहम लिंकन नहीं हूं। लेकिन मशीन ने खबर दी कि यह आदमी झूठ बोल रहा है। भीतर तो उसने कहा, हूं, अब्राहम लिंकन तो हूं, लेकिन कब तक झंझट को जारी रखो, तो उसने कहा कि नहीं हूं। मैं अब्राहम लिंकन नहीं हूं। लेकिन मशीन ने कहा, कि यह आदमी झूठ बोल रहा है।

तो उस मनोवैज्ञानिक ने कहा भाई ले जाओ इसे, यह आदमी अब्राहम लिंकन ही है। जहां तक मशीन का संबंध है। हम कुछ नहीं कर सकते। मशीन कहती है कि वह आदमी अब्राहम लिंकन है। और मशीन कभी गलती नहीं करती। मशीन कैसे गलती करेगी, गलती आदमी कर सकता है। यह आदमी गलती में हो सकता है। यह मशीन कोई गलती नहीं करती।

हमें पता नहीं नहीं है कि हम जो अपने को मान लेते हैं, वह हो जाते हैं। हमने अपना बाहर होना मान लिया है। हम वही हो गए हैं। हमने अपने भीतर होना छोड़ ही रखा है, इसलिए हमारे भीतर हमारा कुछ भी होना नहीं है।

हमने बाहर अपना होना मान लिया है, तो मैं किसी का पिता हूं, किसी का भाई हूं, किसी का मित्र, किसी का दुश्मन। कोई मेरा नौकर, मैं किसी का नौकर? हमने बाहर कुछ मान रखा है, वह हम हो गए हैं। वह सब अब्राहम लिंकन होना है। और मशीन पर भी खड़ा करके पूछा जाए, तो मशीन कहेगी, यही ठीक है। यह आदमी, इसका नाम रामचंद्र है। हालांकि रामचंद्र बिलकुल माना हुआ नाम है।

लिंकन और रामचंद्र होने में कोई फर्क नहीं है। पैदा होकर कोई नाम लेकर नहीं आता है, एक नाम हम मान लेते हैं कि यह मैं हूं। हम वही हो जाते हैं। इस आदमी का क्या कसूर है, जो इसने साल भर में मान लिया है कि मैं लिंकन हूं। तो तीस साल में हम मान लेते हैं। आखिर अब्राहम को भी नाम सिखाया ही गया होगा। वह भी कोई लेकर नहीं आए थे। असली अब्राहम लिंकन भी मानकर बैठा हुआ है कि मेरा नाम है।

हमने बाहर अपना होना मान रखा है, जो बिलकुल झूठा है। काम-चलाऊ है, काम चल जाता है। हम अपने घर पहुंच जाते हैं, ठीक ठिकाने। हमारा नाम है, दफ्तर में पता है, हमारी नौकरी चल जाती है। हमारी दुकान है, बोर्ड लगा है, वह सब पहचान है। लेकिन भीतर हम कौन हैं? वह हमें पता भी नहीं है। हमने यह मान रखा है, हम यही हो गए हैं। हमने बाहर के अतिरिक्त कभी भीतर की तरफ आंख नहीं की।

इन आने वाले दिनों की चर्चाओं में इस संबंध में एक-एक कदम की मैं बात करना चाहूंगा कि कैसे हम भीतर जाएं। पहली बात जो इस सुबह आपसे कहना चाहता हूं, वह यह है कि भीतर जाने से हम बहुत डरे हुए हैं।

क्योंकि वहां अंधकार है—घनघोर अंधकार है, साधारण नहीं। और मैं आपको आश्वासन नहीं देता कि भीतर जाएं, तो एकदम आनंद उपलब्ध हो जाएगा। यह बिलकुल झूठी बात है। भीतर जाएंगे, तो पहले तो बहुत चिंता, बहुत एंग्विस, बहुत घबराहट, बहु

त बेचैनी और अशांति पैदा हो जाएगी। लेकिन उसको पार कर सके, तो बहुत आनंद , बहुत शांति, बहुत कुछ उपलब्ध होता है।

लेकिन जिन्हें भी पर्वतों पर चढ़ना हो उन्हें बीच में कठिनाइयां झेलनी पड़ती हैं, और जिन्हें भी गहरे सत्य खोजने हों, तो गहरा उतरना पड़ता है। और जिन्हें भी अपने को जानना हो; उन्हें उस तक से गुजरना पड़ेगा, जो हमको घेरे हुए हैं, जिसकी वजह से हम बाहर ही बाहर जीते हैं।

जैसे मैं अपने इस घर में हूं और दरवाजे के बाहर ही रहता हूं; क्योंकि भीतर कमरे में बहुत घनघोर अंधकार है, सांप-बिच्छू भी हो सकते हैं, भूत-प्रेत भी हो सकते हैं। कभी थोड़ा झांकता हूं, फिर डर लगता है। घबड़ाकर द्वार बंद कर देता हूं। फिर धीरे -धीरे मैं मान ही लेता हूं; क्योंकि यह अंतिम ढंग से द्वार बंद करने का उपाय है कि भीतर कुछ है ही नहीं, जो भी है सो बाहर है।

हर आदमी ने यह मान रखा है कि जो भी है सब बाहर है। इस मान रखने में एक ब हुत अनकांसेस सप्रेशन, एक बहुत अचेतन-दमन है और वह यह है कि भीतर को इन कार कर दो; क्योंकि भीतर बहुत डर लगता है, बहुत घबड़ाहट मालूम होती है। न मालूम क्या हो, उधर जाओ ही मत। इंकार ही कर दो कि वह है ही नहीं, भीतर कु छ है ही नहीं। बाहर जियो, शांति से बाहर जियो, बाहर ही रहो, बाहर ही से गुजर जाओ।

भौतिकवाद पदार्थ का आग्रह नहीं है। मैटेरिज्म, पदार्थ का आग्रह नहीं है। भौतिकवाद इस बात का आग्रह है कि भीतर कुछ भी नहीं है, भीतर है ही नहीं, भीतर असत्य है । जो भी है बाहर है। जो भी आउट साइड, बस वही सत्य है--

ऐसी कोई चीज ही नहीं है। भौतिकवाद पदार्थ का आग्रह नहीं है। बहुत गहरे में भौति कवाद का कहना है, बाहर ही सब कुछ है, भीतर कुछ नहीं है। बड़े मजे की बात है। लेकिन, अगर बाहर ही सब कुछ हो और भीतर कुछ न हो, तो बाहर सब एकदम व यर्थ हो जाता है। बाहर की कोई भी सार्थकता, भीतर के संदर्भ में बाहर हो ही तब सकती है, जब भीतर हो।

एक थैली मेरे पास है और मैं कहूं, थैली के बाहर ही सब कुछ है, भीतर कुछ भी न हीं है, तो बाहर व्यर्थ हो गया, अर्थहीन हो गया। सब बाहर, किसी भीतर का ही छो र है। और बाहर को जानने के लिए किसी को भीतर खड़ा होना जरूरी है, नहीं तो बाहर का कोई पता भी नहीं चलेगा।

मुझे आप बाहर दिखाई पड़ रहे हैं; क्योंकि मैं बाहर नहीं हूं, मैं कहीं भीतर खड़ा हूं। मैं आपको बाहर दिखाई पड़ रहा हूं; क्योंकि आप भी बाहर नहीं हैं, कहीं भीतर खड़े हैं। बाहर का बोध ही भीतर की चेतना को है, लेकिन जिसे बोध है, उसे ही भुलाने की कोशिश में संलग्न हैं। और इसमें हम करीब-करीब सफल हो जाते हैं, हमारी सफ लता बहुत नहीं है।

इन तीन-चार दिनों में मैं यह सुझाना चाहूंगा कि हमारी बाहर की सफलता बहुत मंह गी, बहुत झूठी है, और एक बहुत बड़ी असफलता को छिपाए हुए है, भीतर के अंध

कार को, भीतर के अज्ञान को। और हमने बाहर की सफलता में इसीलिए इतनी तेजी से दौड़ लगाई है कि भीतर का पता ही चले। दौड़ में पता नहीं चलता है। आदमी रुकता है, तो पता चलता है। भागो तो पता नहीं चलता है। भूल ही जाता है आदमी कि भीतर भी कुछ है।

बाहर, बाहर; बाहर। तेज और तेज। आदमी की स्पीड बढ़ती चली गई है। इस स्पीड के बढ़ने में, बहुत बुनियाद में कारण अगर खोजे जाएं, तो इतना ही नहीं है कि आद मी को चांद पर पहुंचना है। आदमी की स्पीड और गति बढ़ने में बहुत बुनियादी कार ण यह है कि थोड़ी गति में आदमी को अपना बोध होता है। तेज गति में अपना बोध भूलता है। जितनी तेज गति हो, उतना खुद को भूलने की सुविधा है।

इसलिए अमेरिका में, जहां खुद को भूलने के सर्वाधिक उपाय चलते हैं, तेज से तेज गति होती चली जाती है। कार सौ मील से नीचे चले, तो वह चल ही नहीं रही है। वह चलेगी इतनी तेज गति पर—इतनी तेज गति में हो कि मुझे और मेरे होने का ठि काना ही न रहे, गति को संभालने में ही व्यस्त हो जाऊं। एक भी क्षण मौका न मिले कि मैं जान सकूं कि मैं भी हूं।

तो तेज करते जाओ जीवन की गति को, ताकि जीवन का पता न चल सके। तो गति स्वयं को भुलाने का उपाय तो नहीं है। जोर से धन कमाए चले जाओ, इतने जोर से गिनो धन को कि अपनी गिनती का सवाल न रहे। इतनी गिनती हो जाए धन की, ि क हम अपने को गिनने का मौका न पाएं। कहीं धन को बढ़ाना, स्वयं को भूल जाने का उपाय तो नहीं है?

बढ़ो पदों पर, छोटी मिनिस्ट्री से बड़ी मिनिस्ट्री पर जाओ, अहमदाबाद से दिल्ली जाओ , बढ़ते चले जाओ। इस बढ़ते चले जाने में कहीं ऐसा तो नहीं है कि अगर हम खड़े हो गए कहीं, तो अपना पता चलने लगेगा। वह नहीं चलना चाहिए। भागते जाओ, भ ागते जाओ। राजनीति की सारी दौड़ धूप, धन की सारी तीव्रतम गति, विज्ञान को उ पलब्ध हुए सारे साधन, आदमी अपने को भुलाने के काम में लाता है। इससे मनुष्यता का कोई भी हित नहीं हो सकता है।

मनुष्य स्वयं के भीतर जाए बिना सत्य को नहीं जानता, न जीवन को जानता है। और अगर हम जीवन के मंदिर में ही प्रविष्ट न हो सके, तो हमारी परमात्मा की सारी बातें झूठी हैं। वह है—वह सबके भीतर है, लेकिन खोजना जरूरी है। प्रकाश है, लेकिन खोजना जरूरी है। अंधेरे की यात्रा जरूरी है। एक अंतिम कथन और फिर अपनी बा त पूरी करूंगा—

नीत्शे ने कहा है, और फिर पृथ्वी पर जिन थोड़े से लोगों ने भीतर के अंधकार का स ाक्षात्कार किया है, उसमें नीत्शे अदभुत है। वह इतना पागल हो गया, उसे अंधेरे की घबड़ाहट ने पागल कर दिया। नीत्शे ने कहा है—जिन वृक्षों को आकाश छूना हो, उन्हें अपनी जड़ें पाताल तक भेजनी पड़ती हैं। और जिसे प्रकाश खोजना हो, उसे अंधकार की अंतिम गहराइयों में उतरना पड़ता है। उल्टी लगेगी यह बात कि अगर प्रकाश

खोजना है, तो अंधकार से क्या संबंध है? और अगर आकाश की तरफ जाना है, तो अंधकार में जड़ें क्यों भेजें?
लेकिन ध्यान रहे—जितनी छोटी जड़ नीचे जाती है, उतना ऊपर वृक्ष कम जाता है। ि जतनी जड़ें नीचे गहरी जाती हैं अंधकार में, उतना ही वृक्ष की शाखाएं ऊपर उठती हैं सूर्य के प्रकाश में। ऊपर की शाखाएं सूर्य के प्रकाश को चूमना पड़ता है।
आदमी भी एक वृक्ष है, और उसके भीतर अंधकार भी है और प्रकाश भी। लेकिन जो अंधकार में उतरने की हिम्मत नहीं रखते वे कभी प्रकाश तक नहीं पहुंच पाते हैं। प हला सूत्र है—अंधकार में उतरने का साहस। तो फिर प्रकाश बहुत दूर नहीं है। कैसे अं धकार का साक्षात्कार करें? वह संध्या आपसे मैं बात करूंगा।
मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे अनुग्रहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

जीवन का नियम

मेरे प्रिय आत्मन,
एक युवा संन्यासी किसी आश्रम में मेहमान था। उस आश्रम के वृद्ध फकीर से उसने आत्मा के संबंध में कुछ बातें पूछीं। लेकिन वह वृद्ध फकीर दिन भर हंसता रहा और कोई जवाब न दिया।
जो भी जानते हैं, उन्हें जवाब देना बहुत मुश्किल है। जो नहीं जानते हैं, उन्हें जवाब देना बहुत ही आसान है।
सांझ हो गई, अंधेरा डूबने लगा, वह युवक खोजी वापस लौटने को हुआ। द्वार पर आ या, अमावस की रात है। सूरज ढल गया, अंधेरा घिर गया, जंगल का रास्ता है। सीि ढयां उतरते समय वृद्ध फकीर से कहने लगा, बहुत अंधेरा है, कैसे जाऊं?
उस बूढ़े फकीर ने कहा, जो अंधेरे में नहीं जा सकता, वह जा भी नहीं सकता है। सा रे जीवन में ही अंधेरा है, अंधेरे में ही जाना पड़ेगा।
फिर भी वह युवक डरा हुआ मालूम पड़ा, अनजान रास्ता है, जंगल है, भटक जाने क ा डर है। उसने कहा, कोई दिया न दे सकेंगे?
वह वृद्ध फकीर हंसने लगा। एक दिया जला कर लाया, उस जवान के हाथ में दिया और वह जवान दिये को लेकर उतरता था सीढ़ियां, तब उस बूढ़े फकीर ने फूंक मार दी और दिया बुझा दिया।
और फकीर ने युवक को कहा—बाहर के रास्तों पर तो मैं तुम्हें दिया दे दूंगा, लेकिन भीतर के रास्तों पर कौन तुम्हें दिया देगा? और बाहर के रास्तों पर कृत्रिम प्रकाश क ी व्यवस्था हो सकती है, भीतर के रास्ते पर बाहर से प्रकाश का कोई आयोजन संभव नहीं है। और अगर भीतर जाना हो, तो अंधेरे से जाना ही पड़ेगा। जिस आत्मा की तुम बात पूछते थे, अंधेरे से गुजरे बिना कोई उस आत्मा को नहीं पा सका। आत्मा तो प्रकाश है, लेकिन अंधेरे से गुजर जाना जरूरी शर्त है।

असल में जो व्यक्ति चिंता की आखिरी घड़ियों में गुजर जाता है, अशांत के गहरे से गहरे पर्दों को पार कर जाता है, संताप की गहरी से गहरी वृत्ति को झेल लेता है, अंधेरे के गहन-से-गहन पर्दों में कूद जाता है, उसकी जिंदगी में प्रकाश का उदय सुनिश्चित है।

लेकिन अंधेरे से एक डर है। बाहर के अंधेरे से डर है और उसी कारण धीरे-धीरे भीतर के अंधेरे से भी डर हो गया है। इसीलिए इनमें से कोई भी भीतर नहीं जाना चाहता है। कोई भी भीतर नहीं झांकना चाहता। क्यों डर गए हैं हम अंधेरे से?

शायद कुछ कारण है, वह हम समझ लें, तो अंधेरे से निर्भय भी हो सकते हैं। और जो अंधेरे से भयभीत हैं, वह अंधेरे में ही जियेगा। और जो अंधेरे से निर्भय हो जाता है, वह अंधेरे को पार कर जाता है। असल में भय से बड़ा कोई अंधेरा नहीं है। क्यों हम अंधेरे से भयभीत हैं?

मनुष्य जाति की बहुत आदिम अनुभूतियां कारण हैं। कई लाखों वर्ष पहले आदमी के पास प्रकाश का कोई भी साधन नहीं था। गुफाओं में जीवन था—पहाड़ों में, जंगलों में, खतरे में। रात का अंधेरा बहुत भयभीत करने वाला था, क्योंकि रात में ही जानवर आदमी को उठा ले जाते थे। दिन के प्रकाश में तो आदमी जानवरों से रक्षा कर लेता था, रात के अंधेरे में असुरक्षित हो जाता था।

हमारे मन में आदिम वही भय अब तक बैठा हुआ है। भय वही है, परिस्थिति बिल्कुल बदल गई है। और इसीलिए जब पहली बार अग्नि का आविष्कार हुआ और आदमी आग जला सका, तो आदमी का पहला देवता बन गया। आग भगवान की पहली मूर्ति बन गई।

अग्नि की आदमी ने पूजा की, हवन किए, अग्नि के मंदिर बनाए। वह सब इस बात की स्वीकृति थी, कि अंधेरे से डर भी कम हो गया। लेकिन भीतर की दुनिया में अब भी अंधेरा है। और बाहर के अंधेरे का भय, भीतर के अंधेरे से भी ज्यादा भयभीत किए हुए है।

मनुष्य अंदर भी पशुओं का डर है, वहां भी जानवरों का डर है। वे जानवर बाहर के जानवर नहीं हैं, अपने ही भीतर के जानवर हैं। वहां भी उतना ही खतरा है, शायद खतरा है; क्योंकि भीतर क्रोध है, लोभ है, और हजार तरह के खतरे हैं, जो आदमी को डुबा लें, और इसीलिए हम भीतर झांकने में डरते हैं।

अगर कभी हम एकांत में बैठ जाएं और दस मिनट भी मन में जो चलता हो, एक कागज पर लिख लें, तो अपने निकटतम मित्र को बताना भी मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि जो मन में चलता है, वह इतना घबड़ाने वाला है, वह इतना डराने वाला है कि हम भी यह स्वीकार नहीं कर सकते कि हमारे काल्पनिक भय ही हमें इतना भयभीत किए हुए हैं।

वे जो स्वयं को नहीं जानते हैं, उनका भाग्य अंधेरे में ही घिरा रहेगा। वे अंधेरे में ही जिएंगे और मरेंगे। बाहर के अंधेरे ने भीतर के अंधेरे से भी हमें भयभीत कर दिया

है, और हम छोटे से बच्चे को भी अंधेरे से भयभीत होने की शिक्षा देते हैं, जो बड़ी खतरनाक है।

अगर मां-बाप समझदार होंगे और आने वाली दुनिया अच्छी होगी, तो हम बच्चों को अंधेरे में आनंद लेने की शिक्षा देंगे। क्योंकि एक बार अंधेरे से कोई भयभीत हो जाए, तो फिर भीतर उतरना बहुत मुश्किल है; क्योंकि भीतर अंधेरा पार करना ही पड़ेगा। और इतना अंधेरा बाहर है ही नहीं, जितना अंधेरा भीतर है। उतनी रोशनी भी बाह र नहीं, जितनी भीतर मिलेगी।

लेकिन अंधेरे से जो गुजरेगा, उसी को रोशनी मिलेगी। जो भीतर की रात पार करेगा , वह भीतर की सुबह को भी पहुंचेगा। भीतर की रात पार किए बिना, छलांग लगा कर, भीतर की सुबह में पहुंचने का कोई उपाय नहीं है। और भगवान की कोई कित नी ही प्रार्थना करे, कितनी खुशामद करे और भगवान कितनी ही भगवान को रिश्वत देने का वायदा करे कि नारियल चढ़ाएंगे, और यह करेंगे और वह करेंगे।

भीतर के अंधेरे से बचे बिना, कोई भी नहीं पहुंच सकता वहां जहां प्रकाश है। अनिवा र्य शर्त है, गुजरना ही पड़ेगा। मूल्य है जो चुकाना ही पड़ेगा।

और हम छोटे से बच्चे को अंधेरे से भयभीत कर देते हैं। अपना भय छोटे बच्चों पर हावी कर देते हैं। उनके मन को हम कंडीशन करते हैं, और वह अंधेरे से भयभीत हो जाते हैं। और अंधेरे से भयभीत आदमी भीतर जाने की कल्पना ही छोड़ देता है। कं डीशनिंग बहुत खतरनाक है। कुछ भी संस्कार मजबूत किया जा सकता है।

पावलफ रूस में एक मनोवैज्ञानिक हुआ है। उसने बहुत कंडीशनिंग पर संस्कार पड़ने प र काम किया है, और बड़े अदभुत उदघाटन किए हैं। एक कुत्ते के साथ उसने एक छ ोटा सा प्रयोग किया।

रोज कुत्ते को भोजन देता है, जब भी रोटी सामने रखता है, कुत्ते की जीभ चटकने लगती है। लार टपकने लगती है। वह जब भी उसे खाना देता है, साथ में घंटी भी ब जाता है। अब घंटी से लार टपकने का कोई संबंध नहीं है। किसी कुत्ते के सामने घंटी बजे, तो लार नहीं टपकेगी। पंद्रह दिन तक खाना दिया जाता है, घंटी बजती जाती है, साथ ही कुत्ते के मन में रोटी और घंटी जुड़ गई, एसोशियन हो गया है।

पंद्रह दिन बाद रोटी नहीं दी, सिर्फ घंटी बजाई है, पावलफ ने, कुत्ते की लार टपकने लगी, जीभ अटक गई है। कुत्ते की लार का घंटी से कोई भी संबंध नहीं है। लेकिन, अगर पंद्रह दिन तक रोटी के साथ घंटी बजाई जाए, तो घंटी से भी लार का संबंध ह ो जाता है।

मनुष्य के मन को हम किन्हीं भी चीजों से जोड़ दे सकते हैं। आदमी अंधेरे से डर गय ा है—बाहर के अंधेरे से। और हर मां-बाप बाहर के अंधेरे से अपने बच्चे को डरा रहा है। आने वाले बच्चों को उनके बच्चे डराते रहेंगे। मनुष्यता लाखों वर्फ से अंधेरे के भय को एक-दूसरे को सौंप जाती है।

और जब अंधेरे से कोई भयभीत हो गया, तो फिर यह सवाल नहीं है कि वह अंधेरा बाहर का है, या भीतर का है। अंधेरे का भय, सब अंधेरे का भय बन गया है। भीतर

जाने में डर शुरू हो जाएगा। और इसी तरह की और कुछ बातें अंधेरे से जुड़ी हुई हैं। अकेले होने से भी हम डरते हैं।

सच तो यह है कि अंधेरे में जो सर है, वह भी अकेले होने का डर है। अभी यहां रो शनी है, तो यहां कोई भी अकेला नहीं है। सब बाकी लोग हमें दिखाई पड़ रहे हैं। मैं आपको देख रहा हूं, आप मुझे देख रहे हैं।

अभी घुप्प अंधेरा हो जाए, तो हम सब अकेले हो गए। फिर कोई किसी को नहीं दिख ाई पड़ रहा है, सिर्फ एक अपने को छोड़कर। क्योंकि अपने को देखने की कोई जरूरत नहीं है। अपने को बिना देखे भी हम जानते हैं कि हम हैं, लेकिन दूसरों को बिना दे खे हम नहीं जानते हैं कि वह है। दूसरे को बिना देखे हम नहीं जानते कि वह है। दूस रा हमें दिखाई पड़ता है तो ही है। अंधेरे में हम अकेले हो जाते हैं, और बचपन से अंधेरे होने के संबंध में हमें भयभीत किया जा रहा है।

छोटे बच्चों को हम अकेला नहीं छोड़ते हैं। अकेला नहीं जाने देते हैं, सदा कोई साथ है। यह साथ धीरे-धीरे मजबूत होता चला जाता है।

जिसे भीतर जाना है, उसे अकेला होना पड़ेगा। साथ कोई भीतर नहीं जा सकता है। बाहर की यात्रा पर कोई भी साथी हो सकता है। संगी हो सकता है, मित्र हो सकता है। भीतर की यात्रा पर तो कोई संगी नहीं, कोई साथी नहीं। वहां तो असंग, अकेले, अलोन, वहां तो अकेले ही जाना पड़ेगा।

हमारी बचपन से लेकर मरने तक की सारी व्यवस्था साथ होने की व्यवस्था है। समाज का मतलब है साथ होना। समाज की पूरी की पूरी व्यवस्था साथ होने की व्यवस्था है ।

और धर्म की व्यवस्था अकेला होना है। धर्म और समाज का मेल नहीं है। धर्म और स माज का मेल हो भी नहीं सकता। लेकिन हमने धर्म को भी सामाजिक बना लिया है। इतने भयभीत लोग अकेले होने से, कि मंदिर में भी हम भीड़ इकट्ठी कर लेते हैं, अ ौर जिस मंदिर में जितनी ज्यादा भीड़ इकट्ठी होती है, वह मंदिर उतना सच्चा मालूम पड़ता है। क्योंकि भीड़ आराम देती मालूम पड़ती है। इसलिए जिस धर्म ने जितनी भ ीड़ इकट्ठी कर ली है, वह उतना बड़ा धर्म है।

अगर ईसाईयों ने संख्या ज्यादा कर ली है, तो वह ज्यादा बड़ा धर्म हो गया है। और अगर मुसलमानों ने इकट्ठी कर ली, तो वह बड़े हो गए। अगर हिंदुओं ने इकट्ठी कर ली, तो वह बड़े हो गए।

जिसने जितनी भीड़ इकट्ठी कर ली, वह उतना बड़ा हो गया। जबकि धर्म का संबंध भीड़ से बिलकुल नहीं है। धर्म का संबंध ही समाज से नहीं है। असल में समाज की स ारी व्यवसथा हमें धार्मिक होने से रोक लेती है; क्योंकि समाज का मूल स्वर है सबके साथ। समाज का मतलब है साथ होना, टू बी विथ, और धर्म का मतलब है अकेले ह ोना, टू बी अलोन। इन दोनों का क्या मेल है।

लेकिन हम अकेले होने को राजी नहीं हैं। हमें बचपन से डराया गया है। शायद जन्मों -जन्मों से हम डरे हुए हैं। अकेले में डर है, कोई अकेला नहीं होना चाहता। इसलिए

हम किसी तरह के दल बनाते हैं। सब दल भय पर खड़े हुए हैं। भयभीत आदमी इक ट्ठे हो जाते हैं। और ध्यान रहे, अगर एक आदमी भयभीत है, तो दस आदमी, दस गु ने ज्यादा भयभीत हो जाते हैं। और कोई फर्क नहीं पड़ता है।

अगर एक आदमी भयभीत है, तो दस आदमी इकट्ठे होने से क्या फर्क पड़ेगा? अगर एक आदमी गरीब है तो दस गरीब आदमी इकट्ठे होने से अमीर नहीं हो जाते। और एक आदमी बीमार है, तो दस बीमार इकट्ठे हो जाने से स्वस्थ नहीं हो जाते। और अ गर एक आदमी पागल है, तो दस पागल इकट्ठे होने से ठीक नहीं हो जाते। दस पाग ल दस गुने पागल हो जाते हैं। एक पागल बहुत कम खतरनाक है, दस पागल दस गु ने खतरनाक हैं। और दस में जोड़ ही होता है, गुणनफल हो जाता है: दस पागल ए क कमरे में इकट्ठे होंगे तो दस पागल नहीं हैं, दस गुणे दस, एक दूसरे को काटेंगे औ र करेंगे।

भयभीत आदमी दल इकट्ठे कर रहा है। भयभीत आदमी संगठन बना रहा है। भयभीत आदमी राष्ट्र बना रहा है, नेशन बना रहा है। सब भयभीत आदमी की चेष्टाएं हैं। अ केले होने में डर है, कोई साथ होना चाहिए। किसका साथ होना चाहिए? कोई भीड़ होना चाहिए? जिसमें मैं बड़ा हो जाऊं? और मैं विश्वस्त हो जाऊं, कि मैं अकेला न हीं हूं, मेरे साथ और लोग भी हैं। और वे लोग भी मेरी ओर से विश्वस्त हैं कि डर नहीं है, साथ कोई है। और सभी इस बात से विश्वस्त हैं।

हमारे सारे संगठन, भय के संगठन हैं। राष्ट्र हो, समाज हो, धर्म हों, संप्रदाय हों, सब भय के संगठन हैं। और भय से धर्म का क्या संबंध हो सकता है? इसलिए धर्म का कोई संगठन नहीं हो सकता। धर्म का कोई आर्गनाइजेशन नहीं हो सकता। धर्म तो उ न थोड़े से लोगों की बात है, जो अकेले जाने का साहस जुटा सकते हैं, जो बिलकुल अकेले हो सकते हैं। हम कभी बिलकुल अकेले नहीं होते। हां, यह हो सकता है कि अ ाप कभी एक कोठे में अकेले बैठे हों, लेकिन फिर भी अकेले नहीं होते।

जापान में एक फकीर था नानहेन। एक आदमी उसके पास आया। वह अपनी पत्नी क ो छोड़ आया, मित्रों को छोड़ आया। वह संन्यासी होने आ गया। उसने नानहेने का दर वाजा खोला। नानहेन अकेला बैठा है अपने मंदिर में।

वह युवक भीतर आया। वह कहता है—मैं सब छोड़कर आ गया हूं। मुझे दीक्षा दे दें। मैं भी उसकी खोज करना चाहता हूं जो प्रकाश है।

उस फकीर ने नीचे से ऊपर तक देखा और कहा—अकेले? अपने साथ की भीड़ बाहर छोड़कर आओ।

उस युवक ने पीछे लौटकर देखा। उसके साथ कोई भी नहीं है। उसने कहा—आप मजा क तो नहीं करते हैं? मैं बिलकुल अकेला हूं।

फकीर ने कहा—पीछे मत देखो, पड़ोस में मत देखो, आंख बंद करो, भीतर देखो।

उस युवक ने आंख बंद की और भीतर देखा। पत्नी को वह छोड़ आया है, वह खड़ी है। जिन मित्रों को वह छोड़ आया है, वह सब वहां खड़े हैं। वहां भीतर भीड़ पूरी मौ जूद है।

उस फकीर ने कहा—जाओ, सारी भीड़ छोड़ आओ। और अगर भीड़ छोड़ सको, तो य हां आने की कोई जरूरत नहीं; क्योंकि मैं तुम्हारे लिए भीस़ बन जाऊंगा। भीड़ छोड़ दो और अकेले हो जाओ।

और अकेले होते ही वह क्रांति घट जाती है। जो मनुष्य को वहां ले जाती है, जहां ह मारे अंतरतम का निवास, जहां अंतर्यामी का निवास है। लेकिन उस मंदिर में कभी द ो नहीं जा सकते। और हम सब साथ जाना चाहते हैं, पूरी भीड़ के साथ।

हिंदू, मुसलमान, ईसाई, सब धार्मिक हैं। भीड़! भीड़ कभी धार्मिक नहीं होती। भीड़ अ निवार्य रूप से अधार्मिक होती है। और इसलिए भीड़ जितने अधार्मिक काम करती है, अकेले आदमी ने कभी नहीं किए हैं। भीड़ में अच्छा आदमी भी फौरन बुरा हो जाता है। क्योंकि भीड़ में जुड़ते ही उसकी आत्मा खो जाती है, वह सिर्फ भीड़ का एक हि स्सा होता है। फिर भीड़ जो करती है—आग लगाती है, तो वह भी आग लगाता है।

मैं उन लोगों से मिला हूं, जिन्होंने हिंदुस्तान पाकिस्तान के बंटवारे के समय आदमीयत खो दी, जंगली हो गए थे। जिन्होंने आगें लगाईं, स्त्रियों को चीड़ा-फाड़ा, छोटे बच्चों को काटा। उन सब लोगों को मिला हूं। उनसे मैंने पूछा—तुम अकेले यह सब कर सक ते हो?

उन्होंने कहा—अकेले? हम आज सोचते हैं, तो हमें विश्वास नहीं आता कि हमने यह कभी किया। नहीं कर सकते हैं। लेकिन भीड़ के साथ सब हो गया है। हम थे ही नहीं , भीड़ थी। भीड़ आग लगा रही थी, हम उसके हिस्से थे।

भीड़ ने जितने पाप किए दुनिया में, उतने अकेले आदमी ने कभी नहीं किए। अकेला आदमी पाप करने में भी डरता है। भीड़ के साथ वह डर भी खत्म हो जाता है। और ध्यान रहे, हम सब, हममें से कोई भी, अकेला होने को राजी नहीं है। तो अंधेरे से प्रकाश की यात्रा भी नहीं हो सकती।

प्लोटिनस हुआ है यूनान में। एक मिस्ट्रिक, यूनान में। एक किताब लिखी है। किताब का नाम बहुत अदभुत है। किताब का नाम है फ्लाइट आफ द अलोन टू दी अलोन, अकेले की उड़ान अकेले तक।

शायद सारे धर्म का सार इतना ही है, अकेले की उड़ान, अपने तक!

लेकिन हम सब तो भीड़ में जीने के आदी हैं। भीड़ छोड़ने से डर लगता है। अगर आ ज पता चल जाए कि मैं हिंदू नहीं हूं, मैं भारतीय नहीं हूं, मैं कोई भी नहीं हूं। मैं नि पट आदमी हूं। सब प्राण थरथरा जाएंगे। फिर मेरे साथ कोई भी नहीं है, मैं ही हूं। मैं हिंदू हूं, मैं मुसलमान हूं, मैं भारतीय हूं, मैं चीनी हूं, मैं पाकिस्तानी हूं। तो इतनी भ ीड़ मेरे साथ है।

एक जैन संन्यासी को अभी कोई पंद्रह-बीस दिन पहले मिला। मैंने उनसे कहा—संन्यासी हो गए, फिर भी तुम जैन बने हुए हो? अब तो कम-से-कम जैन होना छोड़ दो। क म-से-कम संन्यासी को तो जैन, हिंदू, मुसलमान नहीं होना चाहिए। यह तो बहुत ही अभद्र है। बाकी लोग घर-गृहस्थी वाले लोग हैं, डरते हैं। अगर आदमी हिंदू नहीं रह जाएगा, तो हिंदू की कहां करेगा? कहां खोजेगा? क्या खोजेगा? क्या नहीं करेगा? दु

ख-सुख में कौन साथ होगा? कल मर जाएगा, और अगर हिंदू नहीं है, तो कौन मरघ
ट तक पहुंचाएगा? लेकिन संन्यासी को तो कम-से-कम फिक्र छोड़ देनी चाहिए?
उन्होंने कहा—क्या कहते हैं? अगर मैं जैन न रह जाऊं, तो मुझे रोटी मिलनी मुश्किल
है। कौन रोटी देगा? कौन मुझे मंदिर में ठहराएगा?
तो फिर संन्यासी भी समाज का एक हिस्सा है, तो फिर संन्यासी भी संन्यासी नहीं है।
वह भी अकेले होने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहा है।
अकेले होने की हिम्मत, भीतर प्रवेश की अनिवार्य सीढ़ी है। और इसीलिए हम अंधेरे
से डरते हैं। अंधेरा अकेला पड़ता है, प्रकाश हमें जोड़ देता है। प्रकाश में सब मालूम
पड़ते हैं, सब हैं। और भी कुछ कारण हैं। प्रकाश परिचित मालूम पड़ता है, अंधेरे में
कुछ भी अननोन, अपरिचित घट सकता है। कुछ नहीं जानता, अंधेरे में क्या होता है
? हम सजग नहीं हो सकते हैं। अंधेरे में कुछ भी हो सकता है।
प्रकाश में? प्रकाश में हम सजग हो सकते हैं। प्रकाश में हम जानते हैं, क्या हो रहा
है? हम परिचित हैं चारों तरफ से। अंधेरे में हम अपरिचित हो जाते हैं। अपरिचित
का बड़ा डर है। अपरिचित से बड़ा भय है। परिचति से हम अभय मालूम करते हैं, ि
नर्भय मालूम होते हैं। जानते हैं इस आदमी को, जानते हैं इस मकान को, जानते हैं
इस भाषा को। तो लगता है, जिसे हम जानते हैं, उससे भय कम है। क्योंकि उसे हम
जानते हैं। अनजाना तो कुछ भी नहीं करेगा, लेकिन अनजान स्थिति हमें घबड़ा भी
सकती है।
और ध्यान रहे—भीतर जिसे जाना है, उसे अपरिचित में, अननोन में, अज्ञात में, अन
जान में जाना ही पड़ेगा। उसे तो अनजान दुनिया की यात्रा करती ही पड़ेगी। क्योंकि
भीतर से हम बिलकुल परिचित नहीं हैं। चाहे हमने कितने ही जन्मों की यात्रा की हो
, हम बाहर से ही परिचित रहेंगे, भीतर से हमारा कोई परिचय नहीं है। अगर आज
कोई जोर से आपको पकड़ ले और पूछे—कौन हैं आप?
आप घबड़ा जाएंगे। कुछ उत्तर न दे सकेंगे। आप कौन हैं, आपको ही पता नहीं। सच
मुच कोई पता नहीं है कि मैं कौन हूं। हां, कुछ तस्वीरें याद आती हैं, कुछ नाम याद
आते हैं, कुछ बदलियां आती हैं। उन्हीं को मैंने समझा है कि वही मैं हूं।
लेकिन थोड़ा भीतर जाता हूं, तो पता चलता है कि वह सब तो बाहर से चिपकाई हु
ई चीजें हैं, बाहर ही छूट जाती हैं। भीतर भी मैं कोई भी नहीं रह जाता हूं। जो भी
मैं जानता हूं, कम-से-कम वह तो मैं नहीं हूं।
फिर मैं कौन हूं? और अगर कोई अपरिचित से डरता है, तो स्वयं से ही डरता रहेगा
। क्योंकि स्वयं से ज्यादा अपरिचित इस दुनिया में और कोई भी नहीं है। स्वयं से ज्या
दा स्ट्रेंज, स्टेंजर, अजनबी और कोई भी नहीं है। आप अपने लिए अजनबी नहीं हैं। अ
ाप अपने को जानते हैं। कितने दिन अपने साथ रहे हैं, लेकिन अपने को कहां जानते
हैं? कौन-सा परिचय है हमारा? कौन-सी पहचान है हमें हमारी?
कल अगर हमारे कपड़े उतार लिए जाएं और नाम छीन लिया जाए, तो पहचानना मु
श्किल हो जाएगा।

एक आदमी दूसरे महायुद्ध में चोट खा गया, गिर पड़ा। और भूल गया कि मैं कौन हूं। नाम भी भूल गया, गांव भी भूल गया। बड़ी मुश्किल हो गई। युद्ध में कहीं उसका नंबर भी खो गया था, जब उसे लाया गया स्ट्रेचर पर, तो उसका नंबर भी नहीं था। नंबर होता तो पता चल जाता।

कितनी झूठी है हमारी पहचान कि नंबर से पता चलता है कि कौन है यह आदमी? उसका नंबर भी कहीं गिर गया है। उसके नंबर का भी कोई पता नहीं है कि वह कौन है। यह भी तय करना मुश्किल है कि मित्र है कि शत्रु है। वह अपनी तरफ से लड़ता था कि दुश्मन की तरफ से लड़ता था, यह कुछ पता नहीं था। वह आदमी सब भूल गया।

फिर युद्ध के बाद खो-बीन शुरू हुई कि उस आदमी को उसके गांव पहुंचाया जाए, उसके घर पहुंचाया जाए। लेकिन कौन उसका पिता है, कौन उसकी पत्नी है? आखिर यही तय हुआ, उसे दस-पांच गांवों में ले जाया जाए और उससे कहा जाए कि वह पहचाने कि यह गांव कुछ पहचान आता है?

एक गांव में ले गए, वह आदमी अजनबी की तरह खड़ा हो गया, कुछ पहचान में नहीं आया। उसने कहा--नहीं! यहां तो मुझे कुछ याद नहीं आता कि मैं कभी आया हूं? वे दूसरे गांव ले गए, तीसने गांव ले गए, दसवें गांव ले गए, पंद्रहवें गांव ले गए, घबड़ा गए। वह आदमी पहचान नहीं पाता। फिर यह शक हुआ कि हो सकता है, वह आदमी अपना गांव भी भूल गया हो। लेकिन आखिरी में सफलता मिल ही गई। एक गांव में उसे उतारा, वह भागा, दौड़ा, गलियों को पार किया। जो साथी आए थे खोजने, उसके पीछे दौड़ रहे हैं। एक दरवाजे के सामने जाकर खड़ा हो गया। भीतर चला गया उसने मित्रों से कहा--यही है? यही मेरा घर है।

हम भी बाहर हैं और भूल गए हैं कि कौन हूं मैं। और भीतर न जाएंगे, तो वह घड़ी न आएगी कि हम उस घर पर पहुंच जाएं, जहां हम कह सकें, यही हूं मैं। यह रहा मेरा घर! लेकिन बाहर-बाहर इस घर को बनाते हैं, उस घर को मिटाते हैं, कोई मेरा धर नहीं है, कोई मेरी पहचान नहीं है। हम भटकते चले जाते हैं, भटकते चले जाते हैं।

जो जानते हैं, वह कहते हैं--जन्म से यह भटकन है। बहुत जन्मों से यह भटकन है। और बहुत जन्मों तक यह भटकन चल सकती है। क्योंकि उसके बुनियादी कारण अगर शेष रह गए, तो चलती ही रहेगी, चलती ही रहेगी। कोई सवाल नहीं उठता कि कितनी बार हमने यात्रा की है एक रास्ते पर। सवाल यह है कि अगर गलत रास्ते पर यात्रा कर रहे हैं, तो कितनी ही बार यात्रा करें, हम कहीं पहुंच न सकेंगे। हम बार-बार यात्रा किए चले जा रहे हैं। बाहर, और बाहर, और बाहर, खोदे चले जा रहे हैं। भीतर हम कदम नहीं उठाते। लेकिन अपरिचित से हमें डर लगता है। अगर मैं अपरिचत हूं, तो रात मेरे साथ कमरे में ठहरने में बहुत डर लगेगा। पहले आप परिचय बना लेना चाहेंगे कि आप कौन हैं, क्या नाम है, क्या धर्म है, क्या करते हैं? ट्रेन में भ

ी किसी आदमी के साथ-साथ अकेले हैं एक डिब्बे में, तो वह जल्दी से बेचैनी जाहिर करेगा, वह पहले परिचित हो जाना चाहेगा कि कौन हैं आप?

और आप उससे कह दें कि मैं एक हत्यारा हूं, तो फिर वह रात-भर नहीं सो पाएगा। या आप कह दें कि मैं एक चोर हूं, तो फिर रात-भर नहीं सो पाएगा। या अगर वह ब्राह्मण हो और आप कह दें--मैं शूद्र हूं! तो भी रात को नहीं सो पाएगा। या अगर वह हिंदू है, आप कह दें--मैं मुसलमान हूं। और जरा गौर से उसे देख लेना, तो मुश्कि ल हो गई। अपरिचित, पराए, दूर के लोग, हम से थोड़े भी भिन्न लोग, बस! मुश्किल शुरू हो गई। अपरिचित के साथ जीने में बड़ा डर लगता है।

और हम अपने ही साथ जी रहे हैं; जो कि बिलकुल अपरिचित है, जो कल हत्यारा ह ो सकता है, उसके साथ हम जी रहे हैं। जो कल चोरी कर सकता है, उसके साथ ह म जी रहे हैं। जो कल आग लगा सकता है, उसके साथ हम जी रहे हैं। जिसने पीछे हत्या की हो, आग लगाई हो, लगाने का सोचा हो, उसके साथ हम जी रहे हैं। लेकि न वह, हम भीतर झांकते ही नहीं, हम देखते ही नहीं कि वह कौन है। उसकी हम ि फक्र ही नहीं करते। उसके डर की वजह से हमने द्वार ही बंद कर दिया है। हम बाह र ही रहते हैं, हम भीतर जाते ही नहीं।

यह हमारा द्वार पर खड़ा होना ही अधार्मिक होना है। जो आदमी अपने ही द्वार बंद करके बाहर खड़ा हो गया है, वह आदमी अधार्मिक है। वह टीका लगाता है कि नहीं, उसने चोटी बढ़ाई कि नहीं, यह सवाल अत्यंत नासमझी के हैं। स्टुपिडिटि के हैं। वह आदमी मंदिर जाता है या नहीं, माला फेरता है या नहीं, यह सवाल सब अत्यंत मूढ़ तापूर्ण हैं।

सवाल सिर्फ एक है--एक आदमी ने अपने पर, दरवाजा तो बंद नहीं कर दिया है? क हीं ऐसा तो नहीं है कि वह अपनी ही तरफ पीठ करके खड़ा हो गया हो? हम सब इ सी तरह खड़े हुए हैं। लेकिन डर लगता है उस तरफ झांकने से। बहुत डर लगता है। जैसे किसी बड़ी खाई में झांकने से डर लगता है।

ले जाऊं किसी पहाड़ी पर आपको। बड़ा गड्ढा है, और कहूं--झांकें! तो आप कहेंगे,--झां कने में डर लगता है। नीचे गड्ढा है।

अगर बहुत डर लगेगा तो आप पीठ करके खड़े हो जाएंगे, और अगर, और ज्यादा ड र लगेगा तो आप कहेंगे, गड्ढा है ही नहीं, कौन कहता है, गड्ढा है ही नहीं। इंकार क र देंगे गड्ढे को, ताकि मन निश्चिंत हो जाए।

हम जिन चीजों से डरते हैं, उनको इंकार करते चले जाते हैं। लेकिल जिसे हम इंकार करते हैं, वह भीतर खड़ा है। हमारे इंकार से कुछ भी नहीं मिलता। जो आदमी सेक स से भयभीत है, वह सेक्स से इंकार कर देता है, आंख बंद कर लेता है। जो क्रोध से भयभीत है, क्रोध को इंकार कर देता है और आंख बंद करके खड़ा हो जाता है ि क है ही नहीं।

लेकिन नहीं कहने से कुछ भी नहीं, नहीं हो पाता। वह भीतर खड़ा है और उसके डर के कारण अब हम पीछे लौटकर भी नहीं देख सकते। हमने बहुत से भय खड़े कर ि

लए हैं। पूरा अनकांसस, पूरा अचेतन, अत्यंत भयभीत चीजों से भर दिया है हमने, अ ौर अब भीतर जाना बहुत मुश्किल हो गया है। अब हम बाहर घूमते हैं, घूमते हैं। ब स, भीतर नहीं जाते हैं।

आदमी चांद पर चला गया है। वह कल सूरज पर जाएगा, तारों पर जाएगा, सब जग ह चला जाएगा। यह सारी भाग-दौड़ बहुत अदभुत है। यह सारी भाग-दौड़ बहुत पैथो लॉजिकल है, बीमार है। वह एक चीज से बचकर, सब तरफ भाग रहा है। अपने से बचकर सब तरफ भाग रहा है।

चांद पर पहुंच जाए, खुश होगा थोड़ी देर, फिर क्या करेगा? जब जमीन पर रहना न हीं आता है, तो चांद पर पहुंच कर क्या करिएगा? चांद पर भी यही करिएगा? बेचा रे चांद को भी झंझट और मुसीबत में लाना है। वहां की शांति भी भंग करनी है? ज ब यहां हम नहीं रह सकते, तो हम वहां क्या करेंगे? जमीन ही जैसी जमीन, वह भी है।

दूर से सब चीजें चमकती हैं। चांद भी चमकता है। यह जमीन भी चांद के ऊपर चम कती है—दूर से सब चीजें चमकती हैं। पास तो सब चीजें वैसी ही हैं। सवाल असल में यह नहीं है कि आदमी कहां पहुंच जाएगा, सवाल यह है कि आदमी क्या हो जाएगा ? आदमी वैसा है उसे देखकर अच्छा नहीं मालूम होता है कि वह चांद पर जाए, ता रों पर जाए, सब जगह उपद्रव पहुंचा देगा।

अभी हमने तो, आर्मस्ट्रांग और उसके साथी लौटे, तो एक महीने तक बंद रखा, सब जांच-परख की कि कोई कीटाणु तो नहीं ले आए, और हमने यह फिक्र छोड़ दी कि कोई कीटाणु वहां तो नहीं छोड़ आए? यह आदमी की बीमारी कहीं वहां तो नहीं छो. ड आए कुछ थोड़ी-बहुत? नहीं तो चांद पर भी युद्ध शुरू हो जाएंगे, अगर ये कीटाणु वहां भी पहुंच गए, आदमी के पागलपन के! तो आदमी जहां जाएगा, यही करेगा; क योंकि आदमी जो है। यही आदमी तो वहां भी पहुंच जाएगा। यही करेगा। यही पागल पन वहां भी जारी रहेगा।

पर आदमी इतनी दौड़ में क्यों है? किस चीज से आदमी दौड़ रहा है? किस चीज के लिए दौड़ रहा है? अगर कोई पूछे कि चांद पर किसलिए जाना है? तो कोई उत्तर नहीं है बहुत। या शुक्र पर, या मंगल पर किसलिए जाना है? तो कोई उत्तर नहीं है। इसका उत्तर कोई भी नहीं है कि आप जाना क्यों चाहते हैं वहां? लेकिन बहुत गहरे में हम छानेंगे, तो हम अपने से बचना चाहते हैं। हम कहीं भी जाना चाहते हैं, पर हमें अपने भीतर न जाना पड़े। वहां हम नहीं जाना चाहते हैं।

और मैं आपसे कहता हूं, अंतरिक्ष की बड़ी से बड़ी यात्रा उतनी बड़ी नहीं, जितनी ि क अंतस की यात्रा है। मैं आपसे कहता हूं, अंतरिक्ष के बड़े से बड़े यात्री भी कहीं नह ीं पहुंचेंगे। चांद पर झंडा गाड़ दो, प्रयोजन क्या है? एवरेस्ट पर झंडा लगा दो, मतल ब क्या है? एक जगह भीतर अगर खाली रह गई, और वहां नहीं पहुंच सके, तो सब जगह पहुंचना व्यर्थ हो जाएगा।

लेकिन, चांद पर पहुंचने की चर्चा सारे जगत में होगी। और अगर कोई आदमी स्वयं पर पहुंच जाए, तो कहीं कोई चर्चा नहीं होगी। क्योंकि हम उसे पहुंचने योग्य जगह ह ी नहीं मानते हैं। वह कोई चर्चा के लायक नहीं है। वह कोई न्यूज नहीं है। असल में जिसको हम समाचार और न्यूज कहते हैं, उल्टी और बेवकूफी की बातों को ही समा चार कहते हैं।

बर्नार्ड शा ने एक दफा कहा था। किसी ने पूछा था—कि आप किस चीज को न्यूज कह ते हैं, समाचार क्या है?

तो बर्नार्ड शा ने कहा—कुत्ता आदमी को काट खाए, तो यह कोई न्यूज नहीं है। आदम ी कुत्ते को काट खाए, तो यह न्यूज है।

और आपके सब अखबारों में बस वही न्यूज है, जिसमें आदमी कुत्ते को काटता है—व ह दिल्ली में काटता है कि अहमदाबाद में, यह मामला दूसरा है। लेकिन आदमी अपने पर पहुंच जाए, यह न्यूज बनने लायक नहीं है। यह कोई समाचार ही नहीं है। चांद पर पहुंच जाए, तो समाचार है। लेकिन पूछें कि क्या होगा? क्या प्रयोजन है?

एक बुनियादी चीज को छोड़कर, आदमी सब तरफ भाग रहा है, अपने को छोड़कर। एक जगह हम जाना ही नहीं चाहते। वहां अंधेरा है, इसलिए? वहां अकेले हो जाएंगे, इसलिए? वहां अपरिचित मिलेगा, इसलिए?

अगर यही आपके भय हैं, तो आप भीतर की यात्रा पर कभी नहीं निकलेंगे। ये भय तोड़ने पड़ेंगे। अंधेरे का भय तोड़ना पड़ेगा। जिसे जीवन में कोई भी क्रांति करनी हो प्र काश की, उसे अंधेरे का भय तोड़ना पड़ेगा।

और ध्यान रहे—यह बहुत अदभुत बात है कि जो आदमी अंधेरे का भय तोड़ देता है, उसकी जिंदगी में प्रकाश तत्क्षण भरना शुरू हो जाता है।

अंधेरे का भय ही प्रकाश और हमारे बीच दीवाल है। अंधेरा नहीं। डार्कनेस नहीं, फिय र आफ डार्कनेस। अंधेरा नहीं है हमारे और प्रकाश के बीच दीवाल, भय, अंधेरे का भय दीवाल है। क्योंकि भयभीत आदमी आंख बंद कर लेता है। प्रकाश और हमारे बी च अंधेरे की दीवाल नहीं है, आंख बंद होने की दीवाल है। आंख बंद होना ही अंधेरा है।

भीतर आंख बंद होना ही अंधेरा है। हम वहां आंख बंद किए हैं, इसलिए अंधेरा है। ह म भय के कारण आंख बंद किए हैं। शुतुर्मुर्ग होता है, तो रेत में सिर खपा लेता है। दुश्मन आ रहा है तो वह रेत में सिर गड़ा लेगा, और बड़ा हो जाएगा। फिर निश्चिंत हो जाएगा। क्योंकि अब आंख बंद है, अब दुश्मन नहीं है। आंख बंद होने से दुश्मन ि मटते होते, तो दुनिया बड़ी आसान हो जाती।

हम सब शुतुर्मुर्ग का काम कर रहे हैं—आंख बंद किए हैं भीतर की तरफ, और कहते हैं, बात खत्म हो गई। लेकिन आंख बंद करने से कुछ भी न होगा। आंख खोलनी ही पड़ेगी।

और आंख वही खोल सकता है, जो निर्भय है।

भय आंख को खुलने नहीं देता। भय कहता है, आंख बंद रखो, पता नहीं क्या दिख ज
ाए? जो नहीं देखना है, वह दिख जाए। जो देखना है वह न दिखे, तो आंख बंद रखो
, अपनी कल्पना से जो देखना है, देखते रहो। जो नहीं देखना है, इंकार करते रहो।
सब आदमियत अंधे की तरह चल रही है। भीतर की दुनिया में हम सब अंधे हैं। बाह
र की दुनिया में कुछ थोड़े से लोग अंधे पैदा होते हैं, भीतर की दुनिया में हम सब अं
धे पैदा होते हैं। बाहर की दुनिया में आज नहीं कल, अंधों की आंखें भी हम ठीक क
र लेंगे। सवाल भीतर की दुनिया का है, वहां क्या होगा?
कुछ लोग बाहर की आंखें लेकर पैदा नहीं होते, लेकिन अधिक लोग भीतर की आंखें
बिना पैदा किए ही मर जाते हैं। भीतर की आंख जन्म के साथ खुली हुई नहीं मिलती
। खोलनी पड़ेंगी।
लेकिन जन्म से लेकर हम जो भी शिक्षण देते हैं, वह सब भय का है। हम फियरलेसने
स सिखाते ही नहीं, हम भय ही सिखाते हैं। हजार-हजार तरह के भय सिखाते हैं, इ
सीलिए दुनिया बुरी है। और जब तक दुनिया में भय की शिक्षा जारी रहेगी, तब तक
दुनिया अच्छी नहीं हो सकती।
सब तरह के भय सिखाए जा रहे हैं। अनेक-अनेक रूप हैं भय के। पहले नर्क सिखाते
थे हम दुनिया को। हर आदमी को कंपा दिया था, बिल्कुल डरा दिया था। प्रत्येक आ
दमी डरा हुआ है। नर्क के बड़े-बड़े भय हमने पैदा किए थे। वह सब कल्पित और झूठे
भय थे। और आदमी को डराने के लिए पैदा किए गए थे। और जिन्होंने पैदा किया
था, उन्होंने सोचा था, हम डरा कर आदमी को अधार्मिक बना लेंगे।
डर कर कोई आदमी धार्मिक बना है? हां, डर कर अधार्मिक होने से बच सकता है,
धार्मिक नहीं बन सकता है। और अधार्मिक होने से बच गया है, वह अधार्मिक होने क
ी सारी क्षमता को भीतर इकट्ठी कर लेता है। वह आदमी बड़ा खतरनाक हो जाता है
।
जो आदमी रोज क्रोध कर लेता है, वह खतरनाक नहीं है। और जो क्रोध को दबाता
चला जाता है, वह बहुत खतरनाक है; क्योंकि वह किसी दिन हत्या से कम करने वा
ला क्रोध नहीं करेगा। जब भी करेगा, उसके पास काफी होल सेल, इकट्ठा हो जाएगा।
रिटेल तो यह काम करते नहीं, रोज का काम नहीं करता है। थोक, इकट्ठा हो जाए
गा।
जो लोग खोज-बीन करते हैं, वह कहते हैं, कि रोज-रोज छोटी-छोटी बातों पर क्रुद्ध
हो जाने वाले लोग, बड़ी दुनिया में बड़े खड्ड नहीं करते। जो क्रोध को पीते चले जाते
हैं, वे बड़े खतरनाक हो जाते हैं। इतना क्रोध इकट्ठा हो जाता है एक दिन, कि ओव
हरफिलो, ऊपर से बह जाना जरूरी हो जाता है। फिर तो बहुत खतरे हो जाते हैं।
भय ने मनुष्य को धार्मिक नहीं बनाया, सिर्फ अधार्मिक होने से डरा कर रोक दिया।
और वह सब अधर्म भीतर इकट्ठा हो गया है। अब वह फूट रहा है जगह-जगह से। इ
सके लिए जिम्मेवार आज का आदमी नहीं है। इसके लिए जिम्मेवार, पांच हजार साल
की मनुष्यता की पूरी संस्कृति है।

वह संस्कृति पूरी गलत थी। उसने आदमी को गलत भय सिखाए, निर्भय नहीं बनाया। भयभीत किया, डराया, नर्क, दंड, एक से एक भय दिखाए जो कि बहुत घबड़ाने वाले हैं।

ईसाइयत कहती है कि एक दफा, बस एक ही जीवन है। और अगर एक दफा पाप किया, तो फिर अनंत काल के लिए, नर्क में पड़े रहना होता है। फिर कोई छुटकारा नहीं है। कल नहीं, परसों भी नहीं, अगले वर्ष भी नहीं। इस युग में नहीं, अगले युग में नहीं—हजार, करोड़, अरब! नहीं, अनंतकाल तक फिर कोई छुटकारा नहीं है। ऐसा आदमी को कंपा दिया।

बर्ट्रेन्ड रसल ने कहीं लिखा है कि मैं अपनी जिंदगी भर के किए गए पापों और नहीं किए गए, सोचे गए पापों का ब्यौरा इकट्ठा करता हूं, तो कोई सख्त से सख्त मजिस्ट्रेट भी मुझे तीन-चार साल की सजा दे सकता है, इससे ज्यादा नहीं। लेकिन ईसाइयत कहती है कि मुझे अनंतकाल तक नर्क में सड़ना पड़ेगा।

और नर्क के दृश्य जितने खींचे हैं, बड़े क्रिमिनल माइंड रहे होंगे, बड़े अपराधी चित्त रहे होंगे। ऐसी-ऐसी तरकीबें ईजाद की हैं कि हिटलर, हिमलर और उसके पास जो साथी थे, वे भी नहीं कर पाए इतनी तरकीबें ईजाद, जितनी नर्क की कथा रचने वालों ने ईजाद की हैं।

कैसी-कैसी मजेदार हैं वे? प्यास लगेगी, पानी सामने होगा, लेकिन आप पी नहीं सकेंगे। पियेंगे तो पानी आग हो जाएगा। दूर से देखेंगे तो पानी, पास जाएंगे तो आग, और जलेगी अनंत काल तक।

ऐसा आप मत सोचना कि कभी थोड़ी-बहुत देर, कोई कोका-कोला की दुकान नर्क में मिल जाएगी। वह मिलने वाली नहीं है। वहां कोई दुकान नहीं है। अनंत काल तक प्यास, लाखों, करोड़ों कीड़े एक-एक आदमी के शरीर में घुसेंगे। छेद करके दूसरी तरफ से निकलेंगे। लाखों कीड़े पूरे शरीर में चक्कर लगाएंगे, छेद ही छेद हो जाएंगे। न आदमी मरेगा, न कीड़े मार सकेंगे आप।

कोई कीड़ा मरने वाला नहीं है। नर्क में कोई मरता ही नहीं है। आप कीड़े को मार नहीं सकते। आप भी मर नहीं सकते, और करोड़ों कीड़े छेद करेंगे, सारे शरीर को सड़ा देंगे। लेकिन मर नहीं सकते। बीमारियां होती हैं नर्क में, मौत नहीं होती है वहां! वहां केमिकल भी हो सकता है, टी0 वी0 भी हो सकती है, लकवा भी हो सकता है, लेकिन मौत नहीं हो सकती।

और ध्यान रहे, मौत का न होना नर्क में सबसे बड़ा खतरा है। क्योंकि मर जाए, तो आदमी छूट सकता है। वहां से छूट ही नहीं सकता। कढ़ाइयों में आदमी छूट सकता है। वहां से छूट ही नहीं सकता। कढ़ाइयों में आदमी जलाया जाएगा, जलेगा, लेकिन जल ही नहीं जाएगा, जलता रहेगा। ऐसे सब जिन्होंने इंतजाम किए हैं इतने टार्चर का, बड़े अदभुत लोग रहे होंगे। ऐसा मालूम पड़ता है—उनके मन में सताने की बड़ी प्रवृत्ति रही होगी। उसको निकाल नहीं पाए, तो आगे का हिसाब लगा, उन्होंने मन को खाली कर लिया होगा।

ऐसा है, आदमी के मन में जो घूमता है, उसे निकालने की बहुत तरकीबें हैं। जो लो ग कभी प्रेम नहीं कर पाते हैं, वे प्रेम की कविताएं लिख कर भी निकाल लेते हैं। जो लोग कभी किसी स्त्री को नहीं मिल पाते, वह उपन्यास में स्त्रियों को खूब मिल लेते हैं। जिंदगी में नहीं हो पाता, वह कविता में कर लेते हैं। जिनका मन सताने का रहा होगा, नहीं सता पाए। तो सताने की उन्होंने पूरी योजना कल्पना में गढ़ ली।

नर्कों की लंबी योजना है और इस योजना से घबड़ाया गया है सिर्फ आदमी को। आद मी को कुछ समझ नहीं आती है, न कोई रोशन आती है। फिर बहुत तरह के भय हैं। नर्क का भय तो है ही, अब और नए-नए भय उन्होंने विकसित किए हैं। असफलता का भय है, आदमी असफल न हो जाए। महत्वाकांक्षा से शून्य न रह जाए, खाली न रह जाए, एम्बीशन कहीं खाली न चली जाए। कहीं जिंदगी में यश न मिले, प्रतिष्ठा न मिले, धन न मिले। दस लोग नमस्कार न करें, क्योंकि जिंदगी ऐसे ही न खो जाए। बड़ा भय है।

तो जिंदगी में भयभीत हम हैं, उस भय के कारण जो भी हम कर सकते हैं, कर रहे हैं—धन इकट्ठा करो, दौड़ो, बड़ा मकान बनाओ, क्योंकि छोटा मकान बड़ा भय लाता है। कहीं बड़ा मकान मिल ही न पाए, कहीं मौका चूक जाएं, बड़ा मकान बनाओ।

लेकिन कोई पूछे, कि क्यों? क्यों इतना धन? क्यों इतना यश? एक ही जवाब है कि असफल हो जाएंगे।

असफल नहीं रहना चाहते हम! दूसरा सफल हुआ जा रहा है, हम असफल हुए जा र हे हैं। दूसरा जीतता चला जा रहा है, हम हारते चले जा रहे हैं। रूस इकट्ठा कर रहा है एटम, तो अमरीका भी इकट्ठा कर रहा है। पूछो क्यों? तो वह कहता है रूस से पूछो।

रूसे से पूछो, तो वह कहता है अमरीका से पूछो। वह दंड-बैठक लगाए चला जा रहा है, हम मुश्किल में हुए चले जा रहे हैं। जब तक वह लगा रहा है, हमक रुक नहीं स कते; क्योंकि वह बड़ा खतरनाक है। उससे पूछो! जब तक रूस कर रहा है, हम नहीं रुक सकते। सब एक-दूसरे से भयभीत हैं और भागे जा रहे हैं।

और हम पूरी मनुष्यता को एक-दूसरे से भयभीत किए हुए हैं। हिंदू, मुसलमान से डरा हुआ है। मुसलमान, हिंदू से डरा हुआ है। पड़ोसी-पड़ोसी से डरा हुआ है, गुजराती, मराठी से डरा हुआ है। हिंदी बोलने वाला, गैर हिंदी बोलने वाले से डरा हुआ है। हम ने पूरी आदमियत को सिर्फ डराया है। हजार तरह के डर पैदा किए हैं।

अगर पाकिस्तान हमला कर दे? अगर चीन हमला कर दे? चीन भी इसी भाषा में स ोचता है, पाकिस्तान भी इसी भाषा में सोचता है।

सारे लोग एक ही भाषा जानते हैं, लैंग्वेज आफ फियर, बस सब की एक ही भाषा है। तो बैंक में इंतजाम रखो, कल कुछ भी हो सकता है। अब वह भी डर का मामला है। बैंक का इंतजाम भी गड़बड़ हो सकता है। तब कहीं और गड़ाओ, फिर से गड़ाना पड़ेगा पैसा! फिर कहीं इंतजाम करो, यूरोप में बैंक बनाओ, कहीं और इंतजाम करो

। इंतजाम करो, भयभीत रहो, भागते रहो। लेकिन क्या कोई भय की इस दौड़ में अ भय हो सका है?

अभय हो सकता है आदमी। भय की दौड़ में दौड़कर नहीं। जिन-जिन चीजों से भय है , उनका साक्षात्कार, उनका एनकाउंटर कर लें। भय क्या है? उसका सीधा साक्षात्का र करना बहुत जरूरी है। भागने से क्या होगा?

अगर अकेले होने का भय है, तो मत भागते रहें कि इस पत्नी को इकट्ठा करो, इस बच्चे को इकट्ठा करो। फिर पक्का विश्वास रखो कि पत्नी छोड़ तो नहीं देगी? तो शास्त्र बनाओ, और पत्नी को समझाओ कि पति परमात्मा है, कभी छोड़ना मत? नहीं तो नर्क में पड़ना पड़ेगा। वह पति सुरक्षा कर रहा है। यह कह रहा है, कल पत्नी छो. ड भी सकती है। कल पत्नी किसी और के साथ भी जा सकती है। पर्दा लगाओ, बुर्का पहनाओ, दरवाजे बंद रखो, किसी से मिलने मत देना। सब भय है! पत्नी भी भयभीत! वह भी पता लगा रही है कि पति दफ्तर से सीधा घर आता है कि नहीं आता। सब भयभीत हैं! बच्चे भयभीत हैं मां-बाप से। मां-बाप बच्चों से भयभीत हैं। हम सभी एक-दूसरे से भयभीत हैं। हमारी सारी रिलेशनशिप, सारा संबंध भय का है। इसलिए तो जिंदगी इतना दुख हो गई है, इतनी पीड़ा हो गई है, इतनी चिंता हो गई है, इतनी विक्षिप्तता हो गई है। नहीं! भय से भागने से नहीं, भय का सामना ही करना प. डेगा। क्या भय है?

पहला तो भय, स्वयं को जानने का भय है। कोई आदमी स्वयं को नहीं जानना चाहता है। एक बुनियादी, बेसिक फियर है, जो हर आदमी के भीतर है। और खुद को न जानने की वजह से हर आदमी अपनी एक इमेज बना लेता है, जो बिलकुल झूठी है। और वह मान लेता है कि यही मैं हूं। अहंकारी से अहंकारी आदमी से पूछें, तो वह यह कहता है कि मैं तो बिलकुल विनम्र आदमी हूं। मुझसे ज्यादा विनम्र आदमी खोजना मुश्किल है। क्रोधी से क्रोधी आदमी यही समझता है कि दूसरे लोग मुझे क्रोध दिला देते हैं। मैं तो सदा शांत हूं। दुष्ट से दुष्ट आदमी भी यही सोचता है कि मुझसे ज्यादा सदय और दयावान कौन हो सकता है?

हर आदमी अपनी एक प्रतिमा बना लेता है, ताकि उसे न जान सके, जो वह है। और ऊपर से एक वस्त्र ओढ़ लेता है। दूसरों को धोखा दो, ठीक भी है। हम अपने को ही धोखा दिए चले जाते हैं। और मैं मानता हूं, दूसरों को धोखा वही दे सकता है, जो अपने को ही धोखा दे रहा हो। और यह भी मजे की बात है कि अगर हम दूसरों को धोखा देते चले जाएं, तो धीरे-धीरे खुद भी धोखे में आ जाते हैं।

झूठ बड़ी अदभुत चीज है। अगर मैं अपने संबंध में एक झूठ प्रचलित करूं, आप अगर उस पर विश्वास करने लगें, तो एक न एक दिन मुझे भी उस पर विश्वास आ जाएगा। इतने लोग मानते हैं, तो क्या गलत मानते होंगे?

मैंने सुना है, एक पत्रकार मरा और भूल से स्वर्ग में पहुंच गया। अब पत्रकारों के स्वर्ग जाने की संभावना जरा कम है। लेकिन पहुंच गया। और भूल-चूक सब जगह होती है

। किसी तरकीब से निकल गया होगा। और तरकीब पत्रकार बहुत सी जानता है। वह सब तरकीबों से कहीं भी पहुंच जाता है, जहां कोई नहीं पहुंच पाता।
वह पहुंच गया। दरवाजे पर दस्तक दी जोर से उसने, उसी अकड़ से, जैसा वह प्रधान मंत्रियों का डरा दे, राष्ट्रपतियों को डरा दे--दस्तक दी जोर से! पहरेदार ने झांका। उसने कहा कि कैसे आ गए हैं आप?
उसने कहा कि मैं पत्रकार हूं, भीतर आने दें। इतना काफी है, पत्रकार होना भीतर आने के लिए।
स्वर्ग के पत्रकारों ने कहा, माफ करें! स्वर्ग का दस पत्रकारों का कोटा पूरा हो चुका है। किसी पत्रकार की कोई जरूरत नहीं है यहां। फिर यहां कोई अखबार भी नहीं निकलता। वह दस भी खाली बैठे हुए हैं। आप नर्क चले जाएं, वहां अखबार भी बहुत निकलते हैं। घटनाएं भी बहुत घटती हैं, न्यूज वहां बहुत हैं। आप वहां चले जाएं।
उस पत्रकार आदमी ने कहा, लेकिन मैं नहीं रहना चाहता हूं। आप एक काम करें, अगर मैं दस में से एक को राजी कर लूं नर्क जाने के लिए, तो मैं अंदर आ सकता हूं?
उसने कहा, आप अंदर आ जाएं। चौबीस घंटे आप राजी करने की कोशिश करें। अगर कोई आपकी जगह चला जाए, तो हमें कोई फर्क नहीं पड़ता, हम आपको रख लेंगे।
वह पत्रकार भीतर गया। जो आदमी उससे मिला, अफवाह उड़ाने में तो वह कुशल था ही! जो आदमी उससे मिला, उससे कहा, सुना तुमने? नर्क में एक नया अखबार निकल रहा है और संपादकों के लिए बड़ी जरूरत है और बड़ी अच्छी पोस्ट है, तन्खाह भी अच्छी है, बंगला भी है, नौकर भी है। कार भी है, सब इंतजाम है! और अखबार निकल रहा है, नए संपादकों की जरूरत है।
सारे स्वर्ग में सुबह से शाम तक उसने यही खबर की। चौबीस घंटे पूरे हुए, वह वापस आया। सोचा, शायद एकाध पत्रकार इस अफवाह में चला गया हो। द्वार पर पहरेदार को उसने कहा, कोई गया?
पहरेदार ने हाथ जोड़कर, दरवाजे को भीतर से लगा, दरवाजा बंद कर लिया और कहा, भाग मत जाना। वह बाहर के दस ही जा चुके हैं। दस ही जा चुके हैं। अब कोई नहीं है, अब तुम रुको अब तुम मत चले जाना।
उस आदमी ने कहा, ऐसा कैसे हो सकता है? हो सकता है, अखबार निकल ही रहा हो। मुझे जाने दो। जब दस लोग गए हैं और सारे स्वर्ग में यही चर्चा है, कौन जाने? मैंने तो झूठ ही शुरू किया था, लेकिन बात सच भी हो सकती है। मैं नहीं रुक सकता।
आदमी दूसरे को धोखा देते-देते, कब खुद को धोखा दे जाता है, पता नहीं चलता। दूसरे विश्वास करने लगें, धीरे-धीरे खुद को विश्वास आ जाता है। क्योंकि हम अपने को भी सीधा तो जानते नहीं, दूसरे की आंख में झांककर जानते हैं कि दूसरा आदमी क

या कह रहा है! अगर सब लोग मुझे अच्छा समझते हैं, तो मैं अच्छा आदमी हो जाता हूं।

अगर कुछ लोग मुझे बुरा समझने लगें, तो हमें शक पैदा होने लगता है कि कहीं मैं बुरा तो नहीं हूं। अगर सब लोग बुरा समझने लगें, तो पीड़ा शुरू हो जाती है।

हम दूसरे से इसीलिए भयभीत होते हैं, और फिक्र करते हैं कि दूसरा क्या सोच रहा है? फिर एक भय पीछे काम करता है, क्योंकि हमारी इमेज, हमारी प्रतिमा, दूसरे की आंख की झलक चुराकर, हमने बनाई है। वह झलक अगर चली गई, तो प्रतिमा गई।

हम सब, हम जो नहीं हैं, वह हम अपने को मान कर बैठे हुए हैं। जो हम हैं, उसे हम देखना भी नहीं चाहते। और इसीलिए जो हम हो सकते हैं, उसकी कोई यात्रा नहीं हो पाती।

क्या मन होता है कभी, इस सत्य को भी जानने का कि, वह कौन हैं जो मेरे रूप में पैदा हुआ है? क्या कभी मन होता है इस सत्य को जानने का कि, वह कौन है जो बच्चा था, जवान हो गया? क्या कभी प्रश्न नहीं उठता भीतर कि, मैं कौन हूं? किसी अंधेरे में, एकांत में, किसी कोने में, जिंदगी के किसी क्षण में यह सवाल नहीं पकड़ लेता है कि मैं कौन हूं? यह कौन है, जो जी रहा है; यह कौन है, जो कल पर मर जाएगा? नहीं पकड़ता है यह सवाल आपको? यह ख्याल भीतर कभी तीर की तरह नहीं घुसता है?

घुसता होगा! आप बचकर निकल जाते होंगे फौरन, दूसरे काम में लग जाते होंगे। रेडियो खोल लेने लगते होंगे, अखबार पढ़ने लगते होंगे, मित्र से बात करने लगते होंगे, पत्नी को प्रेम जताने लगते होंगे। जल्दी इससे बच जाते होंगे कि यह कहां का सवाल उठ रहा है? सवाल को उठने नहीं देना है; क्योंकि आप वहीं नहीं रह सकेंगे, जो आप सवाल पूछने के पहले थे। यह सवाल खतरनाक है; क्योंकि यह पूरी क्रांति का आवागमन है। आगमन है। यह सवाल खतरनाक है; क्योंकि यह आग में कूदना है, कौन हूं मैं?

पुरानी प्रतिमा जलेगी। क्योंकि जिसने यह पूछा कौन हूं मैं, वह संदिग्ध हो गया। उसकी प्रतिमा वहीं नहीं रहती है। और जिस दिन कोई पूछेगा, कौन हूं मैं, तो भीतर जाना पड़ेगा, नहीं तो मैं जानूंगा कैसे कि कौन हूं मैं? किससे पूछूंगा मैं? अगर मुझे पता लगाना हो कि मैं कौन हूं, तो किसके पास जाऊं? कौन मुझे बताएगा?

दुनिया में कोई मुझे नहीं बता सकता; क्योंकि जब मैं ही अपने को नहीं जानता, तो और कौन मुझे जान सकेगा? लेकिन मैं अपनी पत्नी से कहता हूं—मुझे जानती है न? अपने पति से कोई कहता है मुझे जानते हैं न? अपने बेटे से कोई कहता है—मैं तुम्हारा बेटा हूं, मुझे जानते हैं न? मित्र, मित्र से कहता है, जानते हो न?

लेकिन मैं ही स्वयं को नहीं जानता, तो कौन मुझे जानेगा? और सब जान लें मुझे, और उनका सबका जानना मैं इकट्ठा कर लूं, पूरा, टोटल एग्रीगेट, सबको जोड़ लूं, तो भी मेरा पता नहीं चलेगा कि मैं कौन हूं। यह ऐसा ही होगा, जैसे मेरे पचास फोटो उ

तारे जाएं, पचास निगेटिव। और फिर पचास निगेटिव एक ही पोजेटिव पर उतार दिए जाएं। पचास का जोड़ एक ही पोजेटिव फोटो पर उतार दिया जाए। एक निगेटिव उतारा, फिर उसी पर दूसरा, फिर उसी पर तीसरा, पचास का एग्रीगेट—वह ज्यादा अच्छा होना चाहिए एक की बजाय; क्योंकि पचास तस्वीरें मेरी जुड़ गईं, तो पचास गुना ज्यादा अथेंटिक होंगी?

वह सब धूमिल हो जाएगा, उस पर रेखा भी समझ में नहीं आएगी। पचास आंखों में जोड़कर जो मैं अपनी तस्वीर बनाऊंगा, कुछ बनने वाला नहीं है। सिर्फ पचास निगेटिव इकट्ठे हो जाएंगे, कोई तस्वीर बनेगी नहीं। और तस्वीर क्या बनेगी, सिर्फ एक पागलपन हो जाएगा। हम सब इसीलिए पागल हो गए हैं। हमारी अपनी कोई तस्वीर नहीं बनती है।

नौकर कुछ और कहता है मेरे बाबत, मेरा मालिक कुछ और कहता है, दोस्त कुछ और कहते हैं, दुश्मन कुछ और कहते हैं। अ कुछ कहता है, ब कुछ कहता है। पचास हजार निगेटिव इकट्ठे हो जाते हैं। उन्हीं को जोड़-तोड़कर मैं अपनी तस्वीर बनाता हूं कि यह मैं हूं। कोई तस्वीर बनती नहीं। बड़ी तरल रहती है तस्वीर, इधर से खिसक जाती है, उधर से बिखर जाती है। बना-बनू के तैयार नहीं हो पाती कि गिरनी शुरू हो जाती है।

नहीं, मैं नहीं जान पाऊंगा इस तरह कि मैं कौन हूं। मैं एक-दूसरे से पूछकर नहीं जान सकता। और दूसरे से पूछने जाऊं क्यों? सिर्फ इसलिए जाता हूं कि अपने से पूछने में डरता हूं? कोई मुझे नहीं बता सकेगा। न कोई शास्त्र, न कोई गुरू। कहीं नहीं लिखा है कि मैं कौन हूं। मैं बिलकुल अनलिखा हूं। कोई शास्त्र खबर नहीं देता कि मैं कौन हूं, और कोई गुरू इशारा नहीं कर सकता कि मैं कौन हूं।

मुझे अपने भीतर प्रवेश करना उठता है। कई बार उठता है। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है कि किन्हीं क्षणों में, कभी दुख में उठ सकता है, कभी सुख में उठ सकता है, कभी हारे हुए होने में उठ सकता है, कभी जीते होने में उठ सकता है, कभी रास्ते पर चलते उठ सकता है, कभी बैठे, सोते उठ सकता है। सवाल बहुत बार उठता है। बहुत बार भीतर से खबर आती है कि खोजो कौन हूं मैं? हम उसे दबा देते हैं, हटा देते हैं, ताश खेलने लगते हैं, शतरंज खेलने लगते हैं। बहुत तरह की शतरंजें हैं, बहुत-बहुत तरह के ताश हैं, उनमें हम लग जाते हैं और भुला देते हैं। और कभी सवाल को नहीं उठने देते।

शायद डर लगता है कि यह सवाल सब गड़बड़ कर देगा। डिस्टरबेंस हो जाएगा। सब टूट-बिखर जाएगा। ठीक है, जैसा चल रहा है। बैठे रहो, ऐसे ही बने रहो, चलते चले जाओ। लेकिन इस चलने से कभी कोई पहुंचता नहीं। यह पूछना ही पड़ेगा कि मैं कौन हूं। और इस पूछने के लिए भीतर की एक यात्रा करनी पड़ेगी।

तीन सूत्र मैंने कहे—उन्हें थोड़ा ख्याल में लेकर सोचेंगे। अंधेरे से मत डरें, भीतर अंधेरा है। भीतर के अंधेरे में उतरना पड़ेगा। अकेले होने से मन डरें, भीतर आप अकेले हैं। कई बार बहुत सख्त मालूम होती हैं कुछ बातें।

जीसस के पास एक आदमी आया। और जीसस ने उससे कहा—अपनी मां को छोड़कर आ, अपनी पत्नी को छोड़कर आ, अपने बेटे को छोड़कर आ, अकेला! डिनाय योर मदर, डिनाय योर फादर।

बड़ी सख्त मालूम पड़ती है बात कि ईसा जैसा भला आदमी, जीसस जैसा प्यारा आदमी यह कहता है इंकार करो पिता को, इंकार कर दो अपनी मां को, इंकार करके आओ।

क्या मतलब है? क्या कहा कि पिता को जाकर कह आ कि तू मेरा पिता नहीं है? नहीं, यह नहीं कहा है। कहा है—भीतर से तू जान कि तू अकेला है। न कोई अकेला है, न कोई मां है, न कोई पिता है।

जीसस एक भीड़ में खड़े हैं, कुछ लोगों ने घेर रखा है, एक बाजार है। जीसस की मां मरियम मिलने गई है। उसने भीड़ को छांटने की कोशिश की है। किसी आदमी से उसने कहा है—मैं जीसस की मां हूं, मुझे भीतर जाने दें।

भीड़ बहुत है, किसी आदमी ने चिल्लाकर कहा, जीसस, तेरी मां मिलने आई है, रास्ता दो! जीसस की मां भीतर आती है।

जीसस ने कहा—मेरी कोई मां नहीं है। बड़ी सख्त बात मालूम पड़ती है—बहुत सख्त मालूम पड़ती है। बहुत कठोर मालूम पड़ती है, कि जीसस कहें, मेरी कोई मां नहीं है। लेकिन जीसस जैसे आदमी से कठोरता की आशा नहीं है, क्योंकि वह कहता है कि एक गाल पर तुम्हारे कोई चांटा मारे, तो दूसरा सामने कर देना। वह आदमी कैसे यह कह सकता है कि मेरी कोई मां नहीं है? लेकिन उसने कुछ और ही अर्थ में कहा है। निश्चित ही उसने इस अर्थ में कहा है, मैं अकेला हूं। शायद वह अपनी मां को भी कहना चाहता है कि तेरा कोई बेटा नहीं है। आदमी अकेला है।

और जो अकेला होने को राजी नहीं है, वह भीतर नहीं जा सकता। वहां अकेला होना ही पड़ेगा। संग-साथ बाहर है। भीतर सब अकेला है। मौत से हम इसीलिए डरते हैं कि अकेले हो जाएंगे, और इसीलिए ध्यान से डरते हैं। समाधि से डरते हैं कि अकेले हो जाएंगे। इसलिए भीतर जाने से डरते हैं कि अकेले हो जाएंगे। साथ चाहिए, सहारा चाहिए, एक-दूसरे का हाथ पकड़े रहें। भीतर किसी का हाथ कैसे ले जाएंगे?

नहीं! कोई भीतर साथ नहीं जा सकता। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि पत्नी को छोड़कर कोई भाग जाए। बच्चों को छोड़कर कोई भाग जाए। वह नासमझी है। छोड़कर भागने का कोई सवाल नहीं है। यह जानना जरूरी है कि भीतर मैं अकेला हूं। छोड़कर भी भागने का क्या सवाल है?

जो छोड़कर भाग रहा है, उसने शायद मान लिया कि कोई मेरा है, इसलिए छोड़कर भाग रहा है। लेकिन जो जानता है, अकेला है—न छोड़ना है, न भागना है, बाहर से कोई परिवर्तन करने की जरूरत नहीं है। भीतर अकेले होने की हिम्मत जुटाने की जरूरत है।

पहली बात, अंधेरे की तैयारी करनी पड़ेगी, अकेले होने की हिम्मत जुटानी पड़ेगी औ र तीसरी बात, यह भय, यह डर, अननोन का, अननोन का अपरिचित का, छोड़ देन ा पड़ेगा।

अनचार्टर्ड है वहां, भीतर कोई नक्शा नहीं है हाथ में, कि कोई नक्शा दे दे कि यहां जाओ, तो इस चौरस्ते पर पहुंचोगे। वहां से आगे बढ़ोगे, तो यह मकान मिलेगा। फिर पुलिस थाना है, इस तरह कोई खबर नहीं है भीतर। वहां कोई रास्ता नहीं है। वहां तो आप जाएंगे, जाने से ही रास्ता बनेगा।

वहां रास्ता पहले से तैयार नहीं है कि बना हो। वहां तो जाएंगे और जाना ही रास्ता बनेगा। बिलकुल फासला पास है, रास्ता नहीं है। फर्क नहीं है वहां, लेकिन जाने से रा स्ता बन जाता है। कोई जाए--और आपके भीतर कोई दूसरा नहीं जा सकता, इसलिए तैयार रास्ता मिलेगा कैसे? कोई गया होता, तो पगडंडी बन गई होती, पैरों के चि ह्न होते।

आपके भीतर कोई नहीं गया, न कोई जा सकता है। आप की जा सकते हैं, और आ प अब तक नहीं गए। वहां रास्ता कैसे हो सकता है? अनजान है, अपरिचित है। लेकि न अपरिचित में घुसने की हिम्मत जुटानी पड़ती है।

इन तीन बातों पर सोचना, फिर आगे हम बात करेंगे। अंधेरे की स्वीकृति, अंधेरे का स्वागत। अकेले होने का साहस, अपरिचित-अपरिचित को आलिंगन करने की हिम्मत आदमी जुटा लेता है, वह भीतर के अंधेरे, भीतर के अज्ञान, भीतर की अविद्या को अतिक्रमण कर जाता है, ट्रासेंट कर जाता है, वह उस लोक में पहुंच जाता है, जहां सदा प्रकाश है।

अंधेरे से प्रकाश की ओर की यात्रा में ये तीन बातें बहुत ध्यान रखने योग्य हैं। शेष सु बह हम बात करेंगे। आपके जो भी प्रश्न होंगे, लिखित दे देंगे ताकि उन पर सांझ बा त हो सके। मेरी बातों को इतनी प्रेम और शांति से सुना है, उससे बहुत अनुग्रहीत हूं और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार क रें।

अपना जीवन, अपना सत्य

अंधेरे से प्रकाश की ओर जाना तो दूर, हम अंधेरे से और गहरे अंधेरे में उतरते चले जाते हैं। उपनिषद् के किसी ऋषि ने कहा है--अज्ञान तो अंधकार में ले जाता है, ज्ञा न महा-अंधकार में ले जाता है। बहुत उलझी हुई और विरोधाभासी बात कही है। अ ज्ञान तो अंधकार में ले जाता है, ज्ञान और महा-अंधकार में।

साधारणतः तो हमने यही सुना है कि ज्ञान प्रकाश में ले जाता है। निश्चित ही जो ज्ञा न अंधकार में ले जाता हो, वह ज्ञान और ही तरह का ज्ञान होगा। और हम रोज-रो ज गहरे-से-गहरे अंधकार में चले जाते हैं, तो निश्चय ही जिसे हम ज्ञान कहते हैं, ऐ सा ही ज्ञान होगा।

हमारा ज्ञान हमें और अंधकार में ले ही जाता है। क्योंकि हमारा ज्ञान हमारे भीतर से नहीं आता, हमारे बाहर से ही इकट्ठा हाता है, और सिर्फ हमारे अहंकार को मजबूत

कर जाता है। मैं जानता हूं, यह अहंकार जिसके भीतर भी घनीभूत हो गया, वह ि फर प्रकाश की यात्राएं नहीं कर पाता। प्रकाश की यात्रा के लिए अहंकार साथी नहीं हो सकता, वहां तो चाहिए, विनम्रता, अति विनम्र भाव, अति निर-अहंकार भाव, इग ोलैसनेस चाहिए।

जितनी मजबूत हमारे इगो और अहंकार की दीवाल है, उतनी ही प्रकाश की किरणें हमारे भीतर नहीं पहुंच पाती हैं। हम अपने मकान के सब द्वार-दरवाजे बंद करके भी तर बैठ जाएं, फिर बाहर सूरज भी रहे, तो क्या फर्क पड़ता है? हम अंधेरे में ही जि एंगे। और अहंकार से ज्यादा मजबूत कोई दीवाल नहीं है, जिसके भीतर मनुष्य बंद ह ो सके। अहंकार के कैपसूल में, खोल में, हम सब बंद हो जाते हैं।

और साधारणत: जिसे हम ज्ञान कहते हैं, हमारे अहंकार को ही बढ़ा जाता है। इसीलि ए दुनिया जितनी शिक्षित होती मालूम पड़ती है, उतनी अहंकारी होती चली जाती है । शिक्षा से तो होना चाहिए था कि अहंकार छूट जाए। विश्वविद्यालय से निकलते सम य होना तो यह चाहिए कि मनुष्य विनम्र होकर बाहर आए। वहां से और अहंकार ले कर वापस लौटता है। अहंकार पर सील-मोहर भी लग जाती है अहंकार और मजबूत हो जाता है। जितना ही हम जानने लगते हैं, लगता है कि हम उतने ही सुरक्षित हो गए हैं। उतने ही मजबूत हो गए हैं।

सब प्रकार का जानना—जो भी बाहर से उपलब्ध होता है, वह सभी जानना अंधकार में ले जाने की सीढ़ी बनता है। इस संबंध में थोड़ी बात समझ लेनी जरूरी होगी। प्रक ाश की यात्रा के लिए उस तरफ सोचना और खोजना जरूरी है।

हम जानते क्या हैं? शायद ही कोई अपने से पूछता हो कि मैं क्या जानता हूं? एक वहुत बड़ा विचारक, एक फकीर के पास गया था। उस विचारक ने कोई तीस किताबें लिखी थीं। उन किताबों की बड़ी प्रशंसा की सारी दुनिया ने। उन किताबों में से एक किताब के बाबत तो ऐसा कहा जाता था कि, दुनिया की दो-चार बड़ी किताबों में एक है।

अगर आपमें से किसी ने वह किताब देखी हो, तो वह है ट्रर्शियम आर्गनम। पी0 डी0 आस्पेंस्की की एक किताब है ट्रर्शियम आर्गनम। ज्ञान का तीसरा सिद्धांत। अरस्तू ने ए क किताब लिखी है, ज्ञान का पहला सिद्धांत, आर्गनम। बैकन ने एक दूसरी किताब ि लखी है, नोवम आर्गनम, ज्ञान का नया सिद्धांत, और आस्पेंस्की ने एक किताब लिखी है, टर्शियम आर्गनम, ज्ञान का तीसरा सिद्धांत। और ये तीनों किताबें बहुत अदभुत हैं।

यह आस्पेंस्की इस किताब को लिखने के बाद एक बिलकुल अपरिचित, अनजान, जिसे कोई नहीं जानता, ऐसे एक फकीर गुरुजिएफ के पास मिलने गया—ज्ञान से भरा हुआ । इस ख्याल से भरा हुआ कि न केवल मैं जानता हूं इसे दूसरे लोग भी जानते हैं। गु रुजिएफ से जाकर उसने कहा कि कुछ परमात्मा के, सत्य के संबंध में आपसे मुझे जा नना है।

गुरुजिएफ ने कहा—अगर तुम पहले से जानते हो, तो जानना फिर बहुत मुश्किल है। और तुम जानने से भरे हुए मालूम पड़ते हो। एक छोटा कागज मैं तुम्हें देता हूं, इस पर लिखो। तुम जो जानते हो, वह लिख दो, फिर उसकी मैं बात नहीं करूंगा और तु म जो नहीं जानते हो, वह लिख दो, तो मैं उसकी बात करूं, जो नहीं जानते हो। क्य ोंकि जो तुम नहीं जानते हो, वही जानना उचित होगा। जो जानते ही हो उसे जानने की अब और क्या जरूरत है?

एक बगल के कमरे में भेज दिया आस्पेंस्की को कागज देकर। आस्पेंस्की ने तीन किता बें लिखी हैं। अदभुत उसकी प्रतिष्ठा है। वह कागज लेकर बैठ गया। सोचने लगा—क्या मैं जानता हूं? ईश्वर को मैं जानता हूं? ईश्वर के संबंध में हजारों पृष्ठ मैंने लिखे, लेकिन जानता हूं? तो भीतर से उत्तर नहीं आया कि जानता हूं। भीतर से उत्तर आ या, क्या परिचय है हमारा ईश्वर से? ईश्वर है भी या नहीं, यह भी पता नहीं है। आ त्मा को जानता हूं? स्वयं को जानता हूं?

भीतर से कोई उत्तर नहीं आया जानने का। आस्पेंस्की हैरान हुआ। जिंदगी भर यही ख याल था कि मैं बहुत जानता हूं। और अंत में कोरा कागज लाकर उस फकीर को वा पस दे दिया और कहा, क्षमा करें, मैं तो कुछ भी नहीं जानता हूं।

फकीर ने नीचे से ऊपर तक देखा और उसने कहा, अब जानने की यात्रा हो सकती है। इतनी विनम्रता से यात्रा शुरू होती है।

लेकिन हमने कभी अपने से नहीं पूछा होगा किसी एकांत में, कि मैं जानता क्या हूं? हम एक दूसरे से विवाद भी कर लेते हैं कि मैं जो जानता हूं, वह ठीक है। लेकिन अ पने से हमने कभी कोई विवाद नहीं किया है कि मैं जो जानता हूं, वह जानता भी हूं ? ठीक और गलत होना तो बहुत दूर की बात है।

जिस क्षण व्यक्ति को पता चलता है कि मैं जो भी जानता हूं सब उधार, बासा, मरा हुआ है। मेरा अपना कोई जीवंत अनुभव नहीं है, उसी दिन एक क्रांति उसके जीवन में शुरू हो जाती है। अपने अज्ञान का बोध, अपने इग्नोरेंस का बोध।

साक्रेटीज कहता था, मैंने ऐसे लोग देखे, जिनके ज्ञान को इगनोरेंट नालेज कहा जा स कता है। इगनोरेंट नालेज बड़े उल्टे शब्द हैं। अज्ञानपूर्ण ज्ञान, क्या मतलब है इसका? इसका मतलब है, जो हैं तो अज्ञान में, लेकिन जिन्हें यह ख्याल है कि हम जानते हैं। और साक्रेटीज कहता था, मैंने ऐसे लोग भी देखे हैं जो ज्ञान को, या जिनके अज्ञान क ो नोइंग इगनोरेंस कहा जा सकता है—जानता हुआ अज्ञान। जो ग्रह जानते हैं कि उन के परम सत्यों के संबंध में हमें कुछ भी पता नहीं है।

लेकिन कैसे मानें? हमने किताबें पढ़ी हैं, हमने गुरुजनों से सुना है, हमने ऋषियों, मु नियों, महात्माओं की वाणी याद की है। हमें बहुत कुछ पता है, हम कैसे मानें कि हम नहीं जानते हैं? हमें ईश्वर के संबंध में करीब-करीब जो भी कहा गया है, सब पता है।

लेकिन ईश्वर के संबंध में जो भी कहा गया है, सब इकट्ठा कर लो, तो भी ईश्वर का क्षण भर अनुभव, उस कहे हुए से नहीं निकलता है। और ईश्वर के संबंध में जो भी

लिखा गया है वह सब इकट्ठा कर लो, और सबका निचोड़ निकाल लो, तो भी ईश्व
र के अनुभव की एक झलक उससे नहीं मिलती।
जैसे कोई किताब खोले और किताब में लिखा हो, घोड़ा! और किताब पर सवार हो
जाए और घोड़े को हांकने लगे, तो हम उसे पागल कहेंगे। किताब में सिर्फ शब्द हैं,
घोड़ा नहीं। शास्त्रों में भी सिर्फ शब्द हैं, परमात्मा नहीं। लेकिन किताब के घोड़े से को
ई धोखे में नहीं आता और कभी घोड़े पर सवारी नहीं करता, लेकिन किताब के परम
ात्मा से बहुत लोग धोखे में आ जाते हैं। और किताब के परमात्मा से प्रार्थना करने
लगते हैं। किताब के घोड़े पर चढ़ना और किताब के परमात्मा से बात करना बिलकु
ल बराबर है, एक-सा पागलपन है। लेकिन घोड़े पर चढ़िएगा तो पकड़ जाएंगे, घर के
लोग पागलखाने ले जाएंगे। और किताब के परमात्मा से प्रार्थना करिए, तो घर के
लोग भी आपके पैर पड़ेंगे, पास-पड़ोस के लोगों में खबर हो जाएगी, यह आदमी धार्ि
मक है।
किताब के परमात्मा से क्या संबंध है सत्य का? किताब में तो सिर्फ अक्षर लिखे हैं,
वे स्याही के धब्बों से ज्यादा नहीं। उनसे क्या मिलेगा? हां, शब्द मिल सकता है, परम
ात्मा शब्द मिल सकता है। और रोज-रोज पढ़ने से परमात्मा शब्द भीतर गहरे बैठ स
कता है, और आप और हम यह भूल सकते हैं कि यह सिर्फ शब्द हैं, और अनुभव ह
मारे भीतर कहीं भी नहीं है, और कई वर्षों के निरंतर याद करने से विस्मरण हो जा
एगा कि मैं नहीं जानता था और भ्रम हो जाएगा कि मैं जानता हूं।
मनुष्य का ज्ञान शब्दों पर खड़ा हुआ है, सत्यों पर नहीं। इसलिए मनुष्य का ज्ञान भी
अज्ञान में ही ले जाता है, अंधकार में ही हमारा सारा ज्ञान शब्दों पर खड़ा हुआ है।
शब्द पर खड़े हुए ज्ञान का क्या अर्थ हो सकता है? अनुभव पर ज्ञान खड़ा हो, तो ही
ज्ञान है।
शब्द पर खड़ा हुआ ज्ञान सिर्फ धोखा है, डिसेप्शन है और खतरनाक, महंगा धोखा है।
एकदम महंगा धोखा है। इतना महंगा धोखा दुनिया में दूसरा कोई भी नहीं है।
एक छोटे से बच्चे को हम बचपन से सिखाना शुरू कर देते हैं। मैं छोटा था, मेरी पह
ली जो स्मृति है वह यही है कि मुझे मंदिर में ले जाया गया। मुझे वहां सिर्फ पत्थर
की मूर्तियां दिखाई पड़ रही थीं और मुझे कहा गया, यह भगवान हैं। मैं नहीं मान स
का इस बात को कभी भी—नहीं मान सका, तो भगवान की खोज करनी जरूरी हो ग
ई—फिर भगवान क्या है?
मान लेता तो मर जाता, वे मूर्तियां ही भगवान हो जातीं और खोज समाप्त हो जाती
। बहुत लोगों ने मान लिया है और रुक गए हैं। मैं नहीं समझ सका कि इन मूर्तियों
में भगवान कहां है? रात के अंधेरे में जाकर उन मूर्तियों को हिला-डुला कर, और पै
र की लात मार कर भी देखा। उनसे कोई पता नहीं चला कि वे पत्थर से ज्यादा हैं।
लेकिन घर के लोग, पड़ोस के लोग सभी कहे जाते रहे कि वे भगवान हैं, पैर पड़ो।
घर के लोगों के डर से हाथ भी जोड़ता था। लेकिन वे हाथ झूठे थे, और भीतर जान

ता था किसको हाथ जोड़ रहा हूं? बहुत मजाक मालूम पड़ता था। लेकिन सौभाग्य था कि मान नहीं सका कि वहां भगवान है। तो भगवान की खोज जरूरी हो गई।

और जो लोग मान लेते हैं मूर्तियों में, शब्दों में, पत्थरों में, सिखाई हुई बातों में, उन की खोज वहीं बंद हो जाती है। हम हर बच्चे की खोज बंद करने की कोशिश करते हैं। समाज बहुत दुश्मन है। समाज की सारी व्यवस्था सत्य के विपरीत है। हम हर बच चे की सत्य की खोज बंद कर देना चाहते हैं, सब द्वार-दरवाजे बंद कर देना चाहते हैं। हम उसे राजी कर लेना चाहते हैं कि तुम यह मानो, और यह ठीक है।

बच्चा अबोध है। वह सोचता है, जो बड़े हैं, वह जानते होंगे। उसे पता नहीं कि छोटे का अज्ञान छोटा है, बड़े का अज्ञान और बड़ा हो गया है, और कोई फर्क नहीं पड़ा। उम्र के बढ़ने से ज्ञान कोई बढ़ता नहीं है। हां, उम्र के बढ़ने से आदमी ज्यादा भयभी त हो जाता है, और भयभीत आदमी अज्ञान को ही ज्ञान मानकर रुक जाता है। हम एक-एक बच्चे को सिखा देते हैं शब्द, जो उसे जानना चाहिए, वह हम सिखा देते हैं और सिखा देने की वजह से ही वह जानने की दिशा में कभी कदम नहीं उठाता।

अगर हम कहीं एक स्कूल खोल लें और वहां लोगों को प्रेम करना सिखाएं, बच्चों को, छोटे बच्चों को प्रेम करना सिखा दें और उन्हें प्रेम एक-एक गेस्चर सिखा दें, और प्रे म के समय कैसी आंख करनी चाहिए, और कैसे शब्द बोलने चाहिए, कैसे किसी को गले लगा लेना चाहिए, कैसे किसी का चुंबन लेना चाहिए, सिखा दें—बच्चों को प्रेम के संबंध में सारी कला सिखा दें, एक्शन सिखा दें—फिर ध्यान रहे बच्चे कभी प्रेम नहीं कर पाएंगे। ये एक्टिंग ही करते रहेंगे, क्योंकि एक्टिंग से ही काम चल जाएगा।

और ध्यान रहे, एक्टिंग असलियत से अक्सर ज्यादा कुशल होती है। क्योंकि झूठी होती है। झूठ के साथ कुशलता पैदा करनी बहुत आसान है। क्योंकि झूण को जैसा चाहो, वैसा मोड़ा जा सकता है। सत्य मुड़ता नहीं, आपको ही मुड़ना पड़ता है। सत्य के साथ आप कुछ नहीं कर सकते। सत्य ही आपके साथ करता है। झूठ के साथ आप कुछ भी कर सकते हैं। झूठ में कला प्रविष्ट हो सकती है।

इसलिए प्लेटो जैसे विचारशील आदमी ने तो यह कहा है कि सब कला झूठ है। और कवियों से ज्यादा झूठा और कोई भी नहीं है। उसका मतलब सिर्फ इतना है कि सब अभिनय झूठ पर खड़ा है।

अगर बच्चों को हमने किसी दिन प्रेम करना सिखा दिया—और कुछ लोग हैं, अमरीका में एक आदमी है इलिकटोम, वह कहता है, दुनिया में प्रेम सिखाना चाहिए, क्योंकि लोग प्रेम कर नहीं रहे हैं। अगर बात मान ली, और मान ली जाएगी जल्दी, क्योंकि आदमी इतना नासमझ है कि नासमझी की बातें बहुत जल्दी मान लेता है।

अगर दुनिया में प्रेम सिखाने के प्रशिक्षण खुल गए, ट्रेनिंग स्कूल खुल गए और बच्चों को हमने प्रेम सिखा दिया, तो ध्यान रहे, फिर चाहे भले ही भूल-चूक से, कोई बच्चा अगर बच जाए तो प्रेम कर सके, अन्यथा अभिनय ही जारी रहेगा।

वैसे अभी भी अभिनव ही चलता है। अभी भी बहुत कम लोग प्रेम कर पाते हैं। अभि नय ही करते चले जाते हैं। जब आप अपनी पत्नी से कहते हैं, तुझसे सुंदर कोई भी

नहीं है, तब कभी आपने सोचा है कि आप क्या कह रहे हैं? रोज सड़क पर पता च
ल जाता है कि पत्नी से ज्यादा सुंदर स्त्रियां हैं। लेकिन पत्नी से यही कहे चले जा रहे
हैं कि तुझसे ज्यादा सुंदर कोई भी नहीं है। अभिनय चल रहा है।
अभी अभिनय चल रहा है बिना सीखे हुए। अगर सिखाने की व्यवस्था कर दी जाए,
तो अभिनय से ज्यादा निष्णात ट्रेंड, कल्टीवेटेड, और व्यवस्थित होगा। भूल-चूक कम
होगी। लेकिन फिर प्रेम नहीं हो सकेगा।
असल में जीवन की कोई भी गहरी चीजें बाहर से सिखा दी जाएं तो आदमी सिर्फ बा
हर ही अभिनय करके मुक्त हो जाता है। फिर भीतर जाने की जरूरत नहीं रह जाती
। भीतर तो कोई तभी जाता है, जब बाहर कोई उपाय नहीं मिलता। जब तक बाहर
कोई सहारा मिल जाए तब तक भीतर नहीं जाना चाहता। अगर प्रेम की तरकीब ब
ाहर ही मिल जाए, तो भीतर कोई किसलिए जाए? फिर भीतर कौन हृदय को जगा
ए?
हृदय को जगाना पीड़ापूर्ण है। अभिनय में सुख ही सुख है। सच्चे प्रेम में दुख भी बहुत
है। अभिनय में दुख कभी भी नहीं है। अभिनय में सुख ही सुख है। लेकिन जिस अभि
नय में दुख न हो, उसका दुख भी बहुत ऊपरी होगा, उसका भी कोई बहुत गहरा अ
र्थ नहीं हो सकता। क्योंकि जितना दुख गहरा होता है, उतना ही सुख गहरा होता है।
उनकी गहराइयां हमेशा बराबर होती हैं।
अभिनेता न कभी दुखी होता है, न सुखी होता है। कुछ अभिनेता मेरे मित्र हैं। उनकी
पत्नियों से मैं पूछता हूं कि तुम्हें शक नहीं होता? कि जब तुम्हारा पति तुम्हें प्रेम क
रता है, तो कहीं यह वही मंच वाला प्रेम तो नहीं है?
तो एक स्त्री ने मुझे कहा कि निरंतर शक नहीं होता कि यह आदमी फिर वही डॉयल
ाग बोल रहा है, जो इसने मंच पर भी बोले थे। लेकिन आम पत्नियों को यह शक न
हीं होता, क्योंकि आम पतियों को उन्होंने मंच पर नहीं देखा है। सिर्फ अकेले में देखा
है।
आम पति भी डॉयलाग बोल रहे हैं। आम पत्नियां भी डॉयलाग बोल रही हैं। सीखा हु
आ है, लेकिन फिर भी अभी बहुत व्यवस्थित नहीं है। आज नहीं कल, सब व्यवस्थित
हो जाएगा।
लेकिन प्रार्थना के संबंध में बहुत व्यवस्था है। प्रेम तो अभी हम सिखाते नहीं है बहुत,
लेकिन प्रार्थना सिखाते हैं, परमात्मा सिखाते हैं। जब प्रेम ही नहीं सिखाया जा सकत
तो परमात्मा तो और गहरा अनुभव है। उससे गहरा तो कोई अनुभव नहीं होता। प्रेम
तो बिलकुल ही उथला है परमात्मा की दृष्टि से।
हालांकि मनुष्य के जीवन में प्रेम सबसे गहरा अनुभव है, लेकिन परमात्मा को ख्याल
न रखें, तो प्रेम सबसे उथला अनुभव है। मनुष्य के जीवन का सबसे गहरा अनुभव भी
परमात्मा को ध्यान में रखने में सबसे उथला अनुभव है। प्रेम भी नहीं सिखाया जा स
कता है, तो परमात्मा कैसे सिखाया जा सकता है?

लेकिन परमात्मा हम सिखा रहे हैं। बचपन से परमात्मा सिखाया जा रहा है। प्रार्थना ि सखाई जा रही है। सब झूठ हो जाता है। मंदिर में हाथ जोड़े हुए जो आदमी खड़ा है, अगर उसकी खोपड़ी हम खोल सकें, तो जल्दी हम उस झूठ को खोज लेंगे कि कब इसको हाथ जोड़ना सिखाया गया है। यह हाथ जुड़े हुए, सीखे हुए हाथ हैं। और आद मी को इतना व्यवस्थित सिखाया जा सकता है कि उसे पता खुद भी न रहे।

मैंने सुना है, पहले महायुद्ध में एक आदमी युद्ध से बर्खास्त हो गया। उसके पैर में चो ट लग गई थी। अब युद्ध में तो सब सीखे हुए आदमी होते हैं। युद्ध में असली आदमी प्रवेश नहीं कर सकता। सब नकली आदमी होते हैं।

मिलिट्री की सारी ट्रेनिंग आदमी को नकली करने की व्यवस्था है। एक आदमी से हम कह रहे हैं, लेफ्ट टर्न, राइट टर्न। तीन-चार साल, दस साल बाएं घूमो, दाएं घूमों, अ ागे जाओ, पीछे जाओ। उसका मस्तिष्क खराब नहीं हो जाएगा तो बचेगा? मशीन का उपयोग करवा रहे हैं उससे, और जरा भी आज्ञा से भिन्न नहीं—बाएं घूमना है, तो ब ाएं घूमना है। एक क्षण देर नहीं। बाएं घूमते-घूमते, दाएं घूमो तो वह मशीन की तर ह घूमने लगता है। फिर आदमी नहीं घूम रहा है। बटन जैसे दबे और पंखा घूम जाएं, ऐसा बाएं घूमो, यह सुनते ही वह आदमी घूम जाता है। उस आदमी को भीतर घूम ना नहीं पड़ता। यह बिलकुल यांत्रिक हो गया है।

एक आदमी बर्खास्त हुआ है, वह एक सड़क से गुजर रहा है। एक मनोवैज्ञानिक है, ि वलियम जेम्स। वह एक होटल में बैठा हुआ किसी मित्र से बात कर रहा है। और वह कह रहा है कि आदमी को बिलकुल मशीन बनाया जा सकता है। तभी वह बाहर से आदमी निकला है। विलियम जेम्स ने जोर से चिल्लाकर कहा, अटेंशन।

वह आदमी अंडे लिए हुए था एक टोकरी में। वह अटेंशन खड़ा हो गया, टोकरी गिर गई, अंडे फूट गए। जब खड़ा हो गया अटेंशन, तब उसे ख्याल आया कि यह मैंने क्या किया। सारे अंडे फूट गए। भीड़ इकट्ठी हो गई।

विलियम जेम्स अपने मित्र को ले जाकर खड़ा हो गया कि देखते हो? उस आदमी ने कहा—यह तुमने कैसी मजाक की। नुकसान कर दिया।

विलियम जेम्स ने कहा—हमने तो सिर्फ अटेंशन कहा। तुमसे किसने कहा था कि तुम रु क जाओ।

उसने कहा—यह कोई कहने, सुनने, समझने की बात है। दस साल अटेंशन, यानी अटें शन था। मैं भूल ही गया कि मिलिट्री में अब नहीं हूं, सड़क पर चल रहा हूं। अटेंशन! सुना कि घूम गई मशीन। मैं खड़ा हो गया। ये सब अंडे टूट गए हैं, इनके पैसे कौन चुकाएगा? मैं गरीब आदमी हूं।

विलियम जेम्स ने कहा—पैसे हम चुका देंगे। लेकिन आत्मा कौन चुकाएगा। तुम खो ग ए, तुम गए, तुम आदमी नहीं रहे, मशीन हो गए हो।

हनुमान जी का मंदिर दिखा और आपके हाथ जुड़ गए, आप समझ रहे हैं, कोई और भिन्न बात है? वही अटेंशन। बचपन से सिखाया गया है, इधर भगवान हैं।

मेरे एक मित्र हैं, मेरे साथ घूमने जाते हैं सुबह-सुबह। कोई भी मंदिर पड़ जाए, बिना हाथ जोड़े वह आगे नहीं बढ़ते। मुझे जानते नहीं थे। घूमने में ही उनसे दोस्ती हो गई थी। धीरे-धीरे उनसे बातें हुईं। मेरी बातें सुनीं, मेरी बातें समझीं। दूसरे दिन मेरे साथ सुबह गए, मंदिर पड़ा। उन्होंने बड़ी ताकत लगाकर अपने को रोका होगा। हाथ जुड़ना चाहते थे। मेरे साथ दस कदम बिना हाथ जोड़े निकल गए।

लेकिन मैंने देखा, वह बहुत परेशान हो गए हैं। फिर रुके और मुझसे कहा—माफ करिए! मैं मुश्किल में पस़ जाऊंगा, दिन भर खराब हो जाएगा। मुझे वापस जाकर हाथ जोड़ आने दें। तो हुआ क्या है? यह मेरी कल्पना के ही बाहर है कि उस मंदिर के सामने से बिना हाथ जोड़े बाहर निकल जाऊं। कभी नहीं निकला। आज बीस साल से हाथ जोड़ता हूं। नहीं! मुझे वापस जाने दें।

वे गए, उन्होंने हाथ जोड़े, लौटे। बड़े रिलेक्स, शांत मालूम पड़े। बड़ी बेचैनी हो गई थी। यह मिलिट्री से ज्यादा भिन्न बात हुई, अटेंशन से ज्यादा भिन्न बात हुई।

हम भी जिन मंदिरों में हाथ जोड़ रहे हैं, मस्जिदों में कवायद कर रहे हैं, जिन गिरजों में हाथ उठाकर भगवान को पुकार रहे हैं—हमारी यह पुकार, हमारी ये प्रार्थनाएं, हमारी ये कवायदें, ये नमाजें सिखाई हुई हैं, या हमारे प्राणों से इनका कहीं कोई संबंध है? नहीं तो मुसलमान का बेटा मुसलमान कैसे हो जाए? हिंदू का बेटा हिंदू कैसे हो जाए? अगर बातें सिखाई हुई न हों। हिंदू का बेटा तो मुसलमान नहीं हो जाता? मुसलमान का बेटा कोई हिंदू नहीं हो जाता?

जो सिखाया गया है, हम वही हो जाते हैं। हमारा हिंदू होना, सीखा हुआ होना है। हमारा मुसलमान होना, सीखा हुआ होना है।

हम सब झूठ अभिनय कर रहे हैं। हिंदू होना एक अभिनय है, मुसलमान होना एक अभिनय है। आदमी होना एक सचाई हो सकती है—हिंदू मुसलमान से ज्यादा झूठी कोई बातें हो सकती हैं? लेकिन वह हम सीखे हुए हैं। और बच्चों को उस समय से सिखा रहे हैं, जब उन्हें कोई होश नहीं है। उनके दिमाग में भर रहे हैं, यह रहा भगवान, यह रही किताब, यह रहा ग्रंथ, यह रहा शास्त्र, यह है सत्य! उसके दिमाग में भरे चले जा रहे हैं। और हम सब इसी तरह के ज्ञान से भरे हुए लोग हैं। हमारा यह ज्ञान प्रकाश की तरफ ले जाने वाला नहीं है। यह हमें अंधेरे की तरफ ही ले जा रहा है।

बहुत पहले आदमी के मस्तिष्क की बहुत गहरी तरकीबें, कुछ होशियार लोगों को पता चल गईं, उनका ही काम जारी है। कोरियन युद्ध के बाद चीन में जिन अमरीकी सैनिकों को पकड़ लिया गया था, उनके साथ चीन में बहुत से प्रयोग किए गए। माइंड वाश के प्रयोग किए गए। उनका दिमाग साफ कर देने की कोशिश की गई। तो क्या किया? उन लोगों को उपवासा रखा।

भूखा आदमी सजेस्टिव हो जाता है। जितना भूखा आदमी हो उतना, कोई भी सुझाव उसको दिया जा सकता है। इसलिए भूखे लोग हमेशा खतरनाक होते हैं। भूखे लोग कोई भी सुझाव पकड़ सकते हैं। और भूखा आदमी कोई भी काम कर सकता है। भूखे आदमी का मन सोचने-विचारने की स्थिति में नहीं रह जाता।त उसके दिमाग में जो

डाल दिया जाए, वह जल्दी से जल्दी पहुंच जाता है। खाली पेट किसी भी चीज को स्वीकार कर लेता है। भरा पेट पच्चीस दफे सोचता है। भरे पेट को सोचने की सुविधा है। भूखे पेट को सोचने की सुविधा नहीं है।

तो उन सैनिकों को भूखा रखा गया और सोने नहीं दिया गया।

अगर सोने नहीं दिया जाए, तो दिमाग बहुत ही सुझावशील हो जाता है। सजेस्टिव हो जाता है। एक आदमी को दो-चार दिन मत सोने दें, फिर उससे जो भी आप कहेंगे, वह हां भरने लगेगा। अब वह होश में नहीं है। अब मस्तिष्क ने सब संतुलन खो दिया। इसलिए कैदियों कि साथ, जिनसे कन्फेशन करवाना हो, उनको जगाकर रखते हैं। उनको सोने नहीं देते। उनको दस-पंद्रह दिन मत सोने दो, जब भी वे सोएं, हिला दो। फिर वह होश के बाहर हो गए।

फिर उनसे—फिर उनसे पूछो—तुम्हें आज्ञा दी थी?

जो पहले इंकार करते थे, अब हां भरने लगेंगे। अब उनको पता नहीं चल रहा है कि यह क्या हो रहा है। अब सपने में जी रहे हैं करीब-करीब, सपने में, बेहोशी में, मूर्छा में।

चीन में उन अमरीकी सैनिकों को खाना कम दिया, सोने नहीं दिया और दिन-रात उनके सामने कम्युनिज्म का प्रचार किया जा रहा है, दिन-रात कम्युनिज्म की बातें की जा रही हैं। वह जाग रहे हैं, बैठे हैं। सो गए, तो हिला दिया। फिर किताब पढ़ी जाने लगी। खाना दिया नहीं जाता, भोजन दिया नहीं जाता। छः महीने तक यह उपद्रव जारी है। कभी कुछ थोड़ा खाना दे दिया है, कभी कुछ दवा दे दी है। जिंदा उनको रखने का पूरा उपाय है। मरने भी नहीं देंगे और जीने भी नहीं देंगे।

छः महीने के भीतर उनका सब होश गड़बड़ हो गया है। सब पुरानी स्मृति गड़बड़ हो गई है। छः महीने बाद जब वह बाहर आए, तब वह चीन की प्रशंसा करते हुए बाहर आए, वह कम्युनिज्म की इज्जत करते हुए बाहर आए। उन्होंने जाकर अमरीका में कहा, कम्युनिज्म ही ठीक चीज है, और कोई चीज ठीक नहीं है। बड़ी हैरानी हुई कि इनको क्या हो गया। इनको हो क्या गया?

बच्चों के साथ माइंड वाश किया जा रहा है और मां-बाप ने जितना अनाचार बच्चों के साथ किया है, और किसी ने कभी दूसरे के साथ नहीं किया है। होश में नहीं हो रहा है यह, हमें पता नहीं है। शायद पता हो जाए, तो हम बंद भी कर दें। हमें पता ही नहीं है।

हिंदू बाप, बेटे को हिंदू बनाने की पूरी कोशिश में हैं। मुसलमान बाप, मुसलमान बनाने की कोशिश में हैं। इस कोशिश का क्या मतलब है कि हिंदुस्तान और पाकिस्तान पुनरुक्त होते रहेंगे? इस कोशिश का क्या मतलब है कि हिंदू-मंस्लिम दंगे जारी रहेंगे? इस कोशिश का क्या मतलब है कि हत्या जारी रहेगी, आदमी आदमी लड़ता रहेगा? इस कोशिश का यही मतलब है।

लेकिन कोशिश जारी रहेगी। और कोशिश क्या है? एक निर्दोष, इन्नोसेंट बच्चा पैदा हुआ है, जिसकी तख्ती पर अभी कुछ भी नहीं लिखा गया है। मां-बाप जो भी लिख

देंगे, वह उस तख्ती पर पकड़ जाएगा। और मां-बाप बहुत जल्दी में हैं कि कुछ लिख दें, कोई और न लिख दें कुछ।

धार्मिक लोग बड़े डरे रहते हैं। हिंदुओं की किताबों में लिखा है। पुरानी किताबों में! कि जब जैन मंदिर के सामने से निकलते हो, तो पागल हाथी आ जाए, तो उस पागल हाथी के पैर के नीचे दब कर मर जाना; लेकिन जैन मंदिर में शरण मत लेना। बचने की उम्मीद हो तो भी, भीतर मत जाना। क्यों?

क्योंकि कहीं जैन धर्म की कोई बात कान में न पड़ जाए।

जैनियों के ग्रंथों में भी यही लिखा हुआ है—ठीक यही कि हिंदू के मंदिर के सामने से निकलते हो, पागल हाथी आ जाए, तो पैर के नीचे मर जाना बेहतर है, लेकिन हिंदू मंदिर में प्रवेश मत करना। नहीं तो कोई हिंदू धर्म की बात कान में पड़ जाए!

अब कान में पड़ी बात को निकालना मुश्किल होता है। पड़ गई तो पड़ गई और भीतर सब गड़बड़ हो जाएगा। इसलिए दुनिया के सारे धर्मों ने यह कोशिश की है कि दूसरे धर्म से परिचित मत हो जाना। दूसरे धर्म की किताब मत पढ़ना, दूसरे धर्म की बात मत सुनना। अपना धर्म, अपनी किताब, अपना गुरू—अपना गुरू सही, अपनी किताब सही, अपना धर्म सही। बाकी सब गलत हैं।

यह गलत का इतनी जोर से प्रचार जो किया जाता है, यह इसीलिए कि तुम दूसरे को सुनना ही मत। उस तरफ ध्यान ही मत देना। हर मां-बाप, हर समाज, हर संप्रदाय, बच्चे के मन को जल्दी से भर देना चाहता है। ताकि खाली न रह जाए। लेकिन उसे पता नहीं, वह उसे मुसलमान होने से बचा लेगा, ईसाई होने से बचा लेगा, तो हिंदू बना देगा। लेकिन उसको पता नहीं कि उसने अपने बेटे को सदा के लिए धार्मिक होने से भी बचा लिया; क्योंकि धार्मिक होने के लिए खोज चाहिए, वह खोज अब नहीं होगी।

इसका मन भर गया, इस भ्रम से भर गया है कि अब मैं जानता हूं कि कौन है भगवान, क्या है भगवान? इसके प्रश्न सब मर गए हैं। इसकी जिज्ञासा मार डाली गई है, इसको ज्ञान दे दिया गया है।

ध्यान रहे, दो तरह के ज्ञान हैं—एक ज्ञान, जो जिज्ञासा और खोज के बाद उपलब्ध होता है वह प्रकाश में ले जाता है, और एक ज्ञान, जो जिज्ञासा और प्रश्नों की हत्या करके पकड़ लिया जाता है, वह अंधकार में ले जाता है। वह प्रकाश में नहीं ले जाता।

हमारे पास जो ज्ञान है? हमारे पास जो ज्ञान है, वह हमने खोज से पाया है? पूछकर, प्रश्न करके, जिज्ञासा करके, संदेह करके? हमने उसे खोजने के लिए कोई श्रम किया है? कोई ऊहापोह किया है? कोई चिंतना की है? कोई मनन किया है? नहीं!

हमने उसे पाने के लिए जितना मनन हो सकता था, चिंतन हो सकता था उसकी सब संभावनाएं तोड़ दी हैं। प्रश्न हो सकते थे, उनकी जड़ काट दी है। जिज्ञासा हो सकती थी, उसको मार डाला है और ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

जिज्ञासा की हत्या पर जो ज्ञान खड़ा है। वह अंधकार में ले जाने वाला ज्ञान है। वह ज्ञान कभी भी प्रकाश में नहीं ले जा सकता। और हम सबके पास ऐसा ही ज्ञान है। ह

मने कभी पूछा है गहरे मन से कि ईश्वर है? नहीं! पूछने के पहले हमने मान लिया है कि है। जिसने पूछा ही नहीं वह जानेगा कैसे? फिर कुछ भी माना जा सकता है। रूस में बच्चे पैदा होते हैं, तो उनको वह समझा रहे हैं कि ईश्वर नहीं है। बच्चे यही मान लेते हैं, बच्चे अबोध हैं। रूस में बीस करोड़ की संख्या में अधिकतम लोग यही मानते हैं कि न कोई ईश्वर है, न कोई मोक्ष है, न कोई आत्मा है। आदमी, बस शरी र है।

ये बीस करोड़ लोग अज्ञानी हैं? हमको ऐसा ही लगेगा कि अज्ञानी हैं; क्योंकि ज्ञानी आत्मा को मानते हैं, मोक्ष को मानते हैं, ईश्वर को मानते हैं। लेकिन हम अपने से पूछें, हममें उनमें फर्क क्या है?

उनके बच्चों की स्लेट पर लिखा जा रहा है, ईश्वर नहीं है। बच्चे वह दोहरा रहे हैं। हमारे बच्चों की स्लेट पर लिखा जा रहा है, ईश्वर है! बच्चे वह दोहरा रहे हैं। दोनों के बच्चे दोहरा रहे हैं। दोनों के बच्चे नहीं जान रहे हैं! फर्क क्या है?

इससे क्या फर्क पड़ता है कि आप क्या दोहरा रहे हैं? तोता यह कहे कि ईश्वर है, या तोता यह कहे कि ईश्वर नहीं है, क्या फर्क पड़ता है? सिर्फ इतना ही पता चलता है कि एक तोते का मालिक कहता है कि ईश्वर है, और दूसरे तोते का मालिक कहता है कि ईश्वर नहीं है। और तो कोई पता नहीं चलता। दोनों तोते हैं, और दोनों मालिक की बातें दोहरा रहे हैं। उनका अपने पास कुछ भी नहीं है।

आदमियत को हमने तोतों की हालत में डाल दिया है। एक-एक आदमी को तोता बना दिया है; लेकिन दुख होता है मन को। इसलिए हम कभी फिक्र भी नहीं करते कि हम तोते तो नहीं हैं। हम कहीं प्रोपेगंडा के शिकार तो नहीं हैं?

हम सब शिकार हैं। हमारा सारा ज्ञान प्रोपेगंडा से आया हुआ है। हमारा ज्ञान और कहीं से नहीं आया हुआ है। एक के आस-पास हिंदू प्रोपेगंडा चल रहा है, वह हिंदू हो गया है। एक के पास मुसलमान प्रोपेगंडा चल रहा है, वह मुसलमान हो गया है। एक के पास कम्युनिस्ट प्रोपेगंडा चलेगा, वह कम्युनिस्ट हो जाएगा। नास्तिक का चलेगा, नास्तिक होगा। आस्तिक का चलेगा। आस्तिक होगा।

सारी मनुष्यता प्रोपेगंडे से घिरी है, प्रचार से। प्रचार ज्ञान नहीं बन सकता। प्रचार डाला हुआ ज्ञान है। डालने की तरकीबें जाहिर हो गई हैं, और डाली जा रही हैं। सब तरफ से तरकीबें की जा रही हैं डालने की। आदमी के भीतर-बाहर से ज्ञान डालने की कोशिशें चल रही हैं।

और अब तो हमें और भी अच्छे उपाय मिल गए हैं। अभी अमरीका के एक वैज्ञानिक ने एक घोड़े की खोपड़ी में छेद करके एक इलेक्ट्रोड डाल दिया उसकी खोपड़ी में, एक छोटा सा यंत्र डाल दिया है, उस घोड़े को कुछ पता नहीं है। वह यंत्र जो है रेडियो से प्रसारित किया जा सकता है। रेडियो से दूसरा हिस्सा वैज्ञानिक के पास है। वह रेडियो से कहता है, घोड़े, नाच। घोड़ा नाचने लगता है। घोड़े को कुछ पता नहीं। घोड़ा यही सोचता होगा कि मैं नाच रहा हूं। वह कहता है, घोड़ा रुक, तो घोड़ा रुक जाता है।

यह अभी प्रयोग के तल पर घटना घटी है। यह आदमी के साथ भी कल घटेगी। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। कम्युनिस्ट हुकूमत होगी, जो आदमी गड़बड़ करेंगे, उनकी भी खोपड़ी में आप्रेशन करके इलेक्ट्रोड डाल देगी और कहेगी कपिटल ही असली धर्मग्रंथ है, तो वह आदमी कहेगा कि कैपिटल ही असली धर्म-ग्रंथ है। कहेगी, ईश्वर नहीं है, तो वह आदमी कहेगा, ईश्वर नहीं है। जो इस इलेक्ट्राड को कहा जाएगा, खोपड़ी में वही ध्वनि पैदा कर देगा। और वह आदमी मुंह से वही बोल देगा।

यह इक्ट्रोड नई तरकीब है। पुरानी तरकीब लंबी थी—पंद्रह-बीस साल खोपड़ी में बच्चे के भरो कि कुरान ही सत्य है, बाइबल ही सत्य है, गीता ही सत्य है। बीस-तीस साल लग जाते थे, तब कहीं उनकी खोपड़ी दोहराती थी। अब हमने नई तरकीब निकाल ली। वह बैलगाड़ी का रास्ता था, यह जेट प्लेन का रास्ता है। इलैक्ट्रोड डाल देंगे, जो कहेंगे वह उससे कहलवा लेंगे। आदमी बड़ा निरीह हो जाएगा।

आदमी अभी भी निरीह रहा है। आदमी बहुत हेल्पलेस है। प्रोपेगंडा खतरनाक है। वह चारों तरफ से आदमी को जकड़ने की कोशिश करता है, और मन का नियम है कि उस पर दोहराए चले जाओ एक बात। तो कितनी देर मन विरोध करेगा, मन धीरे-धीरे ऊब जाता है और स्वीकार कर लेता है। हमें पता नहीं है। अब जो खोज करते हैं वह कहते हैं।

तीस बच्चे पहली कक्षा में भर्ती हुए हैं। एक लड़के से सवाल नहीं बनता है। उसका गुरू उससे कहता है, तुम बिलकुल गधे हो। उसे पता नहीं वह इलेक्ट्रोड डाल रहा है उसकी खोपड़ी में। उस बच्चे को सुनाई पड़ता है, मैं बिलकुल गधा हूं। वह डर गया है। अब वह कल सवाल करता है, क्योंकि उसके भीतर इलेक्ट्रोड बोल रहा है। है तो गधा, सवाल क्या कर पाएगा?

अब वह डरा हुआ सवाल कर रहा है। गधे भी कहीं सवाल करते हैं? अब वह सवाल कर रहा है और वह सवाल ठीक नहीं हो पाता है, क्योंकि भीतर तो वह जानता है कि मैं गधा हूं। फिर गुरू उसका कहता है कि तू बिलकुल गधा है, कभी नहीं सीख सकता। तुम तीन पीढ़ी से गधे रहे हो। तुम्हारी तीन पीढ़ियां पढ़ी हैं इस स्कूल में। उस लड़के के मन में बात बैठ गई कि मैं बिलकुल गधा हूं। और बाकी लड़के भी खुश हो रहे हैं कि यह गधा है। दूसरे को गधा देखने में सभी को खुशी होती है। सारी कक्षा मानती है, यह गधा है। यह दोहराता चला जाएगा, वर्ष, दो वर्ष, तीन वर्ष, यह लड़का गधा हो जाएगा। इलेक्ट्रोड डाल दिया गया है।

जिस गुरु ने कभी किसी बच्चे को कहा है, तुम गधा हो, उस गुरू ने इतनी बड़ी हत्या की है, जिसका कोई हिसाब लगाना मुश्किल है। डाल दी गई बात! पकड़ ली जाएगी। गहरी होती चली जाएगी, और वह बच्चा धीरे-धीरे स्वीकार कर लेगा कि मैं ऐसा हूं। मुझसे कुछ होने वाला नहीं है।

एक बाप अपने बेटे से कहता है, तुम बिलकुल निकम्मे हो, तुमसे कुछ नहीं हो सकता। उस बाप को पता नहीं, इलेक्ट्रोड डाल दिया बेटे के मन में। अब वह बेटा जानेगा कि मैं निकम्मा हूं, मुझसे कभी कुछ हो नहीं सकता। और अपने बाप की बात को सि

द्ध करना ही पड़ेगा उसको। तो वह सब तरह की कोशिश करेगा कि बाप गलत न ह
ो जाए। वह सब तरह के प्रयोग करेगा और जानेगा कि ठीक ही है, बाप कहते हैं, कु
छ हो नहीं सकता। कुछ हो नहीं रहा है। पिता ठीक ही कहते थे। पिता कभी गलत
नहीं कहते थे। और वह निकम्मा हो जाएगा। वह बिलकुल निकम्मा हो जाएगा। निकम्
मे होने का हमने उसके भीतर सूत्र डाल दिया है।

हम जो भी सूत्र डाल रहे हैं, आदमी वही हो जाता है। हमारा सारा ज्ञान इसी तरह
का है, डाला हुआ है, हमारा पाया हुआ नहीं है। और मैं कहना चाहता हूं कि डाला
हुआ ज्ञान मनुष्य को अज्ञान में खड़ा रखता है, कभी ज्ञान की तरफ नहीं जाने देता है
।

हमें डाले हुए ज्ञान से मुक्त होना पड़ेगा। जो आदमी डाले हुए ज्ञान से मुक्त होता है,
वह आदमी होने की घोषणा करता है। वह यह कहता है, मैं मशीन नहीं हूं, मैं तोत
ा नहीं हूं, मुझे सिखाओ मत, मैं खोजना चाहूंगा, मैं जानना चाहूंगा। मैं खुद ही खोजन
ा और जानना चाहता हूं। कृष्ण को कोई विशेष हक नहीं है कि वह खुद जानें। महाव
ीर को कोई विशेष हक नहीं है कि वह जानें। मुझे भी उतना ही हक है कि मैं जानूं।
क्योंकि जब जानूंगा, तभी मेरी आंखें प्रकाश से भरेंगी। जब जानूंगा तभी मेरे प्राण न
ाचेंगे, जब जानूंगा तभी मैं रूपांतरित होऊंगा।

दुनिया के सब आदमियों को खुद जानने का हक है। लेकिन नहीं, यह नहीं हुआ अब
तक। अब तक अधिक लोगों को दूसरे लोग जान रहे हैं, कोई किसी को जाने नहीं दे
रहा है। और हम सब उसी ज्ञान से भरे हुए हैं, जो दूसरे हममें डाल देते हैं। यह अचे
तन हो गया है, हमें पता नहीं, कब से ज्ञान हममें डाला जा रहा है। बच्चा पैदा हुआ
और ज्ञान डालना शुरू हो जाता है। बच्चा पैदा हुआ और उस नासमझ बच्चे के साथ
भी राम के गीत गाए जा रहे हैं, और मुहम्मद की प्रशंसा की जा रही है। उसके मन
में पकड़ी जा रही हैं बातें, पकड़ी जा रही हैं।

अब हमारी समझ में आना यह शुरू हुआ है। हर आदमी का मन सिखाया हुआ मन है
, किसी आदमी के पास अपना मन नहीं है। और अपना मन न हो, तो हम क्या हैं?
हमसे ज्यादा निर्धन कोई भी नहीं हो सकता है। माइंड भी बारोड, मन भी उधार। तो
फिर हम क्या हैं? हमारी आत्मा क्या है? हमारा होना क्या है? जो सिखा दिया जा
ए, वही आदमी सीख लेता है। खतरनाक से खतरनाक बातें सिखाई जा सकती हैं।
हिटलर ने अपने मुल्क को सिखा दिया कि यहूदियों को मारे बिना, जर्मनी का कोई उ
द्धार नहीं है। अब बेचारे यहूदियों का कोई संबंध नहीं है जर्मनी के उद्धार और अनुद्ध
ार से। पहले तो लोग हंसे। यहूदियों ने कहा—क्या पागलपन की बात है? दूसरों ने भी
कहा—यह क्या पागलपन की बात है?

लेकिन हिटलर होशियार है, ज्यादा जानता है। वह कहता है, फिक्र मत करो, दोहराए
चले जाओ। जो आज कह रहे हैं पागल, वह कल कहेंगे ठीक। हिटलर दोहराए चला
गया, चला गया, चला गया।

पांच-सात साल के भीतर जो कहते थे पागल, वे भी दोहराने लगे कि सब यहूदियों क
ी गड़बड़ है। सब अखबार यही कहते हैं, सब रेडियो यही कहते हैं, तो आदमी कब त
क बचेगा? एक-एक आदमी क्या करेगा? वह भी कहने लगा, सब यहूदियों की गड़ब.
ड है, यहूदियों को मारना जरूरी है।

फिर हिटलर ने यहूदी मारने शुरू किए। अकेले एक आदमी ने एक करोड़ यहूदियों की हत्या की। और हम हैरान हैं कि इतना बड़ा विचारशील मुल्क, जर्मनी जैसा विचार शील मुल्क हिटलर की इस बेवकूफी में राजी कैसे हो गया? इलेक्ट्रोड डाल दिया खोप. डी में। वह राजी हो गए।

पर जर्मनी बहुत दूर है, उसे छोड़ दें। हमने हिंदुस्तान पाकिस्तान के नाम पर जो किय
ा, वह क्या है? कुछ नेता चिल्लाए चले गए कि हिंदू-मुसलमान दुश्मन हैं। एक साथ रहते थे और रामलीला मुसलमान भी देखता था। कोई सवाल न था, कोई झगड़ा न था; लेकिन ऊपर से लोग चिल्लाए चले गए, हिंदू-मुसलमान दुश्मन हैं। कुछ लोग चिल लाए चले गए, नहीं दुश्मन नहीं हैं, भाई-भाई हैं।

हालांकि ध्यान रहे, जब भी भाई का सवाल उठता है, तब दुश्मनी स्वीकृत हो चुकी ह
ोती है। नहीं तो कोई भाई-भाई नहीं कहता। अगर कभी आपसे आकर मुझे कहना प.
डे कि हम दोनों बिलकुल भाई-भाई हैं, पक्का मानिए भाई-भाई हैं, तो समझ लेना चा हिए कि झगड़ा शुरू हो चुका है। नहीं तो भाई-भाई दोहराना नहीं पड़ता। भाई-भाई ह
ोना काफी है। दोहराने की जरूरत तब पड़ती है, जब दुश्मनी साफ होने लगे। जिससे हमारी दुश्मनी होने लगती है, उससे हम कहते हैं, हम बिलकुल भाई-भाई हैं। हम तो बिलकुल सगे भाई हैं। यह कहने की जरूरत दुश्मनी के बाद पैदा होती है।

कुछ लोग चिल्लाते गए—दुश्मन हैं, कुछ लोग कहते गए भाई-भाई हैं। ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, कोई फर्क नहीं है। मुल्क के मन में बैठत चला गया। पहले मु ल्क हंसा पाकिस्तान की बात सुनकर कि पाकिस्तान! मुसलमान भी हंसे! लेकिन फिर धीरे-धीरे जिन्ना दोहराए चला गया, पाकिस्तान! पाकिस्तान! पाकिस्तान! धीरे-धीरे व
ह मन में बैठता चला गया। वह धीरे-धीरे पकड़ता चला गया। उसने मुसलमानों को प
कड़ लिया कि पाकिस्तान होगा ही। उसने हिंदुओं को भी पकड़ लिया कि पाकिस्तान नहीं होने देंगे। लेकिन पाकिस्तान एक सचाई बन गया।

हिंदुस्तान को अखंड रखेंगे हिंदुओं ने कहा। अखंड हो जाने की आवाज में खंडित हो जाने का डर पूरी तरह प्रविष्ट हो गया। तोड़ देंगे हिंदुस्तान को, उसमें भी बात पूरी प्रविष्ट हो गई। फिर टूटना जरूरी हो गया और वह टूट गया।

यह टूटना कैसे हुआ? इलेक्ट्रोड तोते बना दिया हिंदुस्तान के लोगों को, उनके दिमाग में बात बिठा दी। और फिर हम समझते हैं, बहुत अच्छा हो गया। फिर हम समझते हैं कि बिलकुल जरूरी था। लेकिन कुछ भी जरूरी नहीं था।

दुनिया में मनुष्यता के बीच सब खंड, हमें तोतों की तरह सिखाकर पैदा किए गए हैं। कोई आदमी किसी दूसरे आदमी से भिन्न नहीं है। न चमड़ी का रंग अलग करता है, न देश की हवाएं अलग करती हैं, न पहाड़ों की सीमाएं अलग करती हैं, न समुद्रों की

दूरियां अलग करती हैं। मनुष्यता एक है। लेकिन मनुष्यता एक बिलकुल नहीं मालूम पड़ती है, हजार-हजार टुकड़ों में टूटी हुई वह टुकड़े हमें दिखाए गए हैं।
धर्म एक है, धर्म दो हो नहीं सकते।
लेकिन हजार-हजार धर्म हैं। वह हमें सिखाए गए हैं। इन सिखाए हुए धर्मों, सिखाए हुए देशों, सिखाई हुई जातियों और सिखाए हुए ज्ञान से छुटकारा कैसे हो?
तो एक ही रास्ता है, अगर हमें यह ख्याल हो जाए कि यह सिखाया हुआ है। हम पूरे कांसेंस हो जाएं कि यह सिखाया हुआ है, मैं तोता बनाया गया हूं, बस काम शुरू हो जाएगा, बगावत शुरू हो जाएगी। फिर आप सिखाई हुई बात को दोहराना बंद करेंगे। आप कहेंगे यह मैं नहीं दोहराऊंगा।
कौन कहता है, मैं मुसलमान हूं? कौन कहता है, मैं हिंदू हूं? मुझे पता नहीं! और जब तक परमात्मा नहीं मिलता, मैं पूछं भी किससे कि मैं कौन हूं? कौन बताने वाला हो सकता है?
परमात्मा कभी मिलेगा तो पूछूंगा--कि तूने मुझे हिंदू बनाया है कि मुसलमान बनाया है? तूने मुझे भारतीय बनाया कि चीनी बनाया है? तूने मुझे क्या बनाया है? शूद्र बनाया है कि ब्राह्मण बनाया है। यह भगवान के सिवाय और किससे पूछा जा सकता है। उससे पूछ लेंगे जब मिलेगा। लेकिन आदमी से पूछकर, और आदमी से सीखकर हम चुप बैठ गए हैं। हमारा सारा ज्ञान ऐसा है।
जीवन के परम सत्यों के संबंध में हमने कुछ बातें सीख ली हैं और दोहराए चले जा रहे हैं। क्या हम इन बातों को दोहराते-दोहराते कभी सत्य तक पहुंच जाएंगे? कुछ लोग कहते हैं कि असत्य को दोहराते रहो, तो धीरे-धीरे सत्य हो जाता है।
हिटलर कहता है अपनी आत्म-कथा में कि घबड़ाओ मत, बस असत्य को दोहराते रहो, असत्य सत्य हो जाएगा।
लेकिन असत्य दोहराने से सत्य हो सकता है? कितना ही दोहराओ। सत्य दिखाई पड़ सकता है, सत्य हो नहीं सकता। असत्य को दोहराते-दोहराते ऐसा हो सकता है कि लगने लगे यही सत्य है। लेकिन वह सत्य हो नहीं जाएगा। असत्य तो असत्य ही रहेगा।
असत्य के सत्य होने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन असत्य सत्य मालूम पड़ने लगेगा। और यह असत्य से भी ज्यादा खतरनाक बात है असत्य का सत्य मालूम पड़ना। नहीं, आदमी को अगर खोजना हो ज्ञान, खोजना हो प्रकाश, तो मन की पट्टी को साफ रखे। मन की पट्टी को साफ रहने दें, मत लिखने दें किसी को अपनी पट्टी पर कि परमात्मा है या नहीं है। मत लिखने दें कि आत्मा अमर है या नहीं है। कहें कि मैं नहीं जानता हूं, और मैं जानने के लिए उत्सुक हूं; लेकिन सीखने की मेरी कोई इच्छा नहीं है। क्योंकि सीखने से कभी जानना नहीं हो सकता।
रमण के पास कोई आया और कहने लगा कि मैं सीखना चाहता हूं धर्म! रमण ने कहा, सीखना चाहते हो? पागल हो गए हो? किसी ने कभी धर्म सीखा है?
तो उसने कहा, फिर मैं क्या करूं?

रमण ने कहा, सीखो मत! लर्निंग की जरूरत नहीं है। अनलर्न करो, अनसीखा करो, जो सीखा है, वह भी छोड़ दो। खाली होकर आ जाओ।
उस आदमी ने कहा, यह तो मुश्किल है। जितना मैं सीखा हूं, आप और कुछ सिखा दें, उसमें जोड़ सकता हूं, एडीसन कर सकता हूं। सरल वही है। आप कुछ बता दें, तो मैं उसको भी जोड़ लूंगा।
रमण ने कहा, जोड़ने का सवाल नहीं है; क्योंकि गलत में सिर्फ गलत ही जुड़ सकता है। गलत में सही नहीं जुड़ सकता है। माने हुए में सिर्फ माना हुआ जुड़ सकता है, माने हुए में, जाना हुआ नहीं जुड़ सकता। उसका कोई ताल-मेल नहीं है। तू पहले खाली होकर आ। फिर हम तुझे उस तरफ उठने की बात कहें कि कैसे तू खाली होकर खड़ा हो सकता है परमात्मा के समक्ष! सीखी हुई बातों को छोड़ आ। किसने कहा तुझसे कि ईश्वर है? हो सकता है हो, हो सकता है न हो!
बुद्ध ने एक गांव में प्रवेश किया है। सुबह ही सुबह है। एक आदमी मिला है दरवाजे पर गांव में, और उसने पूछा है, ईश्वर है? मैं आस्तिक हूं।
बुद्ध ने कहा, ईश्वर? बिलकुल नहीं है। तुझसे किसने कहा पागल, कि ईश्वर है। तू कैसे आस्तिक बन गया। तू किसकी बातों में आ गया, ईश्वर तो है ही नहीं। मैंने खोज लिया, कहीं भी नहीं है। सब कुछ है, केवल ईश्वर भर नहीं है।
वह आदमी झाड़ के नीचे अवाक खड़ा रह गया। उसने सोचा था, बुद्ध से सहायता ले लेगा, अपनी मान्यता को और मजबूत कर लेगा। बुद्ध कहेंगे—है, तो फिर अपनी आस्था और मजबूत हो जाएगी। पता तो नहीं है कि है, मानते हैं कि हैं। बुद्ध जैसा प्रामाणिक आदमी कह देगा है, तो हम और जोर से मान लेंगे कि है, इसीलिए आया था। गुरुओं के पास लोग इसीलिए जाते हैं, अपना अज्ञान और मजबूत करने के लिए! कि वे गुरू भी कह दें कि तुम जो मानते हो बिलकुल ठीक है। किताब पढ़ते हैं; कि किताब कह दे कि तुम जो मानते हो, बिलकुल ठीक है। और जहां कोई कहे नहीं, यह ठीक नहीं है, फिर यहां जाने की हिम्मत नहीं जुटा पाते। जहां कोई ज्ञान छील ले, वहां कोई नहीं जाता! जहां ज्ञान मिलता हो, वहां लोग जाते हैं।
और मैं मानता हूं, जो ज्ञान छीन ले, वह आपका मित्र है, जो ज्ञान दे दे वह आपका दुश्मन है। क्योंकि ज्ञान दिया ही नहीं जा सकता है, दिया हुआ ज्ञान झूठा हो जाता है।
बुद्ध ने कहा—नहीं है ईश्वर!
वह आदमी झाड़ के नीचे खड़ा रहा। बुद्ध हंसते हुए आगे बढ़ गए। बुद्ध के साथ एक भिक्षु है आनंद। वह बड़ा हैरान हो गया। बुद्ध ने कह दिया, बिलकुल नहीं है। रात पूछ लूंगा एकांत में।
दोपहर को एक आदमी और आया उस गांव में। उस आदमी ने कहा—मैं नास्तिक हूं, मैं ईश्वर को बिलकुल नहीं मानता हूं। आपका क्या ख्याल है?
वह आदमी तो उसी इच्छा से आया है, जिस इच्छा से सुबह वाला आदमी आया था। अलग-अलग बातें हैं, इच्छा एक ही है। बातों में, भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए। बातें अ

लग हो सकती हैं, सवाल इच्छा का है। वह आया है जानने कि बुद्ध भी कह दें कि ई श्वर नहीं है, तो मैं निश्चिंत हो जाऊं। वह भी परेशान है।

विश्वास करने वाला कभी भी निश्चिंत नहीं हो पाता। क्योंकि उधार ज्ञान कैसे निश्चिंत करेगा? तो डर बना ही रहता है, पता नहीं, गलत न हो! और पक्का कर लें, और पक्का कर लें, और पक्का कर लें। गारंटी कहीं कोई लिखकर दे दे तो ठीक हो जाए।

बुद्ध से उसने कहा—मैं नास्तिक हूं, ईश्वर को नहीं मानता। आप क्या कहते हैं?

बुद्ध ने कहा—ईश्वर नहीं मानते, पागल हो गए हो? किसने तुमसे कहा ईश्वर को मत मानो? ईश्वर है। मैंने बहुत खोजा, ईश्वर के सिवाय और कुछ नहीं पाया।

अब तो आनंद बहुत परेशान हो गया। सुबह इस आदमी ने क्या कहा, दोपहर क्या कह रहा है यह आदमी? यह बुद्ध को क्या हो गया? यह इतनी जल्दी बदल कैसे गए? सोचा रात जल्दी हो जाए, एकांत मिल जाए तो पूछ लूं।

सांझ और मुश्किल हो गई, एक आदमी और आया। उसने बुद्ध से कहा—मुझे कुछ भी पता नहीं, कि ईश्वर है या नहीं? मैं क्या करूं?

तो बुद्ध ने कहा—तुझे जो भी थोड़ा-बहुत और पता हो, वह और छोड़ दे। बिलकुल ऐसा हो जा कि तुझे कुछ भी पता नहीं, खाली हो जा। फिर मुझसे पूछने मत आ। जो होगा, वह तुझे पता चल जाएगा। तू खाली हो जा, फिर जो होगा, वह तुझे दिखाई पड़ जाएगा। तू भरा रहे, फिर जो है, वह तुझे दिखाई नहीं पड़ सकता।

भरी हुई आंखें कुछ देख सकती हैं? खाली आंखें देख सकती हैं। भरे हुए दर्पण में तस्वीर बनेगी? खाली दर्पण में तस्वीर बन सकती है।

तू खाली हो जा, तू दर्पण की तरह बिलकुल खाली हो जा, तू भाग जा! और मेरे पास आया तो ठीक है, और किसी के पास मत जाना, नहीं तो कोई तुझे भर दे। बचना, गुरुओं से बचना। गुरुओं से बचना बड़ा मुश्किल है। गुरू तलाश करते हुए घूमते हैं कि कहीं कोई फंस जाए, जल्दी से उसकी गर्दन पकड़ लें। गुरू सब तरफ घूम रहे हैं कि कोई मिल जाए। बुद्ध ने कहा।

बुद्ध कहते गए—गुरुओं से बचना। जाना मत किसी के पास अब पूछने! अच्छा हुआ मेरे पास आया। क्योंकि मैं गुरू नहीं बनता। इसलिए तू बच गया। नहीं तो तुझे फांस लेता। तू बिलकुल खाली हो जा।

आनंद की तो मुश्किल बढ़ गई और तूफान चलने लगा, आंधी उठने लगी कि क्या मामला है? बुद्ध का मतलब क्या है? तीन उत्तर देते हैं, एक ही दिन में?

हमारा सबका ख्याल यह है कि जो आदमी जानता है वह बहुत कंसिस्टेंट होगा। वह वही उत्तर सुबह देगा, दोपहर वही, सांझ वही। यह गलत है। बुद्धुओं के सिवाय कंसिस्टेंट कोई भी नहीं होता। बुद्धिहीनों के सिवाय कंसिस्टेंट कोई नहीं होता है।

जितने बुद्धिमान आदमी हैं, हर पल उनका उत्तर बदल जाएगा। क्योंकि सब बदल गया। वह आदमी बदल गया है, जिससे बात करनी है। वह घड़ी बदल गई, वह सवाल बदल गया। उसका उत्तर बदल जाएगा। सांझ, रात सब चले गए हैं।

आनंद ने बुद्ध के पैर पकड़ लिए और कहा—मुझे मुश्किल में डाल दिया। तीन-तीन उ त्तर, एक ही दिन में? बिलकुल भिन्न? आप कहते क्या हैं? आप बिलकुल असंगत मा लूम पड़ते हैं। सुबह आपने कहा, ईश्वर नहीं है, दोपहर कहा, है। सांझ कहा, कुछ भी मत मानना—न है, न ना है, खाली हो जा। मैं क्या करूं?

बुद्ध ने कहा—पागल! तुझे तो मैंने एक भी उत्तर न दिया था, तूने उत्तर क्यों लिया। तुझसे तो मैंने बात ही न की थी, तेरा तो प्रश्न ही न था, तो तूने उत्तर क्यों पकड़ा ? जिनके प्रश्न थे उनको मैंने उत्तर दिए थे, बात खत्म हो गई।

उस आनंद ने कहा—और मुश्किल में मत डालो मुझे; क्योंकि मैं बहरा नहीं हूं, मुझे उ त्तर सुनाई पड़ गए।

बुद्ध ने कहा—जो दूसरों को दिए गए उत्तर सुनता है, वह मुश्किल में पड़ ही जाएगा। इसमें मैं क्या कर सकता हूं। लेकिन तूने पूछा है, तो मैं तुझे कहता हूं। मैंने दिन में एक ही काम किया, जो जहां था, उसे वहां से हिलाया। मैंने कोई तीन अल? काम न हीं किए। जो जहां था उसे वहां से हिलाया। जिसने जितना सीख रखा था, वह उससे छीना। जिसने जितना मान रखा था, उसको हथौड़ा मार दिया। जो जहां खड़ा था, व हां से उसे धक्का दिया कि तू आगे बढ़। आस्तिक को कहा, नहीं-नहीं, इतना काफी है। नास्तिक को कहा, पागल है! धक्के दिए उनको। और जो आदमी आया था, जिस ने कहा, न मैं आस्तिक हूं, न नास्तिक हूं, उसे कहा, और भी बिलकुल ख्याल ही छो. ड दे बातों का, बिलकुल ही ख्याल छोड़ दे। आस्तिक नास्तिक होना ही नहीं है।

हम सब भी कहीं-कहीं अकड़कर खड़े हो गए हैं। हिंदू को हिंदू धर्म से छुड़ाने की जरू रत है। मुसलमान को मुसलमान धर्म से छुड़ाने की जरूरत है, ईसाई को ईसाइयत से, जैन को जैन होने से, कम्युनिस्ट को कम्युनिस्ट होने से, नास्तिक को नास्तिक होने से। बड़ा उल्टा मामला है। छीनने वाले तो लोग हैं, लेकिन छीनने के पहले वह देना शुरू कर देते हैं। मुसलमान भी हिंदू से हिंदू होना छुड़ाना चाहता है। हिंदू भी ईसाई को ई साई होना छुड़ाना चाहता है। लेकिन इसलिए कि उसको हिंदू बना लें। मुसलमान हिंदू का हिंदूपन मिटाना चाहता है कि वह मुसलमान बना ले। छुड़ाने वाले लोग बहुत हैं, लेकिन कुछ देने की आकांक्षा पीछे है, और जो कुछ दे देता है, छुड़ाने से कोई फर्क नहीं पड़ता।

जैसे हम मरघट अर्थी ले जाते हैं, एक कंधे पर रखते-रखते कंधा थक जाता है, फिर दूसरे कंधे पर रख लेते हैं। कंधा बदल जाता है, वजन उतना ही रहता है, कोई फ र्क नहीं पड़ता। कुरान उतनी ही वजनी है, जितनी गीता, और मस्जिद उतनी ही खत रनाक है, जितना मंदिर, और बाइबिल उतनी ही बांध सकती है, जितनी रामायण। सवाल बाइबिल, गीता, कुरान का नहीं है, सवाल बंधने का है। सवाल मंदिर और म स्जद का नहीं है, सवाल किन्हीं दीवालों के भीतर खड़े हो जाने का है। कोई भी दीवा ल काम दे देगी, इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। सवाल नाम का नहीं है कि इस्लाम हो, कि ईसाई हो कि हिंदू हो।

कोई भी नाम घेरे में आदमी को खड़ा कर देता है। और सारे संप्रदाय और सारे संगठन मनुष्य को धार्मिक नहीं बनाना चाहते, सिर्फ उसे कुछ सिखाना चाहते हैं, और सिखाया हुआ आदमी तोता बन जाता है। आदमी भी नहीं रह जाता, धार्मिक होना तो बहुत दूर है।

मैं आपसे क्या कहना चाहता हूं, आज की सुबह—कुछ आपको देना नहीं चाहता। देने की तो बात ही गलत है। आपसे कुछ छीन लेना चाहता हूं, बिना शर्त। कुछ पीछे देने का सवाल नहीं है कि आप यह छोड़ दें, और यह पकड़ लें। नहीं, पकड़ छोड़ दें। यह छोड़ दें और दूसरा पकड़ लें, तब पकड़ जारी रहेगी।

नहीं, पकड़ छोड़ दें। पकड़ें मत। और जो सीखा है, सजग हो जाएं कि वह सीखा हुआ आपकी चेतना को विकसित नहीं होने दे रहा है, कारागृह बन गया है।

वह सीखा हुआ, आपको तोता बना दिया है, मशीन बना दिया है, यंत्र बना दिया है, हम सबको यंत्र बना दिया है। इस यांत्रिकता से मुक्त हो जाएं, इसे तोड़ डालें—न आस्तिक रह जाएं, न नास्तिक। न हिंदू, न मुसलमान। कोई वाद न रह जाए। क्योंकि हमें कोई सत्य का पता नहीं। हम किस मंदिर को सही कहें?

और मजा यह है कि जिसको परमात्मा का पता हो गया हो, या तो सभी मंदिर गलत हो जाते हैं, या सभी मंदिर सही हो जाते हैं। दोनों बातें एक ही धर्म रखती हैं। इसमें कोई फर्क नहीं है। लेकिन जिसको पता नहीं है, वह कहता है, यह सही है और वह गलत है। और उपद्रव शुरू होता है। हम सब विश्वास से भरे हुए लोग, बिलीफ से भरे हुए लोग, आस्था से भरे हुए लोग अंधे हो जाते हैं।

आस्था अंधा करती है। आस्था जिज्ञासा की हत्या है, मर्डर है। एक आदमी को मार डालना बहुत बुरा नहीं है; क्योंकि सिर्फ शरीर मरता है, लेकिन एक आदमी की आत्मा को मार डालना बहुत बुरा है : क्योंकि सब मर जाता है। सब कुछ मर जाता है। शरीर तो हम बचा लेते हैं, आत्मा की हत्या करना शुरू करते हैं।

जैसे किसी आदमी को जन्म के साथ ही पैरालिसिस के इंजेक्शन लगाने शुरू कर दिए जाएं, तो सारा शरीर पैरालाइज्ड हो जाए, तो बेचारा बीस-पच्चीस वर्ष का होते-होते किस हालत में पहुंच जाएगा। पड़ा रहेगा बिस्तर पर, हाथ-पैर हिल नहीं सकेंगे, क्योंकि सारा शरीर लकवा खा गया है।

इसी तरह हमारी आत्मा को भी जन्म के साथ पैरालइज किया जा रहा है। लकवा मारा जार रहा है। लकवे के अलग-अलग नाम हैं, अच्छे-अच्छे नाम हैं। बीमारियों की दुकान चलानी हो, तो नाम अच्छे रखने पड़ते हैं, और अगर कारागृह में भी लोगों का निमंत्रण करना हो, तो कृष्ण-मंदिर नाम रख दो, तो बहुत जंचता है। और अगर हथकड़ियों में भी लोगों को खुद ही बुलाना हो कि आओ और अगर हथकड़ियों में भी लोगों को खुद ही बुलाना हो कि आओ और अपनी तरफ से हथकड़ियां पहन लो, तो हथकड़ियां मत कहना उनको, सोने का पालिस चढ़ा देना और आभूषण कहना।

कई नासमझ सोने की हथकड़ियां पहने हुए हैं, सिर्फ उनको आभूषण समझकर। आभूष
ण समझ में आ गया, तो हथकड़ी आदमी पहन लेता है। और मंदिर ख्याल में आ जा
ए, तो सिर्फ दरवाजे पर लिखा हो मंदिर, तो जेल के भीतर प्रवेश कर जाता है।
अच्छे शब्द बीमारियों को देना ही पड़ते हैं। तो हम कहते हैं, धर्म-शिक्षा दे रहे हैं बच
चों को। सिर्फ पैरालाइज कर रहे हैं। उनकी आत्मा को लकवा लगा रहे हैं कि उनकी
आत्मा कभी चिंतन न कर सके, कभी मुक्त होकर सोच न सके। कभी विचार न क
र सके, कभी प्रश्न न उठे, कभी जिज्ञासा न उठे। मर जाए भीतर का, बस आपका श
रीर रह जाए और चलता रहे। भीतर कोई चिंतन नहीं, विचार नहीं, मनन नहीं, सव
ाल नहीं, प्रश्न नहीं, संदेह नहीं। मर गई आत्मा।
आत्मा जितना संदेह करती है, जितना पूछती है, जितना विचार करती है, उतनी वि
कसित होती है। जितना खोजती है, उतना आगे बढ़ती है। जितना गतिमान होती है,
एक-एक कोने में खोजती है, जगह-जगह खटखटाती है। द्वार-दरवाजे, नए रास्ते, अन
जान रास्तों पर यात्रा करती है, अनजान सागरों में उतरती है नौका को लेकर, उतन
ी ही परमात्मा के निकट पहुंचने लगती है; क्योंकि परमात्मा से ज्यादा अनजान और
कोई भी नहीं है।
और अगर हमें अपने भीतर उस प्रकाश को जानना हो, तो हमें बाहर के झूठे प्रकाश
छोड़ देने पड़ेंगे। हमने बाहर के ज्ञान के झूठे प्रकाश के स्तंभ बना लिए हैं, और हम
मान बैठे हैं कि हम जान गए, सब ठीक हो गया है। बात खत्म हो गई है।
मैंने सुना है, एक जादूगर था। उस जादूगर के पास बहुत सी भेड़ें थीं। उन भेड़ों को
बेचने का ही वह काम करता था। रोज भेड़ें कटती थीं। एक भेड़ दूसरी भेड़ों के साम
ने कटती थी। बाकी भेड़ें बहुत घबड़ा जाती थीं। क्योंकि उनको पता हो गया कि कल
हम भी कट जाएंगी। सब भेड़ें जानती हैं कि कटने का वक्त आ जाएगा, आज नहीं
कल।
जादूगर बड़ा परेशान था कि बाकी भेड़ों को घबड़ाहट से, परेशानी से कैसे बचाया जा
ए! फिर उसने एक तरकीब की। उसने सब भेड़ों को बेहोश किया, हिप्नोटाइज किया
और उन भेड़ों से कह दिया कि सिर्फ दूसरी कटेगी, तू नहीं कटने वाली है। सब भेड़ों
के सामने कह दिया बेहोश करके कि दूसरी भेड़ें कटती हैं, तू नहीं कटेगी। क्योंकि दूस
री भेड़ें हैं। तू तो--तू तो सिंह है, तू भेड़ नहीं है।
सब भेड़ों को ख्याल आ गया कि वह सिंह हैं, भेड़ नहीं हैं। फिर भेड़ें बड़ी मस्त रहने
लगीं। एक भेड़ कटती है, बाकी भेड़ें समझती हैं, कि वह भेड़ है, इसलिए कट रही है
। हम तो सिंह हैं। हमारे कटने का कोई सवाल ही नहीं है।
फिर भेड़ें बीमार पड़ना बंद हो गईं। फिर एक भेड़ कटती, दूसरी भेड़ें नाचती रहतीं,
घूमती रहतीं। फिर दूसरी भेड़ कटती, लेकिन हर भेड़ यह समझती है कि वही भेड़ है
। बाकी सब भेड़ हैं, मैं भर सिंह हूं।

वह जादूगर बड़ा निश्चिंत हो गया। भेड़ों ने भागना बंद कर दिया, जंगल में छिपना बं
द कर दिया। भेड़ों को कटते देखकर उन्होंने दुख मनाना बंद कर दिया। जादूगर निश्चिं
चत हो गया। रोज भेड़ कटती रही।
लेकिन भेड़ों का यह दंश, यह ख्याल कि हम सिंह हैं, ने सब भय से उन्हें मुक्त कर ि
दया। एक तरह वे निर्भय हो गईं, मौत जारी रही, वह एक मूर्छा में पड़ गईं, मौत
जारी रही। वह बेहोशी में रहीं, मौत जारी रही। उनको जो ज्ञान दे दिया कि तुम सिं
ह हो, वह खतरनाक हो गया।
हम सब भी इसी तरह की भेड़ें हैं, जिनको सिंह होने का ख्याल पैदा हो गया है। रोज
कोई मरता है, लेकिन हमको यह ख्याल नहीं आता कि मैं मरूंगा। हम समझते हैं,
वह मर गया, बेचारा। जो मर जाता है, वह बेचारा हो जाता है। बहुत बुरा हुआ। ह
म इतने उससे मजे से यह बात करते हैं कि बहुत बुरा हुआ। यह सहानुभूति हम ऐसे
रसपूर्ण ढंग से प्रकट करते हैं कि बहुत बुरा हुआ। यह ऐसा लगता है कि यह बुरा
कभी हम पर होने को नहीं है।
उससे जब हम बेचारा कहते हैं, तो हम ऐसा कहते हैं, हम दो जाति के लोग हैं। वह
बेचारा, हम बहुत अलग हैं। मरना यहां होने वाला नहीं है।
भेड़ें कुछ भ्रम में हैं। हमें भी कुछ भ्रम है कि हम अगर हैं। वह आत्मा अमर है, वह
जो हमें दोहराया जा रहा है, हम सबके दिमाग में बैठ गया कि हम अमर हैं। इसलिए
हम तो मरने वाले नहीं हैं, दूसरे लोग मर जाते हैं। और हम सबके मन में बैठ गया
कि सबके भीतर परमात्मा है। सब ब्रह्मस्वरूप हैं, तब सब ठीक है, फिर अब कुछ क
रना नहीं है, न कुछ खोजना है, न कहीं जाना है। सब ब्रह्म हैं ही, सब ईश्वर हैं ही।
तब और क्या करना है, और क्या खोजना है? यह ज्ञान बड़ा खतरनाक है।
ये बातें सच हो सकती हैं। किसी दिन हम उस जगह पहुंच सकते हैं, जहां हम जानें ि
क हम आत्मा हैं। लेकिन अभी हम वहां पहुंच नहीं गए। किसी दिन हम उस जगह ख.
डे हो सकते हैं, जहां हम जानें कि हम आत्मा हैं। लेकिन अभी हम वहां पहुंच नहीं ग
ए। किसी दिन हम उस जगह खड़े हो सकते हैं, जहां पता चले कि मैं परमात्मा के स
ाथ एक हूं, लेकिन वहां हम अभी पहुंच नहीं गए। यह उधार ज्ञान महंगा पड़ सकता
है। तो आज की सुबह की इस चर्चा में मैं आपसे कहना चाहता हूं कि तोते मत बनन
ा। जो तोता बनाने की कोशिश करे, उसे दुश्मन जानना। वह गुरू नहीं है।
और जिन मंदिरों में आदमी तोता बनाया जा रहा हो, वह कारागृह है। मनुष्य की दा
सता के सबसे पुराने स्थान और दुकानें—दासता एक ही है—ज्ञान की दासता। ज्ञान के ि
लए गुलाम मत बनना, किसी के भी नहीं। ज्ञान के लिए मुक्त होने की कोशिश करनी
जरूरी है, तभी हम अंधकार से प्रकाश की यात्रा कर सकते हैं।
और सूत्रों के बावत बाद में हम बात करेंगे। मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से
सुना, उससे अनुग्रहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं
। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।
जीवन की भाषा

मेरे प्रिय आत्मन्
बीती चर्चाओं के संबंध में, और बहुत से नए भी प्रश्न मित्रों ने किए हैं। आज की सां झ मैं उन प्रश्नों पर बात करना चाहूंगा—
एक मित्र ने पूछा कि पंद्रहवी अगस्त या इस तरह के और त्यौहार मनाना उचित है या नहीं, आप क्या कहते हैं?
सवाल 15 अगस्त का ही नहीं है, सवाल जीवन के सब रिचुअल, सब क्रियाकांडों का है। चाहे क्रियाकांड धार्मिक हो, चाहे राजनैतिक, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। मन के अंतर्भाव से जो भी उठे, वह ठीक है। और जो भी मनाना पड़े, वह बिलकुल ठीक न हीं है।
आजादी का एक आनंद अगर अनुभव हो, तो वह प्रकट होगा। स्वतंत्रता का अगर ए क बोध अनुभव हो, तो वह प्रकट होगा। लेकिन वह बोध किसी को भी अनुीभव नहीं होता। सिर्फ मरा हुआ त्यौहार हाथ में रह जाता है। फिर हर वर्ष उसे हम दोहराए चले जाते हैं।
झंडे फहरा देते हैं, मन की कोई ऊंचाई उसके साथ नहीं फैलती। गीत गा लेते हैं, म न कोई गीत नहीं गाता। उत्सव, रंग-बिरंगे फूल लगा देते हैं, लेकिन भीतर कोई फूल नहीं लगाते। हमारा सारा जीवन ही जैसे झूठ पर खड़ा है। और हम सब कुछ झूठ क र लेते हैं।
हमारे त्यौहार झूठे हैं, हमारे सम्मान झूठे हैं, हमारी बातें झूठ हैं। हम जो भी करते हैं, वह झूठ हो जाता है; क्योंकि बहुत गहरे में हम ही झूठ हैं। हमरा किया हुआ सब झूठ हो जाता है।
मैं नहीं कहता हूं, कोई त्यौहार मनाएं। होना तो ऐस चाहिए कि पूरी जिंदगी एक त्यौ हार हो। होना तो ऐसा चाहिए कि सुबह-सांझ, एक-एक क्षण जीवन का, आनंद का क्षण हो। चूंकि ऐसा नहीं है, इसलिए हमें खुशी के त्यौहार मनाने पड़ते हैं। चूंकि जिंद गी बिलकुल दुख से भरी है। सुबह से सांझ, वर्ष-भर हम दुख से भरे हैं, तो अंधेरा-ही -अंधेरा है, तो फिर हमें दीवाली मनानी पड़ती है। दिए जलाकर हम सोचते हैं कि रो शनी हो जाएगी।
जिंदगी गुलामी से भरी है, सुबह से सांझ गुलामी के हजार रूप हमारे ऊपर चढ़े हैं। अंग्रेजों के जाने से गुलामी नहीं जाती। चित्त गुलाम होने के हजार रास्ते जानता है। ह जार तरह से हम गुलाम हैं, सुबह से सांझ तक। एक दिन स्वतंत्रता का दिन मना ले ते हैं। जब तक दुनिया में गुलामी चलती है, हजार-हजार रूपों में तब तक स्वतंत्रता के त्यौहार मनाए जाते रहेंगे। क्योंकि आदमी की जिंदगी में स्वतंत्रता नहीं है, सिर्फ त यौहार ही मनाए जा सकते हैं।
स्वतंत्रता होनी चाहिए, स्वतंत्रता के त्यौहार का कोई भी मूल्य नहीं है। और स्वतंत्रता होगी जीवन में, तो सारा जीवन एक खुशी का और एक आनंद का और एक नाचत ा हुआ जीवन हो जाएगा।

लेकिन पंद्रह अगस्त मना रहे हैं। वह तो प्रतीक की बात है। खुशी कहां है? आनंद क
हां है? स्वतंत्रता का प्रेम कहां है? स्वतंत्रता का उल्लास कहां है? स्वतंत्र होने की वृ
त्त कहां है? वृत्ति तो गुलाम होने की है, और गुलाम बनाने की है।
आप कहेंगे, हम तो किसी को गुलाम नहीं बनाए हुए हैं। तो अपनी जिंदगी खोजने से
पता चलेगा कि आप बेटे को गुलाम बनाए हुए हैं या नहीं। और पति पत्नी को गुला
म हुए बनाए हैं या नहीं? और मां अपने बच्चों को गुलाम बनाए हुए हैं या नहीं? गु
रु अपने विद्यार्थियों को गुलाम बनाने की कोशिश कर रहा है कि नहीं?
चौबीस घंटे हम दूसरों को गुलाम बनाने की कोशिश में लगे हैं, और कोई हमें भी गु
लाम बनाने की कोशिश में लगा है। सारी जिंदगी गुलामी की कहानी है। और स्वतंत्रत
ा के हम त्यौहार मनाते हैं। वे त्यौहार झूठे हो जाते हैं।
गुलाम आदमी, स्वतंत्रता के त्यौहार कैसे मना सकते हैं? नहीं, दुनिया में स्वतंत्रता के
 त्यौहार नहीं चाहिए, स्वतंत्रता चाहिए। स्वतंत्रता होगी तो सारी जिंदगी एक त्यौहार
 होगी; क्योंकि गुलामी से बड़ा बोझ और गुलामी से बड़ा दुख और क्या हो सकता है
?
लेकिन समझें हम, एक ऐसी दुनिया हो, जहां सारे लोग बीमार हों, और वर्ष में एक
दिन स्वास्थ्य का दिन, हेल्थ-डे मनाया जाता हो। तीन सौ चौंसठ दिन लोग बीमार रह
ते हों, एक दिन स्वास्थ्य का दिन मनाते हों, उन्हीं नेताओं का, जो बीमारी में उनसे
आगे हैं, तभी तो नेता हो सकते हैं बीमारों के। और काफी शोरगुल मचाते हों, बहुत
 शोरगुल मचाते हों, लेकिन वह प्रसन्नता झूठी होगी। क्योंकि तीन सौ चौंसठ दिन जो
बीमार रहा है, वह तीन सौ पैंसठवे दिन स्वस्थ कैसे हो जाएगा? ऊपर से चिपकाई हु
ई होगी, कागजी होगी। भीतर दिल रोता रहेगा, बीमारी सरकती रहेगी, ऊपर स्वास्थ
य का दिन मनाया जाएगा।
यह दुनिया पसंद करेंगे आप या एक ऐसी दुनिया, जहां लोग स्वस्थ हों, जहां स्वास्थ्य
का कोई दिवस न मनाया जाता हो, लेकिन लोग स्वस्थ हों। लोग स्वस्थ जीते हों, जह
ां स्वास्थ्य का आनंद और पुलक हो।
अभी ऐसी हालत है। सारी दुनिया में हर देश स्वतंत्रता के दिन मनाता है और देश क
ा मन पूरा का पूरा गुलाम बना चला जाता है। एक-एक आदमी गुलाम है, और गुला
म बनाने में लगा है। चौबीस घंटे हम हजार तरह की गुलामी थोप रहे हैं।
एक आदमी धन इकट्ठा कर रहा है। आप जानते हैं, क्यों इकट्ठा कर रहा है? जितना
ज्यादा धन उसके पास होगा, उतने लोगों को गुलाम करने की पोंटेशियल फोर्स, उसके
 पास बुनियादी शक्ति होगी। वह उतने लोगों को गुलाम बना सकता है।
मेरे खीसे में एक रुपया पड़ा है, एक रुपया नहीं पड़ा है, अगर मैं चाहूं तो उससे, ए
क आदमी से रात-भर पैर दबवा सकता हूं। वह एक आदमी मेरे खीसे में बंद है। मेरे
 खीसे में एक रुपया है, मैं चाहूं तो एक आदमी के कंधे पर बैठकर मील भर जा स
कत हूं। एक आदमी मेरे खीसे में बंद है। मैं चाहूं, तो एक रुपया है मेरे पास, एक अ

ादमी को कहूं नाचो, तो एक आदमी मैं नचा सकता हूं। मेरे पास गुलाम बनाने की त ाकत कैद है।
धन की दौड़, दूसरे को गुलाम बनाने की गहरी दौड़ है, पता हो चाहे पता न हो। औ र धन की दौड़ दूसरा मुझे गुलाम न बना ले, इसकी दौड़ है कि अगर मैं निर्धन रहा, तो कोई मुझे गुलाम बनाएगा। पद की दौड़ भी दूसरों को गुलाम बनाने की दौड़ है। इतने लोग मेरे हाथ में हैं।
हिटलर को मजा क्या होगा? क्या आनंद होगा हिटलर को? उसकी जिंदगी में कोई आनंद नहीं दिखाई पड़ता, सिवाय इसके कि यह आनंद बड़ा रुग्ण और बीमार है, कि इतने लोग मेरी मुट्ठी में हैं, इनकी मैं चाहूं तो अभी दबा दूं गर्दन, तो ये विलीन हो जाएं।
स्टैलिन को क्या सुख रहा होगा? या माओ को क्या सुख रहा होगा? कितने लोग मेरे हाथ में हैं कि दुनिया के राजाओं-महाराजाओं को, सिकंदरों, नेपोलियनों को, चंगेजख ानों को क्या सुख है? कितने बड़े घेरे पर, कितने लोगों को मैं मुट्ठी में कर लेता हूं। आप सोचते होंगे, हम तो चंगेज खां नहीं हैं, लेकिन एक पत्नी को आपने भी गर्दन ब ांध कर खड़ा कर रखा है। वह पत्नी भी आपको छोड़ती नहीं, उसने भी आपकी गर्दन बांध रखी है। एक बेटे ने अपने बाप को बांध रखा है, बाप ने बेटे को बांध रखा है। जितनी जिसकी ताकत है, उतना हम बंधन पैदा करते हैं। गुलामी पैदा करते हैं, और स्वतंत्रता के दिवस मनाए चले जाते हैं। इस स्वतंत्रता के दिवसों का अर्थ क्या हो स कता है?
नहीं ये बैड सिंबल्स रह जाते हैं। सिर्फ एक कहानी और इतिहास की घटना रह जाती है। लेकिन स्वतंत्रता का भाव इनसे कहीं हमारे भीतर पैदा नहीं होता है। मगर एक सुविधा होती है त्यौहार मना लेने से, कि ऐसा लगता है कि हम भी स्वतंत्रता को प्रेम करने वाले लोग हैं। हम भी स्वतंत्रता को सम्मान देने वाले लोग हैं। हम भी स्वतंत्र हैं।
ऐसा सुख एक दिन मिल जाता है। फिर गुलामी का ढांचा दूसरे दिन सुबह शुरू हो जा ता है। उस दिन भी जारी रहता है। खत्म तो नहीं हो जाता है, झंडे फहराने से क्या होने वाला है? मैं नहीं कहता हूं, स्वतंत्रता के त्यौहार मनाएं, मैं कहता हूं, स्वतंत्र हो ना सीखें, स्वतंत्र हों।
और ध्यान रहे, गुलामी सिर्फ राजनैतिक नहीं है। राजनैतिक गुलामी दुनिया में सबसे कमजोर आदमी है, जो तोड़ी जा सकती है। सबसे आसान ढंग से तोड़ी जा सकती है। राजनैतिक गुलामी दुनिया की सबसे कमजोर गुलामी है, जो बहुत आसानी से तोड़ी जा सकती है। राजनैतिक रूप से भी वही लोग गुलाम हो सकते हैं, जो आध्यात्मिक रूप से गुलाम रहे हों। नहीं तो वे गुलाम भी नहीं हो सकते।
जो आदमी मरने की हिम्मत रखता है दुनिया में कोई कभी उसे गुलाम नहीं बना सक ता है राजनैतिक रूप से। लेकिन कुछ कौमें मरने की हिम्मत खो देती हैं। फिर वे गुल

ाम हो जाती हैं। फिर चाहे वे स्वतंत्र दिखाई पड़ें, बहुत गहरे में उनकी गुलामी जारी रहती है।

और भी गुलामियां हैं, जो राजनैतिक गुलामी से ज्यादा गहरी हैं और खतरनाक हैं। मुझे अगर एक कारागृह में डाल दिया जाए तो मेरे शरीर को ही गुलाम बनाया गया है, मुझे नहीं। चूंकि मेरी आत्मा जिन ऊंचाइयों पर उड़ती है, उड़ती रहेगी। और मेरे प्राण जिन गीतों को गाते हैं, गाते रहेंगे। सिर्फ मेरे हाथ-पैर बंधन में हो जाएंगे। एक दीवाल आ जाएगी, जिसके बाहर मैं नहीं जा सकता।

लेकिन मैं हूं, मेरे भीतर दुनिया को कोई ऐसा आकाश नहीं है, जिसे न छू सकूं, और कोई तारा नहीं है, जो मेरे सपनों में न उतर सके। मैं आबाद रहूंगा, सिर्फ शरीर पर एक सीमा बंध जाएगी।

लेकिन यह भी हो सकता है कि मैं कारागृह के बाहर हूं, दीवालें मुझे बांधे हुए नहीं हैं, हाथ में जंजीरें नहीं हैं। और मेरी आत्मा न कभी किसी ऊंचाई पर उड़ती है, और न किसी तारे का सपना देखती है। और मुक्ति की कोई कल्पना भी नहीं है मेरे मन में, तो मैं ज्यादा गुलाम हूं। लेकिन आदमी गुलाम होना चाहता है और स्वतंत्रता की बातें करता है।

हर आदमी गुलाम होना चाहता है। क्यों? क्योंकि गुलामी बड़ी कनवीनियंट है, बड़ी सुविधापूर्ण है। स्वतंत्रता बड़ी रिस्पांसिबिलिटी है। स्वतंत्रता बहुत बड़ा दायित्व है। गुलामी में जिम्मा दूसरे का है। गुलामी में हम जिम्मेवार नहीं हैं।

गुलाम आदमी की अपनी कोई आत्मा नहीं है, इसलिए अपना कोई उत्तरदायित्व, कोई बोझ भी नहीं है। इसलिए हर आदमी गुलाम होना चाहता है। स्त्री गुलाम होना चाहती है, नहीं तो कोई पुरुष कैसे गुलाम बना ले। वह किसी पुरुष के कंधे पर हाथ रखकर कहती है, तुम्हारे सहारे के बिना नहीं जी सकती हूं। गुलामी खोज रही है, वह गुलामी खोजेगी। वह अपने प्रेमी के पास खड़े होकर रास्ता देखती है कि गड्ढा पार करना है, तो वह हाथ बढ़ाए। और जो प्रेमी हाथ बढ़ाएगा, उससे खुश होगी। लेकिन वह जानती नहीं है, जिसका हाथ पकड़कर उसने गड्ढा की छलांग लगाई है, उसकी गुलामी शुरू हो गई। अगर स्त्री को मुक्त होना है, तो उसे प्रेमी से कहना चाहिए कि हाथ दूर रखो, मैं खुद भी गड्ढे को पार कर सकती हूं। यह हाथ गुलामी का हाथ है। लेकिन बड़ा प्रीतिपूर्ण मालूम पड़ता है।

हम सब भीतर से गुलाम होना चाहते हैं और स्वतंत्रता के त्यौहार मनाते हैं। हम सब गुलाम हैं शास्त्रों के, सिद्धांतों के, गुरुओं के, धर्मों के। हमने कभी भीतर से स्वतंत्रता की कोई पुकार नहीं की है, और न हमने कभी स्वतंत्र होना चाहा है। गुरुओं के पैर पकड़े हुए हैं लोग! ये पैरों की जंजीरें लोहे की जंजीरों से ज्यादा खतरनाक हैं। लोग मरे हुए गुरुओं की मजार पर सिर झुकाए, घुटने टेके बैठे हुए हैं। लोग पत्थर की मूर्ति के सामने पड़े हुए रो रहे हैं और चिल्ला रहे हैं। हमारी भीतरी गुलामी बहुत ज्यादा है। फिर ये लोग स्वतंत्रता के दिवस भी मनाए चले जाते हैं।

नहीं! इन स्वतंत्रता के दिवसों का कोई भी उपयोग बच्चों के खेल से ज्यादा नहीं है। प्रायमरी के स्कूल तक ठीक हैं, उसके आगे बहुत बेहूदे मालूम पड़ते हैं। और वैसे भी प्रायमरी स्कूल के सिवाय कौन मनाता है। और प्रायमरी स्कूल के बेचारे बच्चे और शिक्षक तो जो भी कहो, वही मनाते हैं। अंग्रेजों की विक्ट्री होती है, तो विक्ट्री डे मनाते हैं, वे ही बच्चे, वे ही शिक्षक। वे ही शिक्षक और वे ही बच्चे अब स्वतंत्रता दिवस भी मनाते हैं।

कल मुल्क गुलाम हो जाए, वे ही बच्चे प्रायमरी स्कूल के, गुलामी का भी गुण-गान करने लगेंगे। प्रायमरी स्कूल के बच्चों के साथ तो जो भी अनाचार करना हो, किया जा सकता है।

लेकिन हम सब भी बच्चों जैसा ही व्यवहार करते हैं। हम भी बहुत गहरे में चाइल्डिश और बचकाने ही होते हैं। मुक्त नहीं हो पाते बचपन से। इसीलिए तो हमें अजीब चीजें प्रभावित करती हैं। अब एक झंडा है, उसको हम चढ़ा रहे हैं। दुनिया के किसी कोने में बच्चों को यह खेल अच्छा मालूम होना चाहिए कि उन्होंने एक झंडे पर कागज के टुकड़े को लगाकर चढ़ा दिया है। नमस्कार कर रहे हैं।

अगर कहीं चांद-तारों पर, कहीं मंगल, शुक्र पर कहीं भी कोई चेतना होगी, कहीं कोई प्राणी होंगे, और हमें नीचे देखते होंगे, तो बड़े हैरान होते होंगे कि मनुष्यता को क्या हो गया है? डंडों पर कपड़े बांध लेते हैं और नमस्कार करते हैं। सोचते होंगे न वह, कि फिर आदमी क्या करता है? आदमी पागल तो नहीं है? यह कर क्या रहा है?

अगर हमें भी समझ आएगी तो बहुत पागलपन मालूम पड़ेगा। यूनिवर्सिटी में जाकर देखिए। यूनिवर्सिटी का कन्वोकेशन हो रहा हो तब देखिए, और वाइस चांसलर और चांसलर को काले चोगे पहने हुए, और सर्कस के जोकरों को जो टोपी लगानी चाहिए, वह टोपी लगाए हुए मंच पर चले आ रहे हैं। और बड़े गुरु गंभीर, बड़े सीरियस। बच्चे यह खेल करें, शोभा देता है, वाइस चांसलर और चांसलर यह खेल करें, तो यह यूनिवर्सिटीज की नाव ही डूबने वाली है। यह कहीं जाने वाली नहीं है। यह बच्चों जैसा खिलवाड़—लेकिन हम बैठकर गंभीरता से देख रहे हैं कि बहुत बड़ा काम हो रहा है।

रामलीला देख रहे हैं, नाटक देख रहे हैं, यह क्या देख रहे हैं? नेतागण बड़े सजे-धजे खड़े हैं, झंडे फहरा रहे हैं। नेतागण बड़े तैयार हैं। नाटक कर रहे हैं मंचों पर और हम सब देख रहे हैं। और सोचते हैं, स्वतंत्रता पूरी हो गई, स्वतंत्रता आ गई।

स्वतंत्रता इतनी सस्ती चीज नहीं है कि ऐसे आ जाए। स्वतंत्रता अंग्रेजों के छोड़ने से नहीं आती। अंग्रेजों के छोड़ने से सिर्फ एक तरह की गुलामी टूटती है। और गुलामी हजार तरह की हैं। अंग्रेजों के तोड़ने से सिर्फ एक तरह की गुलामी टूटती है। लेकिन वह जो आदमी गुलाम था, अगर उसका मन वही का वही है, तो उस आदमी में कोई फर्क नहीं पड़ता, वह आदमी गुलाम ही बना रहता है। आदमी स्वतंत्र नहीं होता। हम अंग्रेजों से मुक्त होकर स्वतंत्र नहीं हो जाते हैं।

स्वतंत्र होने के लिए भीतर हमारे स्वतंत्रता के नए आयाम खुलने चाहिए। अगर हम वही के वही लोग हैं, जो आजादी के पहले थे, तो क्या फर्क पड़गया है हिंदुस्तान के आदमी में? आदमी के मन में क्या पड़ गया है?

हां, कुछ फर्क पड़ गया है। जहां अंग्रेज खड़ा हुअ था, वहां काला आदमी खड़ा हो गया है। गोरे आदमी की जगह काला आदमी खड़ा है, और निश्चित ही काला आदमी ज्यादा अकड़कर खड़ा हुआ है। क्योंकि उसको डर भी नहीं है। हमारे तुम्हारे ही बीच में है, इसलिए कोई डर नहीं है। अंग्रेज तो डरा भी हुआ था थोड़ा। आज नहीं कल उसे हट ही जाना पड़ेगा। काला आदमी ज्यादा अकड़कर खड़ा हुआ है।

अंग्रेज कितनी गोली चलाता था इस मुल्क में, हमारे काले आदमी ने उससे बहुत ज्यादा गोली चलाई। यह कैसी स्वतंत्रता है? अंग्रेजों ने इतनी गोलियां नहीं चलाईं। हमारा आदमी इतनी गोलियां चलाता है कि घबड़ाने वाला मामला है। निहत्थे बच्चों पर गोलियां चलाता है, स्कूल और कालेज के लड़के और लड़कियों पर गोलियां चलाता है। स्वतंत्रता कैसी है यह?

और हमको भी इससे यह फर्क नहीं पड़ता। हम भी इसको झेल लेते हैं। समझते हैं, यह ठीक ऐसा ही होता है, जैसा हो रहा है। यह गुलामी में होता, तो ठीक मालूम प. डता था। यह आजादी में होता है, तो यह आजादी बड़ी बेमानी मालूम पड़ती है। लेकिन हम भी देखते हैं और चुपचाप सह लेते हैं।

कितनी गोली चली है 1947 के बाद अब तक? कितनी लाठी चली है? कितने गैस के गोले फोड़े गए हैं? वही का वही रवैया सब जारी है। सत्ता वही है, वही शक्ति है। आदमी के साथ वही व्यवहार करती है।

जाएं पुलिस थाने में, गालियों में कोई फर्क पड़ गया है? इतना ही फर्क पड़ा है—अंग्रेज अंग्रेजी में गाली देता था। अंग्रेजी में गालियां उतनी अभद्र नहीं हैं। वह आदमी हिंदी में गाली देता है, गुजराती में गाली देता है, वह बहुत भद्दी है। अंग्रेज की गाली ठीक से समझ में भी नहीं आती थी, इसकी गाली पूरी ठीक से समझ में आती है, और हम हाथ जोड़कर उसको भी पी जाते हैं। कैसी आजादी? आजादी का मतलब क्या होता है? आजादी के भाव का क्या मतलब है?

व्यक्तित्व की गरिमा, आजादी का मतलब होता है एक-एक व्यक्ति का मूल्य। लेकिन क्या मूल्य है इस देश में व्यक्ति का? कोई मूल्य नहीं है किसी व्यक्ति का। व्यक्तित्व का मूल्य ही आजादी का अर्थ है। अपने से विरोधी व्यक्ति का भी उतना ही मूल्य है, जितना अपना।

आजादी का अर्थ है—एक-एक आदमी को स्वयं होने की स्वतंत्रता, आजादी का यही अर्थ है। लेकिन वह सब बात कहीं भी नहीं है। बस आजादी का त्यौहार है। वह साल में आ जाता है। सरकारी आदमी उसको मना लेते हैं। गैर सरकारी आदमियों को अगर बताशा वगैरह मिलता हो, तो वे भी पहुंच जाते हैं, और उसका कोई मतलब नहीं है।

मैं त्यौहार मनाने के पक्ष में नहीं, स्वतंत्रता की आत्मा पैदा होने के पक्ष में हूं। त्यौहा र बच्चे मनाते रहेंगे। कुछ बच्चे हैं, जिनको गुड्डा-गुड्डी खेलने चाहिए। वे खेलते रहेंगे। उनको खेलने दो। उनके खेल में बाधा डालने की कोई जरूरत नहीं है।

लेकिन स्वतंत्रता का भाव पैदा होना चाहिए। मैं समझता हूं, अभी भी, इस देश में स्व तंत्रता का कोई भाव नहीं है। अगर कल चीन इस मुल्क पर हावी हो जाए, तो हम उस गुलामी के सामने वैसे ही झुक जाएंगे, ईल्ड कर जाएंगे, जैसे हम पहले कभी कि सी गुलामी के सामने कर गए थे। कोई फर्क नहीं पड़ेगा। आज भी मुल्क में हजारों लो ग हैं, जो यह कहते सुने जाते हैं कि इससे तो अंग्रेज ही—वही अच्छा था। कोई फर्क नहीं मालूम पड़ता। तो ठीक भी लगता है उनका कहना, लेकिन कहना बहुत खतरना क है।

स्वतंत्रता का कोई मूल्य नहीं होता। स्वतंत्रता का ऐसा भाव नहीं है कि उसके लिए ह म सब कुछ खो सकें। हम कुछ न खो सकेंगे उसके लिए। कितना? हजार वर्ष तक ह म गुलाम थे। हमने गुलामी को भी स्वीकार कर लिया था, जैसे हम सब चीजों को स्व ीकार करते हैं—गरीबी को, बीमारी को, वैसे ही गुलामी को भी स्वीकार कर लिया है । स्वीकार करने की हमारी प्रवृत्ति इतनी गहरी है कि हम किसी भी तरह के अपमान को स्वीकर कर सकते हैं।

कोई हमारी छाती पर जूते रखकर खड़ा हो जाए, तो थोड़ी देर में हम समझेंगे कि य ह अपना भाग्य है, यह उसका भाग्य है। भाग्य को मानने वाले लोग कभी स्वतंत्र नहीं हो सकते। भाग्य को मानने वाला आदमी, गुलामी की गहरी जंजीर में जकड़ा हुआ है। वह यह कह रहा है, जो हो रहा है वह होने को बदा है, इससे अन्यथा हो भी नह ीं सकता। इसीलिए तो एक हजार साल हम गुलाम रहे।

दुनिया में कोई कौम एक-एक हजार साल तक गुलाम रहती है? इतनी-इतनी बड़ी क ौमें? इतना विराट जिनका फैलाव है, जो एक दिन में तय करे, तो वह आदमी जो गु लाम किए थे, उनका कहीं पता नहीं चलेगा कि वह कहां चले गए, कहां खो गए। लेि कन हमारी बुनियादी कमजोरी हमारे ख्याल में नहीं है। हम सब चीजें स्वीकार कर ले ते हैं।

सड़क पर लोग भीख मांग रहे हैं। एक आदमी उन्हीं के बीच से मंदिर चला जाता है भजन गाते हुए, राम-राम करता हुआ। उसे जरा भी तकलीफ नहीं मालूम होती है ि क भीड़ और कतार खड़ी है, मंदिर के सामने ही भिखमंगे खड़े हुए हैं। उसे कुछ पता नहीं चलता—इनसेंसिटीविटी है, कोई संवेदन पैदा नहीं होता है।

एक आदमी भूखा मर रहा है, अपने भाग्य से मर रहा है। हमारा क्या लेना-देना? हम अपने रास्ते पर, वह अपने रास्ते पर। हिंदुस्तान में यही समझा जाता रहा कि कोई नृप हो, कोई राजा हो, हमें क्या मतलब है! तो ऐसी कौम की आजादी बड़ी डांवाडो ल है। ऐसी कौम की आजादी बड़ी डांवाडोल है। त्यौहार मनाने से वह मजबूत नहीं ह ो जाएगी। त्यौहार मनाने से कोई फर्क नहीं पड़ेगा।

इधर मैं हैरान हो गया हूं यह बात जानकर कि गुलामी तो हमने एक तरह की उठा दी, अंग्रेज हट गए। लेकिन गुलामी की जो बुनियादी वजह थी, कारण थे जिनकी वज ह से हम गुलाम हुए थे, वह जारी है। वह बिलकुल नहीं हटी है। वहीं का वहीं है आ दमी हमारा, वहीं का वहीं उसके मस्तिष्क का ढांचा है। उसकी स्टेटस आफ माइंड वह ी की वही है उसमें कोई बदल नहीं हुई, तो फिर गुलामी किसी भी दिन खड़ी हो सक ती है।

यह आकस्मिक मामला है कि गुलामी हट गई। गुलामी कल फिर हो सकती है; क्यों क हमारी तैयारी गुलामी होने की भीतर से पूरी है। वह हमारी पूंछ हिलाने की आद त पूरी है। इसीलिए तो हमें ख्याल में नहीं आता है। हम राज्य को सत्ता को कितनी पूंछ हिलाते हैं, इसका हमें ख्याल ही नहीं आता।

अखबार उठाकर देखें—दो कौड़ी का आदमी किसी पद पर हो जाए, तो अखबार के ि लए भगवान हो जाता है। वही आदमी कल अखबार से, दुनिया के पद से नीचे उतर जाए, फिर उसका पता लगाना मुश्किल है कि वह कहां है। कोई पता नहीं चलेगा। बस सत्ता का हमारे मन में इतना आदर है। यह स्वतंत्र आदमियों का लक्षण नहीं है। सारा अखबार सत्ताधिकारियों की आवाज से भरा है। उनकी ही खबरें, किसको छींक आ गई, किसको क्या तकलीफ हो गई, वह सारी खबरें हैं। किसके घर कौन आया, कौन गया, वह सब खबरें हैं। जैसे मुल्क में और कुछ भी नहीं होता है। न मुल्क में सं गीत है, न मुल्क में कला है, न मुल्क में धर्म है, न मुल्क में दर्शन है, न मुल्क में यो ग है, कुछ भी नहीं है, सिर्फ राजनीति है। यह गुलाम आदमियों का लक्षण है।

जो कौम जितनी चित्त से गुलाम होगी, उतनी ज्यादा राजनीति को सब कुछ मान लेत ी है। बस यही सब कुछ हो रहा है। क्योंकि सत्ता में जो खड़ा है, वही भर सब कुछ है। और दूसरा आदमी किसी मूल्य का नहीं है। राधाकृष्णन कहां हैं, कभी खोजते, प ता लगाते हैं, कहां हैं? राधाकृष्णन का कहीं पता चलता है, कहां चले गए? गए! क ोई पूछेगा नहीं दो कौड़ी को।

स्वतंत्र आदमी हजार-हजार दिशाओं में यात्रा करता है। गुलाम आदमी सत्ता के आस-पास पूंछ हिलाता है, और कुछ भी नहीं करता है। एक मिनिस्टर के आस-पास जाकर लोगों के चेहरे देखें, फिर सोचें कि यह मुल्क कितने दिन आजाद रह सकता है। एक मिनिस्टर के पास चले जाएं और आस-पास घूमते हुए लोगों के जरा चेहरे देखें—कैसी जीभ लटक रही है, लार टपक रही है, पूंछ हिल रही है, वह सब देखें।

इस मुल्क के मन में आजादी का कोई भाव है? कोई गरिमा है? कोई गौरव है? व्यि क्तत्व का कोई अर्थ है? छोटे-मोटे आदमी नहीं, युनिवर्सिटी का वाइस चांसलर, तो व ह भी एक मिनिस्टर के चपरासी के पास चक्कर लगा रहा है। सत्ता सब कुछ है। गुला म आदमी के मन का यह भाव है।

स्वतंत्र आदमी कहता है, सत्ता कामचलाऊ बात है। फंक्शनल है। यह वैसा ही है जैसे कि घर में एक रसोइया रखा हुआ है। भोजन बनाता है। फूड मिनिस्टर पूरे प्रांत के र

सोइए से ज्यादा कीमत का नहीं है। इससे ज्यादा कोई मतलब भी नहीं है उसका। फंक शनल बात है। एक काम है।

रेलें चल रही हैं, तो रेल को चलाने के लिए, व्यवस्था करने के लिए कोई होगा। इंत जाम करना है, तो इंतजाम करने के लिए कोई होगा। लेकिन मुल्क की पूरी आत्मा इन्हीं के आस-पास घूमने लगे, तो यह मुल्क—और यह कौम गुलाम चित्त की है।

तो हम आजादी के त्यौहार मना लेते हैं, लेकिन हम गुलाम हैं। हमारा मन गुलाम है। हमें मुक्त होना चाहिए, स्वतंत्र होना चाहिए। त्यौहार से कोई मतलब नहीं है। वह ि दन सौभाग्य का होगा, त्यौहार चाहे हो चाहे न हो, लेकिन हमारा मन स्वतंत्र हो। एक-एक आदमी को स्वतंत्रता का कोई भाव पैदा हो, स्वतंत्रता का बोध पैदा हो, व्यि क्तत्व की गरिमा पैदा हो। और जिस व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व की गरिमा का थोड़ा बोध होता है, वह दूसरे के व्यक्तित्व की गरिमा के प्रति उतना ही संवेदनशील हो जाता है। जो व्यक्ति अपने को स्वतंत्र रखना चाहता है, वह दूसरे को कभी परतंत्र न हीं करता। जो व्यक्ति स्वतंत्रता को प्रेम करता है, वह सबको स्वतंत्र करेगा।

स्वतंत्र व्यक्ति अपने बच्चों से कहेगा, हम तुम्हें प्रेम देंगे, नियम नहीं। हम तुम्हें प्रेम क रेंगे लेकिन बंधन नहीं देंगे। स्वतंत्र पति अपनी पत्नी से कहेगा कि तू मेरी दासी नहीं है, मित्र हैं हम, साथी हैं हम। प्रेम मैं दे सकता हूं, गुलाम तुझे नहीं बना सकता। प्रेम कैसे गुलाम बना सकता है? लेकिन जिसको हम प्रेम कह रहे हैं, यह पूरी तरह गुला म बना रहा है। इसलिए प्रेम का नाम चलता है, गुलामी का जाल चलता है—

कलह है, कष्ट है, दुख है। सब भीतर, सब सड़ गया है। सब ऊपर-ऊपर हंसी है, सब भीतर सड़ा-गला है, सब दुर्गंध है। उसको किसी तरह लीप-पोत कर बाहर निकल अ ाते हैं। बाहर सब ठीक लगता है—घर-घर भीतर गंदा और परेशानी में है, और सारी परेशानी की एक जड़ है कि गुलाम चित्त जब भी गुलाम होता है, दूसरे पर भी गुला मी थोपता है।

स्वतंत्र चित्त स्वयं भी स्वतंत्र होता है, दूसरे को भी स्वतंत्र करता है। स्वतंत्र चित्त सब तरफ स्वतंत्रता के बीज बिखेरता है। क्या यह हो रहा है? अगर यह हो रहा हो, तो आपके आजादी के व्यवहार बड़े अच्छे हैं और अगर यह न हो रहा हो, तो अपने को धोखा देने के उपाय से ज्यादा नहीं है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि आपने कहा कि धर्म का अर्थ है, टू बी अलोन, अकेला होना। लेकिन संस्कृत में तो धर्म का अर्थ है धारण करना।

संस्कृत में कोई भी अर्थ हो, भाषा जो कहती है, वही सत्य नहीं हो जाता। भाषा बिल कुल कामचलाऊ है। शब्दों का जन्म अलग-अलग प्रसंगों में होता है। धर्म से मैं कोई भाषाशास्त्री नहीं हूं, कोई लिंग्विस्ट नहीं हूं। धर्म से मेरा, भाषा-कोष में जो लिखा है, वह अर्थ नहीं है। धर्म से मेरा अर्थ है, उसे जान लेना, जो मैं हूं। धर्म से मेरा अर्थ है, स्वयं के सत्य को जान लेना।

धर्म शब्द का क्या अर्थ है, इससे मुझे प्रयोजन ही नहीं है। धर्म शब्द का क्या व्याकरण है, क्या भाषा है, इससे मतलब नहीं है। व्याकरण और भाषा से कुछ लेना-देना नहीं

है। लेकिन इस देश में ऐसी बात रही है कि यहां हम सत्य की खोज कम करते हैं, शब्दों की व्याख्या और विश्लेषण ज्यादा करते हैं। किस शब्द का क्या अर्थ है? यह ह म भाषा और व्याकरण की ज्यादा चिंता करते हैं। लेकिन किस शब्द का क्या इंगित है, इशारा क्या है, वह हम बहुत कम फिक्र करते हैं। अर्थ जैसे समझें, एक उदाहरण मुझे ख्याल में आता है–

एक बाउल फकीर हुआ है–नाच रहा है एक गांव के पास। प्रेम का गीत गा रहा है। एक वैष्णव पंडित उसके पास गया और उसने कहा कि तुम्हें पता भी है कि प्रेम का मतलब क्या होता है?

समझ लेना, प्रेम के दो मतलब होते हैं। एक तो वह, जो प्रेम करने से पता चलता है , और एक वह, जो डिक्शनरी में लिखा हुआ है। ये दोनों बिलकुल अलग चीजें हैं।

उस पंडित ने पूछा–तुम्हें प्रेम का मतलब पता है कि प्रेम शब्द की व्युत्पत्ति कहां से हु ई है?

वह फकीर रुक गया। उसने कहा–प्रेम का तो पता है, लेकिन जिस प्रेम को तुम कह रहे हो, कुछ भी पता नहीं। लेकिन उस प्रेम से मतलब भी क्या है?

उस वैष्णव पंडित ने कहा–तो फिर सुनो। अभी तुम्हें कुछ भी पता नहीं है। जो प्रेम श ब्द को ही नहीं जानता, वह प्रेम को कैसे जान सकेगा?

दलील तो बड़ी ठीक मालूम पड़ती है। लेकिन आपमें से बहुत लोगों ने प्रेम जाना होगा । प्रेम शब्द कहां से पैदा होता है, पता है?

वह फकीर भी हार गया। उसने कहा–यह तो मुझे पता नहीं है कि यह शब्द कहां से आया, प्रेम शब्द की यात्रा कैसे हुई, प्रेम का मूल अर्थ क्या है? प्रेम शब्द का गणित और व्याकरण क्या है! मुझे पता नहीं, आप बता दें।

उसने अपनी किताब खोली। प्रेम का एक-एक शाब्दिक अर्थ समझाया और फिर कहा– यह मालूम है, प्रेम कितने प्रकार का होता है?

उस फकीर ने कहा–प्रेम और प्रकार? प्रेम को जानता हूं, प्रकार का तो कभी कोई प ता नहीं चला। प्रेम में प्रकार होते ही नहीं।

उसने कहा–फिर ठहरो, तुम्हें कुछ भी पता नहीं है। हमारी किताब में लिखा है, प्रेम पांच प्रकार का होता है। मां का प्रेम बात अलग, पत्नी का प्रेम बात अलग, भक्त का भगवान के प्रति प्रेम बात अलग। सब कई तरह के प्रेम होते हैं। तुमको प्रेम के प्रका र ही पता नहीं, तुम क्या करते हो? प्रेम के गीत गाकर फिजूल समय खराब करते ह ो।

उसने पांच प्रकार समझाए, शब्द की व्याख्या समझाई। फिर उस फकीर से पूछा,–कैसा लगा?

उस फकीर ने कहा कि कैसा लगा? एक गीत गाकर सुनाता हूं। फकीर ने एक गीत गया और उस गीत का मतलब था–कि एक बार एक माली ने अपने एक सुनार मित्र को कहा कि मेरे बगीचे में बहुत अदभुत फूल आए हैं। कभी आओ। उस सोनार ने कहा, आऊंगा। लेकिन था तो सोनार। सोने के कसने के पत्थर को लेकर बगीचे में प

हुंच गया और एक-एक फूल को पत्थर पर कस-कस कर देखने लगा कि है भी सही ि
क नकली है।
तो उस फकीर ने कहा—मुझे ऐसा ही लगा, जैसा उस दिन उस माली को लगा होगा
किस पागल को निमंत्रण दे दिया। अब सोने के कसने के पत्थर, फूलों को कसने के प
त्थर नहीं हैं। सोने का निकष, सोने की कसौटी, फूल की कसौटी नहीं है। फूल को जा
नने के लिए और ही तरह का हृदय चाहिए।
प्रेम को जानने के दो रास्ते हैं—एक तो प्रेम करो। जरा मुश्किल रास्ता है। और एक र
ास्ता यह है कि किस पुस्तकालय में चले जाएं और प्रेम पर जितनी किताबें लिखी हैं,
पढ़ डालें। वह रास्ता बिलकुल आसान है। उसमें जरा भी कठिनाई नहीं है। लेकिन ध्
यान रहे, प्रेम के संबंध में कितना ही जान लें, पर प्रेम नहीं जाना जाता है।
धर्म को जानने के लिए दो रास्ते हैं—एक तो यह कि धर्म का अर्थ क्या, धर्म शब्द का
क्या अर्थ है? उपनिषद क्या कहते हैं? वेद क्या कहते हैं? गीता क्या कहती है? कुर
ान क्या कहता है? बाइबल क्या कहती है? धर्म का क्या अर्थ है? इसे खोजने में लग
जाएं, तो आप एक शोध, एक रिसर्च कर लेंगे। धर्म के संबंध में बहुत पता चल जा
एगा, सिर्फ धर्म को छोड़कर सब पता चल जाएगा। धर्म भर चूक जाएगा, एक दम चू
क जाएगा।
धर्म जानना हो, तो मैंने कहा, अकेला होना पड़ेगा। वहां जाना पड़ेगा, जहां अकेला मैं
ही रह जाऊं और कुछ न रह जाए। तो उसका पता चलेगा, जो धर्म है। धर्म मेरे ि
लए एक सत्य है। धर्म मेरे लिए वह है, जो है, दैट व्हिच इज। धर्म से धारण करता
कि नहीं, इसका मुझे कोई—न मुझे पता है, न हिसाब है, न हिसाब रखने की जरूरत
समझता हूं। धर्म शब्द की व्याख्या भाषा-शास्त्री का काम है, और धर्म का अनुभव धार्ि
मक का काम है।
भाषा-शास्त्र अलग बात है। वहां चीजें और ही ढंग से चलती हैं। वहां सत्यों से कोई
संबंध नहीं होता। सत्यों के जो प्रतीक हैं, उनसे संबंध होता है। वहां गाय से मतलब
नहीं होता है, गाय शब्द से मतलब होता है। वहां धर्म से मतलब नहीं होता है, धर्म
शब्द से मतलब होता है। और धर्म शब्द से मतलब बिलकुल दूसरे तरह का मतलब ह
ोता है। चूक ही गए हम वहां, असली चीज से चूक गए और किसी और चीज पर च
ले गए।
जैसे, ये कपड़े मैं पहने हुए हूं। ये कपड़े मैं नहीं हूं। और अगर मेरा कोई चादर छीन
ले और समझे कि मुझे अपने घर ले आया, तो गल्ती में पड़ जाएगा। चादर मेरे ऊपर
थी, मैं चादर नहीं हूं। वह धर्म शब्द सिर्फ उसके ऊपर है, जो धर्म है। अगर धर्म शब्
द को छीनकर ले गए और सब व्याख्या करके समझ गए, तो सिर्फ चादर हाथ पड़ी।
वह चूक गया, जो था। आत्मा गई, शरीर हाथ पड़ गया। ऐसा रोज हो जाता है। ऐस
ा अक्सर हो जाता है।
एक फूल खिला है गुलाब का, आप उसके पास खड़े हैं, और आप कहते हैं, बहुत सुंद
र है। आपके पास एक मित्र खड़ा है। वह कहता है, सौंदर्य शब्द का क्या अर्थ? फूल

वहां पड़ा रह गया। सौंदर्य वहां पड़ा रह गया। वह पूछता है सौंदर्य शब्द का अर्थ, पत
ा है एस्थेटिक, जानते हो? सौंदर्य-शास्त्र जानते हो? सौंदर्य का मतलब क्या? सौंदर्य क
या है? वह आदमी कहता है, छोड़ो, सौंदर्य का कोई मतलब नहीं है, यह रहा। वह
कहता है, इससे काम नहीं चलेगा। यह रहा से क्या मतलब? क्या रहा? सौंदर्य? सौंद
र्य क्या है? सौंदर्य का क्या अर्थ?
किताबें लिखी हैं लोगों ने हजार-हजार पृष्ठों की--व्हाट इज ब्यूटी! पूरी किताब पढ़ जा
एं और उतने भी सौंदर्य का पता नहीं चलेगा, जितना पास के एक फूल से पता चल
जाता है। पूरी किताब पढ़ जाएं। एक हजार पन्ना पढ़ जाएं, सिर भर जाएगा सौंदर्य
की व्याख्याओं से, परिभाषाओं से और इतना भी पता नहीं चलेगा, जो इस छोटे से फू
ल को देखने से पता चल जाता है।
रवीन्द्रनाथ एक किताब पढ़ रहे थे सौंदर्य शास्त्र पर। पूर्णिमा की रात है, एक बजरे में
 जा रहे हैं, किताब पढ़ रहे हैं। बाहर चांद पुकार रहा है। लेकिन कौन सुने! किताब
पढ़ने वाला कभी नहीं सुनता। रवीन्द्रनाथ अपनी किताब पढ़ रहे हैं, सौंदर्य क्या है? ब
ाहर चांद चिल्ला रहा है कि यह रहा। बाहर की झील कहती है कि यह रहा। बाहर
की लहरें कहती हैं कि यह रहा। लेकिन किताब में डूबा आदमी कहीं सुनता है?
वह अपनी किताब पढ़े चले जा रहे हैं। रात दो बज गए, थक गए। किताब शुरू की
थी, तो थोड़ा पता भी होगा कि सौंदर्य क्या है, किताब की उलझन में वह भी डांवाड
ोल हो गया। ऊब गए, समझ में नहीं आया कि सौंदर्य क्या है। किताब बंद कर दी थ
क कर। मोमबत्ती की बत्ती फूंक मार कर बुझा दी। मोमबत्ती के बुझते ही चांद की ि
करणें भीतर भर गईं। रंध्र-रंध्र से, द्वार-द्वार से, खिड़की-खिड़की से चांद बाहर खड़ा
था। किरणें नाचने लगीं। बाहर की ठंडी हवा के झोंके आए। पहले भी आ रहे थे, लेि
कन किताब में डूबे आदमी को कुछ भी पता नहीं चलता। किरणें आ गईं भीतर। मो
मबत्ती का धीमा सा प्रकाश किरणों को बाहर रोके था। मोमबत्ती चली गई, किरणें भ
ीतर आ गईं।
रवीन्द्रनाथ उठकर खड़े हो गए। कहा--यह रहा सौंदर्य।
वे बाहर आ गए। चांद है पूरा, पूरी चांद की रात है। चांदी बरस रही है, सारी झील
 चांदी हो गई है। यह रहा। लेकिन एक किताब थी, अभी पढ़ते थे इतनी देर। वहां
सौंदर्य की व्याख्या थी।
अगर अनुभव की तरफ जाना हो, तो फिर दूसरी यात्रा करनी पड़ती है। और अगर
शब्दों की तरफ जाना हो, फिर दूसरी यात्रा करनी पड़ती है। मैं शब्दों की यात्रा का
पक्षपाती नहीं हूं। धर्म का कुछ भी अर्थ हो, मुझे कुछ प्रयोजन नहीं है। मुझे प्रयोजन
यह है कि धर्म शब्द, जिसके लिए हमने उपयोग किया है अनुभव के लिए, वह अनुभ
व क्या है?
मैं उस अनुभव की बात कर रहा हूं। वह जो अनुभव है, मैं जो हूं उसकी पूरी प्रतीति
, उसका पूरा साक्षात्कार मैं क्या हूं, इसका पूरा उदघाटन। जैसे रवीन्द्रनाथ ने कहा,
यह रहा, ऐसा किसी दिन मैं अपने भीतर छाती पर हाथ रखकर कह सकूं कि यह र

हा, और जान सकूं कि यह क्या है—यह धड़कन, यह श्वांस, यह चेतना, यह सब खुल जाए, यह सब पर्दे गिर जाएं और खड़ा हो जाऊं और मैं जान लूं कि यह हूं।
जिस दिन मैं जान लूंगा कि यह रहा मैं, उसी दिन मैंने जान लिया कि वह रहे आप। जिस दिन मैंने जान लिया कि यह मैं हूं, वह आप, मैंने जान लिया कि सब क्या है; क्योंकि मैं भी एक छोटी ईंट हूं उसी सबकी। एक ईंट जान ली गई, पूरे भवन का पत ा चल गया। उस दिन कोई कहेगा, धर्म की व्याख्या, तो आदमी कहेगा, जाओ कहीं और—पंडितों के पास जाओ, वह किताबें लिए बैठे हैं, वह सब बताएंगे कि धर्म, यानी धारण करना, या क्या? मैं नहीं कहता, मुझे कुछ मतलब नहीं है।
शब्द कामचलाऊ हैं। सवाल अनुभूति का है, एक्सपीरियंस का है। और शब्द इतना का म कर दे, इशारा कर दे, काम खत्म हो गया। इससे ज्यादा मूल्य नहीं है शब्द का। लेकिन हम इशारे को पकड़ लेते हैं। मैं आपको उंगली बताऊं, वह रहा चांद और आ प मेरी उंगली पकड़ लें और कहें, कहां है चांद? तो मैं कहूंगा, चूक गए आप। उंगली नहीं थी चांद। इशारा था। वहां था चांद, जहां उंगली है ही नहीं। वहां दूर उंगली क ो छोड़ दें, वहां देखें। आप कहेंगे, पहले मैं इसकी जांच-परख करूं इस उंगली की, जि ससे आप कहते हैं, वह रहा चांद।
हम सब यही कर रहे हैं। शब्दों की व्याख्या में खो गए हैं। सारा विवाद दुनिया में शब् दों का है, सत्यों का कोई विवाद नहीं है। बुद्ध और क्राइस्ट और कृष्ण के बीच कोई विवाद नहीं है। लेकिन शब्द बड़े महंगे पड़ गए हैं। सबके शब्द अलग हैं।
बुद्ध कुछ और कह रहे हैं, कृष्ण कुछ और कह रहे हैं, क्राइस्ट कुछ और कह रहे हैं, और सबके पीछे पंडित इकट्ठे हैं, जिनका कोई अनुभव नहीं है। शब्द इकट्ठे कर रहे हैं। बुद्ध ने जो कहा, उन्होंने पकड़ लिया। बुद्ध ने कहा निर्वाण, उन्होंने फौरन पकड़ लिय ा। बुद्ध ने कहा था निर्वाण, किसी अनुभव से! कोई अनुभूति हुई है। कोई अनुभूति हु ई, जिसके लिए निर्वाण शब्द उन्हें ठीक लगा कि शायद काम कर जाए। पंडित ने फौ रन निर्वाण पकड़ लिया। वह गया उसने शब्द-कोश खोजा कि निर्वाण का क्या अर्थ है ?
शब्द-कोश में लिखा है, निर्वाण का अर्थ है, दिये का बुझ जाना। तो उसने कहा कि ि बलकुल ठीक है। बुद्ध कह रहे हैं कि दिये का बुझ जाना ही पा लेना है।
बड़ी मुश्किल हो गई, एब्सर्ड हो गई बात। दिये के बुझ जाने से क्या मतलब होगा बु द्ध का? बुद्ध का कुछ मतलब ऐसा होगा, जो दिये को बुझ जाने से, जैसा दिये को ल गे, अगर दिया जान सके तो, ऐसा ही आदमी को भीतर जाकर लगे कि मैं तो मिट गया, मैं तो गया। मैं तो नहीं हूं अब, अब कुछ और हो गया।
एक दिया बुझ जाए और जान ले कि मैं सूरज हो गया। अब दिया नहीं हूं। ऐसा कुछ लगा होगा भीतर। उन्होंने कहा, निर्वाण। अब पंडित बैठा है, उसने खोज लिया शब्द, निर्वाण का क्या अर्थ है?
निर्वाण का अर्थ है—दिये का बुझ जाना। तो उसने कहा, इसका मतलब साफ हो गया। इसका मतलब यह है कि दिये की तरह बुझ जाओ। दिये का बुझ जाना ही, पा लेना

सब कुछ है। अब वह इसी व्याख्या पर उलझा हुआ है। इसी पर उलझता रहेगा, खो जता रहेगा, पूछेगा, दिये का क्या अर्थ, बुझ जाने का क्या अर्थ? और डब्बे के भीतर डब्बे निकलते चले जाएंगे और उस यात्रा का कोई अंत नहीं।

शब्दों में जो खोता है, वह खो ही जाता है। शब्दों से वापस लौटें और वहां आएं, जह ां जिंदगी खड़ी है, एक्जिस्टेंशियल, जहां चीजें हैं, जहां अनुभव हैं। प्रेम पर हाथ रखें, प्रेम शब्द को छोड़ दें। धर्म पर हाथ रखें, धर्म शब्द हो छोड़ दें, परमात्मा पर हाथ र खें, परमात्मा शब्द को जाने दें। क्या मतलब है इसका?

लेकिन आमतौर से हमारी पूरी शिक्षा-दीक्षा शब्दों की होने से बहुत कठिनाई है। तो अस्तित्व, जहां चीजें हैं, अपनी पूर्णता में खड़ी हैं, वहां हम नहीं देख पाते। शब्द सदा बीच में खड़ा हो जाता है। सदा बीच में खड़ा है। सदा पर्दा बन जाता है। और जितने ज्यादा शब्द जिस आदमी के पास इकट्ठे हो जाते हैं, उसका देखना, दर्पण उतना ही फीका और कमजोर हो जाता है। उसे फिर कुछ नहीं दिखाई पड़ता शब्द ही सत्य हो जाता है।

एक आदमी आया पास में। उसको आप नहीं देखते कि वह कौन है। बस एक शब्द बी च में आ जाएगा। भंगी है, चमार है, बस एक शब्द बीच में खड़ा हो गया। अब वह शब्द ही सब काम करेगा, उस आदमी से आपको कभी कोई संबंध न होगा, कभी भी संबंध न होगा। वह आदमी दूर हो गया, वह असली आदमी जो था। वह गया। अब बीच में एक शब्द खड़ा है, आप उसी से व्यवहार करोगे। उसी शब्द को बीच में लेकर सब काम करेगा। एक आड़ खड़ी हो गई है।

एक शब्द, हजार शब्द की आड़ खड़ी हुई है। सब चीजों के संबंध में। जहां भी खड़े हैं , सब दोहरा रहे हैं। आपने कभी फूल का सौंदर्य देखा है? डर है कि न देखा हो। ब चपन से सुना है कि फूल सुंदर होते हैं। शब्द पकड़ गए हैं। जब भी फूल दिखाई पड़ते हैं, आप दोहरा देते हैं कि बड़े सुंदर हैं।

लेकिन आपने सौंदर्य को अनुभव किया है? वह आपके प्राणों में घुसा है? आप कभी फूल के पास खड़े होकर सब भूल गए हैं? कभी फूल के पास खड़े होकर आप नाचे हैं ? कभी फूल के पास खड़े होकर आंसू बहे हैं? कभी फूल को छाती से लगा लिया है ?

नहीं, फूल के पास से निकले हैं और कहा है, देखो कितना सुंदर फूल है और आगे ब. ढ गए हैं। कहीं ऐसा तो नहीं है कि बचपन से सुने गए शब्द—कि फूल सुंदर होते हैं, दोहरा दिए गए हों? अक्सर यही है। अक्सर यही। सौ में निन्यानवे मौके पर यही हो रहा है। इसलिए जो सिखा दिया जाता है, वही!

अगर एक अफ्रीकी आदिम औरत को सामने खड़ा कर दिया जाए, बाल घुटे हुए हैं, ि सर घुट्टम-घुट्ट है, संन्यासी की तरह। सब चेहरे पर गोदा गया है, बड़े-बड़े दाग बनाए गए हैं, ओंठ खींच-खींच कर लंबे किए गए हैं, और आपके सामने खड़ा कर दिया ज ाए, तो ऐसा लगेगा कि कोई—कहां भाग जाएं, सौंदर्य का ख्याल बिलकुल नहीं आएगा कि यह स्त्री बड़ी सुंदर है। लेकिन यह स्त्री अपने कबीले में बड़ी सुंदर है। बच्चों ने

बचपन से सुना है कि यह रहा सौंदर्य। इस स्त्री को बड़े दीवाने मिल जाएंगे वहां, इस के कबीले में। और हो सकता है, आपकी सुंदरतम स्त्री को प्रेम करने वाला खोजना मुश्किल ही जाए उस कबीले में।

हम शब्दों से जी रहे हैं, हम वह नहीं देखते जो सामने है। हमारी अपनी धारणा है, वही हम देखे चले जाते हैं। वही देखे चले जाते हैं। वही धारणा मजबूत हो जाती है। हम सबको ख्याल है कि गोरा आदमी सुंदर होता है, इसलिए काले आदमी के सौंदर्य को देखना मुश्किल हो गया है। काले आदमी का अपना सौंदर्य है। जब तक यह धारण ा बनी है कि गोरा आदमी सुंदर होता है, तब तक गोरी चमड़ी पर असुंदर से असुंदर चेहरा भी चल जाता है, बस गोरी चमड़ी चाहिए। और सुंदर से सुंदर काला आदमी तरसते दूर खड़ा रह जाता है, उसका पता भी नहीं चलता। सिर्फ हमारी धारणाएं क ाम करती चली जाती हैं।

हम शब्दों में जीते हैं या तथ्यों को देखते हैं कि क्या है सुंदर? आपको ख्याल है, आ ज से पचास साल पहले किसी आदमी ने नागफनी और कैक्टस को घर में नहीं लगाया था। पचास साल पहले अगर कोई आदमी नागफनी घर में ले आता तो कहते, गंवार हो, दिमाग खराब हो गया है? यह नागफनी यहां किसलिए ले आए हो? घर में लग ाने की चीज है यह? ये कांटे बेहूदे हैं, कुरूप हैं।

पचास साल पहले की धारणा यह थी कि कांटा सदा कुरूप होता है, कांटा कभी सुंदर नहीं होता। सिर्फ फूल ही सुंदर होते हैं। कांटे कैसे सुंदर हो सकते हैं? फिर धारणा बदल गई। अब जितना सुशिक्षित आदमी है, कल्चर्ड जिसको हम कहें, वह नागफनी को घर में अपने बैठकखाने में लगाए बैठा है, कैक्टस को। यह बुद्धू बन जाता पचास साल पहले। अभी यह बड़ा ज्ञानी बना है। पचास साल बाद फिर बुद्धू बन सकता है। धारणा बदलने का सवाल है।

सुना था कभी, नागफनी सुंदर होती है? कभी नहीं सुना था। अगर किसी स्त्री से कह देते कि तुम नागफनी की तरह सुंदर हो, तो झगड़ा हो जाता। वह स्त्री कभी लौटक र न देखती। अब आप कह सकते हो। अभी हिंदुस्तान मग कहना जरा मुश्किल है। फ्रां स में कह सकते हो। स्त्री बड़ी खुश हो जाएगी, नागफनी की तरह सुंदर। नागफनी सुं दर हो गई है? लेकिन मुझे शक है कि नागफनी में सौंदर्य दिखाई पड़ रहा है। सिर्फ शब्द हमने पकड़ लिए हैं, सिर्फ शब्द पकड़ लिए हैं। शब्दों से जी रहे हैं लोग। जहां उ न्हें कुछ नहीं दिखाई पड़ता है, शब्द भर बीच में आ जाते हैं।

नहीं, शब्दों से बचना है, अगर अस्तित्व को जानना हो और अनुभव में उतरना हो, तो शब्दों को जाने दें अपनी राह पर। वह पंडितों का रास्ता है। ज्ञानियों का नहीं। पंि डतों को जाने दें अपनी यात्रा पर। शब्द से नहीं कुछ होगा। धर्म का क्या अर्थ है? दो अर्थ हैं--एक तो शब्द का अर्थ है, वह भाषा-शास्त्री से पूछना चाहिए। और एक धर्म की अनुभूति है। वह अनुभूति अकेले होने का अनुभव है। एकांत का अनुभव है। पूर्णरू प से सबसे मुक्त हो जाने का अनुभव है। पूर्णरूप से सबसे मुक्त हो जाने का अनुभव

है। सब संबंध का गिर जाना, सब अज्ञान का, सब अंधेरे का। पूर्ण प्रकाश में, स्वयं के भीतर पूरी तरह जाग जाने के अनुभव का नाम धर्म है।

एक-दो छोटे प्रश्न और—एक मित्र ने पूछा है कि आपने कहा कि भीतर एब्सलूट डार्क नेस, पूर्ण निरपेक्ष अंधकार का अनुभव करना पड़ेगा, तभी पूर्ण निरपेक्ष लाइट का अनु भव, प्रकाश का अनुभव हो सकेगा। उन्होंने पूछा है कि जीवन में तो सभी सापेक्ष है, रिलेटिव है। यहां तो कुछ भी पूर्ण नहीं है। तो यह पूर्ण अनुभव कैसे हो सकेगा?

उन्होंने ठीक ही पूछा है। जीवन में सभी सापेक्ष है। जिस जीवन को हम जानते हैं बाह र, वहां सभी सापेक्ष है। वहां कोई भी पूर्ण नहीं है। और वहां हर चीज में विरोधी मौ जूद है। हम भीतर के लिए भी जो शब्द उपयोग करते हैं, वह भी चूंकि बाहर से ही लिए गए होते हैं, और कोई उपाय नहीं है, इसलिए उन शब्दों में भी रिलेटिविटी, सा पेक्षता पहुंच जाती है। लेकिन जिस अनुभव की मैं बात कर रहा हूं, वह पूर्ण का ही अनुभव है, सापेक्ष अनुभव नहीं है।

सापेक्ष अनुभव इसलिए नहीं है कि वहां न कोई अनुभव करने वाला बचता है, और न अनुभूत होने वाली वस्तु बचती है। बस सिर्फ अनुभव ही रह जाता है, जस्ट एक्सपीरियंस इज। अगर प्रेम का कभी कोई गहरा क्षण जाना है, तो न वहां प्रेमिका रह जात ी है, न प्रेमी रह जाती है, प्रेम ही रह जाता है। प्रेम का ही आंदोलन, मूवमेंट रह जा ता है। प्रेम ही आता है और जाता है, प्रेम ही होता है। प्रेम के अतिरिक्त न प्रेमी हो ता है, न प्रेमिका होती है। और जैसे ही प्रेमी और प्रेमिका हुए कि प्रेम गया, विदा हो गया। और जब तक प्रेमी और प्रेमिका मौजूद होते हैं, तब तक प्रेम का अनुभव हो भी नहीं पाता।

लेकिन जब प्रेमी और प्रेमिका मिट जाते हैं, तो जिस प्रेम का अनुभव होता है, वह स ापेक्ष नहीं है। वह आइंस्टीन की दुनिया के बाहर है, वह रिलेटिविटी के बाहर है। वहां जो अनुभव हो रहा है, वह पूर्ण है। वहां घृणा मौजूद भी नहीं है। वहां घृणा को कोई पता नहीं है, वहां पता करने वाले का ही कोई पता नहीं है।

वहां सिर्फ एक, और एक भी हम कह रहे हैं, शब्द उपयोग करते हैं इसलिए, वहां न एक है, न दो है। वहां जो शेष रह गया, इसीलिए जो जानते हैं, वह कहेंगे, अद्वैत, नानडुअल, दो नहीं है। वह यह भी नहीं कहेंगे, एक है क्योंकि एक के होने से दो होने का ख्याल पैदा होता ही है कि एक अकेला कैसे होगा? एक के बोध में दूसरा मौजूद होना ही चाहिए। तो वह कहते हैं, अद्वैत, नहीं, दो नहीं है। बस इतना ही कह सक ते हैं, वहां दो नहीं है। फिर जो वहां शेष रह गया है वह पूर्ण है।

प्रेम का अनुभव भी पूर्ण अनुभव है, अगर हो जाए। और जिसे पूर्ण प्रेम का अनुभव हो जाए, वह तत्क्षण परमात्मा में सरक जाता है। क्योंकि पूर्ण का कोई भी अनुभव पर मात्मा में ले जाता है। कहीं से भी पूर्ण का अनुभव हो जाए, आदमी परमात्मा में प्रवि ष्ट हो जाएगा।

कोई चित्रकार चित्र बना रहा है। चित्र भी है, चित्रकार भी है, बनाना भी है। तब त क सापेक्ष दुनिया है। फिर चित्रकार भी मिट गया, चित्र भी नहीं रहा, बनाना भी मिट

गया, अब कुछ हो रहा है। जस्ट हैपनिंग। कोई नहीं है वहां। बनाने वाला अलग नहीं है। तीनों एक हो गए हैं। एक ही घटना रह गई वहां। बस, वहीं पूर्ण का अनुभव शुरू हो जाएगा। सापेक्ष, रिलेटिव के बाहर उतर गए। हम वहीं से परमात्मा आ जाएगा।

एक वीणाकार वीणा बजा रहा है। वीणा मिट जाए, बजाने वाला मिट जाए, संगीत मिट जाए, एक हो जाएं तीनों। उसको हम कुछ भी नाम दे दें, संगीत कहें या चाहे जो कहें, एक रह जाए, तीनों मिट जाएं। वीणा अलग न हो, वीणादायक अलग न हो। पता भी न हो कि वीणा है। वीणादायक को यह भी पता न हो कि मैं हूं--संगीत भर रह जाए, तीनों एक हो जाएं, रिलेटिविटी के बाहर हो गए, सापेक्ष के बाहर चले गए। वह जिस दुनिया को हम जानते हैं, उसके बाहर सरक गए, खिसक गए, अलग हो गए, कहीं और चले गए।

तो संगीत भी पहुंचा सकता है, प्रेम भी पहुंचा सकता है, चित्र भी पहुंचा सका है। कुछ भी पहुंचा सकता है, जहां तीन मिट जाते हैं और एक ही रह जाता हो, वहीं हम सापेक्षता के बाहर हो जाते हैं।

लेकिन आमतौर से हम सापेक्ष में ही जीते हैं, कभी बाहर नहीं होते। यही तो हमारा दुख है। इसलिए प्रेम करते हैं, परंतु प्रेम का आनंद कभी उपलब्ध नहीं होता। वह अधूरा ही रह जाता है, अटका ही रह जाता है। चित्र बनाते हैं, लेकिन चित्रकार नहीं हो पाते। वीणा बजाते हैं, लेकिन कभी वीणा नहीं बजा पाते, क्योंकि वह मिट ही नहीं पाता, मिट ही नहीं पाते। अहंकार खड़ा रह जाता है।

ध्यान रहे, इसे एक सूत्र में ऐसा कहा जा सकता है, जहां तक अहंकार है वहां तक सापेक्ष जगत है। जहां से अहंकार गया, वहां से पूर्ण की शुरूआत हो गई, वहां से पूर्ण की दुनिया आ गई।

लेकिन यह मेरे कहने से कुछ समझ में आने वाली बात नहीं है। उतरना ही पड़ेगा। जिसे हम जानते हैं, वह सब सापेक्ष है, उतरना ही पड़े। हम तो जो शब्दों का उपयोग कर रहे हैं--अंधेरा, प्रकाश यह शब्द भी सापेक्ष है। इसलिए ये शब्द भी पूरी खबर नहीं लाते। क्योंकि कोई अंधेरा, बिना प्रकाश के नहीं समझा जा सकता। और कोई प्रकाश बिना अंधेरे के नहीं समझा जा सकता। दोनों मौजूद रहेंगे ही। अगर हम कहेंगे, यह प्रकाश है, तो किसी-न-किसी तल पर अंधेरा खड़ा ही होगा, घेरा बांध कर। नहीं तो अंधेरे के बिना प्रकाश कैसे होगा?

हम जिस दुनिया को जानते हैं, वहां अंधेरे और प्रकाश दो की जरूरत है। वह दुनिया डुआलिटी की, द्वैत की दुनिया है। इसी शब्द, इसी दुनिया के शब्द का उपयोग करना पड़ता है। कोई और उपाय नहीं है, कोई और शब्द नहीं है। इन्हीं का उपयोग करके भीतर का इशारा करना पड़ता है। ये सब इशारे, किसी-न-किसी तल पर गलत हो जाते हैं।

जिस दिन हम वहां पहुंचेंगे, जहां पूर्ण है, उसको न हम प्रकाश कह सकते हैं, न अंधेरा कह सकते हैं, य दोनों कह सकते हैं, या दोनों इंकार कर सकते हैं, कुछ भी कर स

कते हैं, सब चलेगा। किसी ने कहा है, वह महा अंधकार है, वह भी ठीक कहता है। किसी ने कहा है, वह परम प्रकाश है, वह भी ठीक कहता है। किसी ने कहा है, वह दोनों है—अंधेरा भी, प्रकाश भी एक ही साथ। वह भी ठीक कहता है। और किसी ने कहा है, वहां दोनों नहीं है—न अंधेरा, न प्रकाश, तो वह भी ठीक कहता है।

ठीक कहने का मतलब यह है कि यह सब कामचलाऊ बातें हैं। वहां जो है, उसे कह ने का कोई भी उपाय नहीं है। कोई इशारा वहां तक नहीं पहुंच पाता। सब इशारे, ज स्ट एप्रोक्सिमट, बस पास-पास तक खबर करते हैं। थोड़ी दूर जाकर सब इशारे खो ज ाते हैं, और वहां कोई शब्द साथ नहीं जाता है।

एक अंतिम बात—एक मित्र ने पूछा है कि हमने सुना है कि जो सत्य को जान लेते हैं , वह चुप हो जाते हैं। फिर आपको सत्य मिला या नहीं, क्योंकि आप तो बहुत बोल ते हैं?

उस मित्र से पूछना चाहूंगा, उन्होंने किससे सुना कि जो सत्य पा लेते हैं, वे चुप हो ज ाते हैं? अगर उस आदमी ने जान लिया होता, तो वह चुप हो गया होता। और अगर उस आदमी ने नहीं जाना होगा, तो वह कहने का हकदार नहीं रह गया। किसने क हा है कि जो सत्य को बोल लेते हैं, वे चुप हो जाते हैं। इसे बोलने को भी तो बोलन ा ही पड़ता है। इसे बोलने को भी, इसे कहने को भी बोलना ही पड़ता है।

उपनिषद कहते हैं, नहीं कहा जा सकता उसे, फिर भी कहने की कोशिश करते हैं। ल ाओत्से कहता है, कहना मुश्किल है, कहना असंभव है। फिर भी कहता है। बुद्ध कहते हैं, अनिवर्चनीय, नहीं वचन में आएगा, फिर जिंदगी भर बोलते रहते हैं। महावीर क हते हैं, कोई शब्द वहां नहीं ले जाता, फिर जीवन-भर शब्द ही शब्द हैं। और जीसस कहते हैं, नहीं कह सकूंगा, शब्द नहीं कह सकते। लेकिन फिर भी, शब्द का उपयोग करते हैं। अगर यह बात सच हो कि जो सत्य को पा लेता है, वह नहीं बोलता, तो इस बात का भी पता चलना मुश्किल था कि कौन बोलता इसको।

निश्चित ही, जो सत्य को पा लेते हैं, वह और ढंग से बोलते हैं। बोलते जरूर हैं, लेकिन यह भी कहते चले जाते हैं साथ में, कि बोलने को ही सत्य मत समझ लेना। बो लते ही हैं और कहते हैं साथ में, कि बोलने को ही मत पकड़ लेना। इशारा भी करते हैं, वह चांद है और साथ कहते हैं, अंगुली को चांद मत समझ लेना। बोलते भी हैं और बोलने में विश्वास भी नहीं करते। शब्द का उपयोग भी करते हैं, और शब्द के दुश्मन भी हैं। शब्द को इशारा भी मानते हैं, शब्द को सत्य भी नहीं मानते हैं। यह द ोनों ही बात एक साथ हैं।

सत्य जिसे मिल जाता है, वह यह जान लेता है कि सत्य को बोला नहीं जा सकता। सत्य जिसे मिल जाता हो, वह जान लेता है कि बोलना असंभव है। लेकिन अपनी इस पीड़ा को कि बोला नहीं जा सकता है, ऐसा कुछ पा लिया है, कैसे कहें? इसे कैसे खबर पहुंचाएं? चुप हो जाएं?

चुप होकर भी लोगों ने देखा है। चुप होकर भी देखा है। चुप होकर भी कहने की कोशिश की है। लेकिन चुप होने की बात केवल वे ही समझ सकते हैं, जो खुद भी चुप

होने में समर्थ हों। अगर मेरे पास जाएं और बिलकुल चुप होकर बैठ जाएं, तो मैं भी चुप होकर ही कहूंगा। लेकिन आप शब्दों में पूछें और मैं चुप होकर कहूं, वह आप तक नहीं पहुंचेगा।

चुप में ही कहा जा सकता है। साइलेंस भी लैंग्वेज बनती है, मौन भी भाषा बन जाती है। लेकिन फिर समझने वाला रत्ती-भर भी तो चाहिए। अगर कोई मौन होने को तैयार हो, तो उससे मौन में भी बात हो सकती है, फिर शब्दों की कोई जरूरत नहीं है।

लेकिन दुनिया इतनी शब्दों से भरी है कि चिल्लाने से नहीं सुनाई पड़ता, मौन से कैसे सुनाई पड़ेगा? डंका पीटे बाजार में, तो सुनाई नहीं पड़ता, मौन कैसे सुनाई पड़ेगा? मौन से ही कहना चाहता हूं, लेकिन तब मौन में ही सुनने आना पड़े। मौन से ही कहा जा सकता है, लेकिन तब मौन में ही सुनना पड़े।

किसी फकीर के पास कोई गया और कहा कि बिना शब्दों में बताए, बताइए? बिना शब्दों में बताए, बताइए, क्योंकि मैंने सुना है कि सत्य शब्दों में नहीं बताया जा सकता।

वह फकीर खूब हंसने लगा। उसने कहा—बताएंगे। तुम बिना शब्दों में पूछो! क्योंकि जो शब्द शब्दों में नहीं कहा जा सकता, वह शब्द शब्दों में पूछा भी नहीं जा सकता। पूछने और कहने के तल पर शब्द होगा। लेकिन इतना ही फर्क पड़ेगा कि जो सत्य की जिसे कोई झलक नहीं है, वह कहेगा, शब्द ही सब कुछ हैं, शास्त्र ही सब कुछ हैं। कह दिया, इसी को पकड़ लेना, यही सत्य है।

और जिसे सत्य की थोड़ी भी झलक मिल जाएगी, वह कहेगा, जो कह दिया है इसे छोड़ देना, पकड़ मत लेना। इससे कुछ भी नहीं होगा। सिर्फ इशारा किया है, इंगित किया है। इंगित सत्य नहीं है। इंगितों को छोड़ देना। उस तरफ बढ़ जाना जहां सत्य है।

इतना तो हम कह सकते हैं न कि मौन से सत्य मिलेगा। कहना पड़ रहा है यह, मौन से सत्य मिलेगा। लेकिन मौन का इशारा तो कर सकते हैं।

लेकिन कोई, हो सकता है इस शब्द को पकड़ ले, कि मौन से सत्य मिलेगा। बैठ जाए, आंख बंद करके और कहने लगे, मौन से सत्य मिलेगा, मौन से सत्य मिलेगा, मौन से सत्य मिलेगा। उस बेचारे को कभी नहीं मिलेगा। क्योंकि वह शब्दों को दोहरा रहा है। कहा था, मौन से सत्य मिलेगा, तो ये शब्द भी छोड़ देने थे, सब शब्द छोड़ देने थे, हो जाना था मौन।

जैसे ही कोई मौन होता है, वह सब प्रगट हो जाता है, जो है। हम इतने भरे हैं शब्दों से कि सत्य हमारे भीतर आ नहीं सकता। स्पेस नहीं है, भीतर जगह नहीं है। एक छोटी-सी कहानी और अपनी बात पूरी करूंगा।

एक यूनिवर्सिटी का प्रोफेसर एक फकीर के पास मिलने गया। जापान के एक छोटे-से गांव में घटी घटना है। क्योटो में एक फकीर है, उसके पास एक यूनिवर्सिटी का प्रोफेसर आया है। यूनिवर्सिटी का प्रोफेसर शब्द ही शब्द से भरा हुआ है। प्रोफेसर के पास

और क्या हो सकता है? शब्द ही शब्द है। वह आया। उसने आते ही पसीना भी नहीं पोंछा—आते से ही उसने कहा—मैं यह जानने आया हूं, सत्य क्या है? बताइएगा?

उस फकीर ने कहा—थोड़ा विश्राम तो कर लें। इतनी जल्दी में सत्य कभी जाने गए हैं ? ऐसे भागते हुए? पसीना तो पोंछ लें, दो क्षण श्वांस तो ले लें। श्वांस जोर से चल ने लगी पहाड़ चढ़ने में। बैठें, थोड़ा सुस्ता लें, थोड़े आराम में हो जाएं। इतने श्रम में, इतने भागते-भागते सत्य नहीं मिलता।

प्रोफेसर बैठ गया। बाहर से भागना बंद हो गया, भीतर तो भागना जारी है। वह पूछ रहा है, कितना समय खराब हुआ जा रहा है। जल्दी से बता दे तो अच्छा है यह आद मी। मुझे दूसरी जगह जाना है। एक और फकीर से पूछना है, वह नीचे पहाड़ के उस तरफ रहता है। यह सब भीतर भागना चल रहा है।

वह फकीर कह रहा है—बाहर से तो रुक गए, थोड़ा भीतर भी शांत हो जाओ तो अच छा हो। तो थोड़ी बात हो सके। फिर मैं थोड़ी चाय बना लाऊं, तुम थक गए हो, चा य पी लो। और यह भी हो सकता है, चाय पीने में उत्तर भी मिल जाए।

उस प्रोफेसर ने सोचा, किस पागल के पास आ गए? मैं इतना कीमती प्रश्न पूछ रहा हूं, वह कह रहा है, चाय पीने में उत्तर मिल जाएगा। लेकिन अब आ ही गया हूं तो कम-से-कम चाय तो पी ही लूं। यह सोचकर वह रुक गया।

वह फकीर चाय बना लाया है, प्रोफेसर के हाथ में उसने एक प्याली पकड़ा दी है। के तली से चाय ढाल रहा है। प्रोफेसर को सिर्फ चाय ही दिखाई पड़ रही है। वह फकीर कुछ और भी ढालना चाहता है। वह प्रोफेसर को दिखाई नहीं पड़ रहा है। चाय से प याली भर गई पूरी। फकीर चाय को ढाले ही चला गया है। नीचे की प्याली भर गई है। फकीर चाय को ढाले ही चला गया, फिर नीचे की बसी पूरी भर गई, फिर बूंद न ीचे टपकने को हो गई।

प्रोफेसर चिल्लाया कि रुकिये। यह आप क्या कर रहे हैं? अब जगह बिलकुल भी नहीं है।

फकीर ने कहा—समझे कुछ?

प्रोफेसर ने कहा—क्या खाक समझा! इतना ही समझा है कि चाय भर गई है पूरी, औ र प्याली में जगह नहीं है।

फकीर ने कहा—भीतर की प्याली में जगह है! वहां भी शब्द भर गए हैं पूरे। थोड़ा खा ली करो, जगह बनाओ। भीतर आने की जगह तो चाहिए। भगवान भी आएगा, तो फर्नीचर थोड़ा तो हटाओ। फर्नीचर ही फर्नीचर है घर में। भीतर जगह भी तो होनी चाहिए। जाने दो भीतर, जगह तो बनाओ। प्याली भर गई, तुम्हें दिखाई पड़ गई, लेकिन खोपड़ी भर गई है, यह अब तक दिखाई न पड़ा।

हम सबकी खोपड़ी भरी हुई है शब्दों से। जरा भी जगह नहीं है। है जगह भीतर? इंच भर भी? अगर रही होती तो हमने पहले ही और एक शब्द भर लिया होता। हमारी हालत तो वैसे ही है कि एक ब्राह्मण को निमंत्रण किया था, और वह खूब लड्डू खा गया है। फिर वह इतना बीमार पड़ गया कि घर ले जाना मुश्किल है।

वैद्य को बुलाया। उसने कहा—गोली खा लो।
उसने कहा—पागल, अगर गोली की जगह होती, तो हम एक लड्डू और पहले ही नह
ीं खा लेते।
वह जगह तो बची कहां है? कुछ भी जगह नहीं है भीतर पहले जगह बनानी है, जग
ह बनाने का मतलब ही मौन है। साइलेंस का मतलब ही है स्पेस, साइलेंस का मतलब
ही है जगह, खाली जगह। उस खाली जगह में उतरेगा वह—उतरेगा कहना गलत है,
है ही नहीं। खाली जगह में दिखाई पड़ जाता है।
और प्रश्न रह गए हैं, कल उन पर भी बात होगी। मेरी बातों को इतने प्रेम और शांि
त से सुना उससे अनुग्रहीत हूं, और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम कर
ता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

जीवन का सम्मान
मेरे प्रिय आत्मन,
बाहर एक जगह है पदार्थ का, उससे हम परिचित हैं। भीतर एक जगत है परमात्मा
का, उससे हम अपरिचित हैं। पदार्थ दिखाई पड़ता है, परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता है।
पदार्थ छुआ जा सकता है, परमात्मा के स्पर्श का कोई उपाय नहीं है। शायद इसीलि
ए पदार्थ सब कुछ हो गया है और परमात्मा कुछ भी नहीं।
कैसे इस भीतर के परमात्मा से संबंध हो सके? कैसे हम बाहर पकड़ गए हैं और रुक
गए हैं? किसने हमें पदार्थ के पास बांध रखा है? पदार्थ ने? पदार्थ तो किसी को कै
से बांध सकेगा। हम ही बंध गए होंगे। बंधने की कड़ियां कुछ और होंगी, जो हमने ही
निर्मित की होंगी।
एक बड़े मकान के सामने मैं खड़ा था। आग लग गई है। मकान का मालिक रो रहा
है, चिल्ला रहा है। उसका मकान जल गया है। पास से दौड़कर किसी ने उस आदमी
को कहा, मत रोओ, व्यर्थ परेशान हो रहे हो। कल तुम्हारे बेटे ने मकान बेच दिया है
, रुपये मिल गए हैं।
मकान अभी जल रहा है। वह आदमी हंसने लगा। मकान थोड़ी देर पहले भी जल रहा
था, यही मकान! यही आदमी रोता था। पता चला है, रुपये मिल गए हैं, मकान बे
च दिया गया है। यही आदमी है, वही मकान है। यह आदमी हंस रहा है, मकान अब
भी जल रहा है।
क्या फर्क पड़ गया है? मकान मेरा नहीं रहा। मकान बांधे था बाहर, तो अब भी यह
आदमी रोता-चिल्लाता। मकान अब भी जल रहा था। नहीं, मकान नहीं बांधे था। म
कान के आसपास इस आदमी ने मैं का, मेरे का एक जाल फैलायाथा। और वह बांधे
था।
वह मकान बिक गया है। वह मेरा नहीं रहा है। अब जले, नहीं जले, कोई फर्क नहीं।
वह आदमी हंस रहा है।

लेकिन तभी किसी और आदमी ने कहा कि मकान बेच दिया, यह तो ठीक, लेकिन रु पये अभी नहीं मिले हैं। और खबर आई है कि अब जले हुए मकान को वह आदमी लीने को राजी नहीं है।

वह आदमी फिर रोने लगा। मकान वही है। वह आदमी फिर छाती पीट रहा है। मेरा मकान फिर हो गया है। फिर पीड़ा शुरू हो गई है। फिर दुख शुरू हो गया है। कौन बांधे है बाहर? पदार्थ?

पदार्थ किसी को बांधने में समर्थ नहीं है। बांधता है ममत्व, बांधता है मेरा होना। बांधता है मेरे, मैं का विस्तार। मेरा मैं, जहां-जहां फैल जाता है, वहीं-वहीं मैं बंध जाता हूं। मैं के फैलाव का नाम मेरा है। मैं के फैलाव का नाम ममत्व है।

वह हमारा जो इगो है, वह हमारा जो मैं है, जहां-जहां फैला लेता हूं, जितने दूर तक फैला लेता हूं—मेरा बेटा है, मेरी पत्नी है, मेरा मित्र है, मेरा धर्म है, मेरा देश है, मेरी जाति है, मेरा मकान है। वह जहां-जहां मैं पहुंच जाता हूं, वहीं-वहीं मैं बंध जात ा हूं।

बंधने का सूत्र क्या है? गुलामी का सूत्र क्या है? परतंत्रता का सूत्र आधार क्या है। प दार्थ? नहीं। बंधने का मूल आधार मैं हूं, मेरा मैं है, मेरे मैं का फैलाव है। और हम सबने मैं का फैलाव किया है। बल्कि हम उस आदमी को सफल कहते हैं, जो जितनी बड़ी सीमा तक अपने मैं को फैला ले। जो जितने दूर तक कह सके, मेरा, वह आद मी उतना सफल हो जाता है।

और जिसके पास अपने को छोड़कर, मेरा कहने जैसा कुछ भी न हो, हम कहेंगे, बहु त दीन-हीन है।

पम्पेई नगर में ज्वालामुखी फूटा। नगर आग से भर गया। लाखों आदमी रात को अपन ा सामान लेकर भागना शुरू कर दिए। एक दार्शनिक, एक फकीर भी उस गांव में था । वह भी चल पड़ा है।

रास्ते पर सारे भागते हुए लोग हैं। कोई अपने आभूषण—हीरे-जवाहरात, धन, कोई कु छ और, जो जिसके पास है, सब बांधकर बोझ से दबे हैं।

वह अकेला एक आदमी निर्बोझ, सुबह घूमने की छड़ी लेकर चल पड़ा है। रास्ते पर जो भी है, उससे पूछता है, क्या आप कुछ बचाकर नहीं लाए?

वह कहता है, जो भी मेरा था, वह मेरे पास है, उसे मैं बचा लाया हूं।

जो भी मिलता है, रास्ते पर देखता है, सिर पर बोझ नहीं, हाथ खाली है, वह पूछता है—क्या सब छूट गया, सब जल गया, कुछ बचा नहीं पाए?

वह कहता है—मेरा कुछ था ही नहीं। जल भी नहीं सकता था, छूट भी नहीं सकता थ ा और जो मैं हूं वह साथ है।

वह सारा गांव रोता हुआ जा रहा है। सब कुछ बचाकर ले आए हैं, लेकिन फिर भी कुछ पीछे छूट गया है। बड़े महलों में ज्यादा पीछे छूट गया है, छोटे झोपड़ों में भी पी छे छूट गया है। कम-से-कम झोपड़े तो पीछे छूट गए हैं। सब कुछ भी बचा लाए, फि र भी पीछे छूट गया है।

और जिनका मेरा भाव इतना विस्तीर्ण होता है, उन्हें, जो बच जाता है वह दिखाई न हीं पड़ता, जो छूट जाता है, वह दिखाई पड़ता है; क्योंकि जो बच गया है, उसके सा थ तो मेरा मैं अब भी जुड़ा है।

लोग उससे पूछते हैं—हंसते हो? कुछ ला भी नहीं पाए, फिर कैसे हंसते हो?

वह कहता है—कुछ खोने को भी नहीं था, बचाने का सवाल नहीं था। और हंसता हूं इसलिए—सिर्फ इसलिए हंस रहा हूं कि तुम सबको देखता हूं, इतना बचा लाए, फिर भी रो रहे हो। तुम्हें देखकर हंस रहा हूं।

हम सबके फैलाव हैं। हम सबके आंसू भी हैं। फैलाव की मात्रा में आंसू भी बढ़ जाते हैं। हम सबके फैलाव हैं, हम सबके पीड़ाएं भी हैं। हम सब का फैलाव है, हम सब के बंधन भी हैं।

कौन बांधे है बाहर? अगर इसे हम ठीक से न समझ लें, तो भीतर पहुंचना बहुत मुश्किल है। कौन बांधे है अंधेरे के बाहर, जो प्रकाश तक नहीं पहुंचने देता?

लोग कहेंगे, संसार बांधे है, वे लोग झूठ कहते हैं। संसार किसी को भी बांधे हुए नहीं है। हम नहीं होंगे, तो भी संसार होगा। हम नहीं थे, तो भी संसार था। संसार हमारे लिए नहीं है। संसार हमें बांधे हुए नहीं है। जो भी कहते हैं, संसार बांधे हैं, गलत कहते हैं। हम संसार से बंध जाते हैं, दूसरी बात है। संसार किसी को बांधता नहीं है। इसलिए जो कहते हैं संसार बांधे है, वह संसार को व्यर्थ ही गाली दिए चले जाते हैं। संसार का कोई संबंध हमें बांधने से नहीं है। अगर मैं एक खूंटी पर अपने कोट को टांग दूं और कहूं कि खूंटी मेरे कोट को टांगे हुए है, और खूंटी पर नाराज हो जाऊं, तो लोग मुझे पागल कहेंगे। वे कहेंगे, अपना कोट उतार लो, खूंटी ने कभी कहा नहीं कि टांगो। टांगा है, इसलिए खूंटी टांगे हुए है। निकाल दो तो खूंटी ने कभी किसी को कहा नहीं कि टांगो, और नहीं टांगा था, तो खूंटी बुलाने नहीं आई थी। निकाल लोगे, खूंटी एतराज नहीं करेगी।

खूंटी कुछ टांगती नहीं, हम कुछ टांगते हैं। खूंटी टंग जाने के लिए राजी हो जाती है। खूंटी इंतजार भी नहीं करती।

संसार किसी को बांधता नहीं, स्वतंत्र भी नहीं करता। हम चाहें तो बंध जाएं, चाहे तो स्वतंत्र हो जाएं। संसार को कुछ मतलब ही नहीं है, संसार की धारा को हमसे कोई संबंध भी नहीं है। उसकी यात्रा अपनी है, हम अलग हैं। चाहें तो बंध जाएं, चाहें तो अलग हो जाएं। बंध जाएं तो अपने से।

हम छूट जाते हैं, स्वयं से, भीतर से। और छूट जाएं बाहर से, पहुंच जाते हैं वहां, जहां हमारा असली होना है। भीतर की यात्रा में यह समझ लेना जरूरी है कि संसार किसी का बांधे नहीं है।

लेकिन आदमी बहुत बेईमान है, और आदमी बहुत धोखेबाज है। आदमी उन सब चीजों को भी दूसरों पर थोप देना चाहता है, जो उसने निर्मित किए हैं। बंधते हम हैं, संसार को गाली दिए चले जाते हैं। कोई कहता है पत्नी बांधे हुए है, कोई कहता है

बेटे बांधे हुए हैं, कोई कहता है धन बांधे हुए है। न पत्नी किसी को बांधती है, न पति किसी को बांधता है, न बेटा, न धन। कुछ भी नहीं बांधता।
बाहर बिलकुल असमर्थ है किसी को भी बांधने में। हम बंधते हैं, तो बंध जाते हैं। बंधना हमारी अपनी च्वाइस, अपना चुनाव है। हम गुलाम होना चाहते हैं, इसलिए गुलाम हो जाते हैं। हम बाहर रुकना चाहते हैं, इसलिए रुक जाते हैं।
एक आदमी नाटक देखता है, नाटक से भी बंध जाता है। देख रहा है, नाटक है। देख रहा है जो सीता चोरी गई है, वह असली सीता नहीं है। रामलीला चल रही है, और जो राम रो रहे हैं, और वृक्षों से पूछ रहे हैं, मेरी सीता कहां है? वह राम बिलकुल झूठे हैं। और थोड़ी देर बाद सीता और राम पर्दे के पीछे चाय पीते मिल जाएंगे। लेकिन देखने वाला रोने लगा है। सीता चोरी चली गई है, देखने वाला रोने लगा है। नाटक देखकर भी हम बंध जाते हैं, ख्याल भूल जाते हैं कि नाटक है।
टॉलस्टाय ने लिखा है कि मेरी मां नाटक देखने की बड़ी शौकीन थी। रोज ही किसी थियेटर में मौजूद होती थी, और थियेटर में पूरे समय रोती रहती थी। रूमाल आंसुओं से गीले हो जाते थे। टॉलस्टाय छोटा है, वह अपनी मां से पूछता है--तुम रोती क्यों हो, नाटक ही तो है।
बच्चे ऐसे सवाल पूछ लेते हैं, तो हम उन्हें कहते हैं, नासमझ हो, तुम्हें अभी कुछ अनुभव नहीं है। वह टॉलस्टाय पूछता है--रोती क्यों हो? नाटक ही तो है, कहानी ही तो है, और तो कुछ भी नहीं है।
हम भी नाटक से बंध जाते हैं, कहानी से। स्मरण ही रह जाता है कि जो देखते हैं कहानी है, तो फिर जिंदगी से बंध जाना तो बहुत आसान है। मंच पर पर्दे से बंध जाते हैं। फिर तो नाटक होते थे, अब नाटक भी नहीं है। अब खाली पर्दे पर दौड़ती हुई तस्वीरे हैं। तस्वीरें भी क्या हैं? सिर्फ धूप-छाया का खेल है, सिर्फ प्रकाश और अंधेरे का खेल है। उसमें भी रोते हैं, उसमें भी दुखी और पीड़ित हो जाते हैं।
अगर अंधेरा न हो सिनेमागृह में, तो लोगों को बड़ी परेशानी होगी। क्योंकि चारों तरफ लोग देखेंगे कि कौन रो रहा है। अभी भी रोते हैं, तो देख लेते हैं, पास-पड़ोस के लोग देखते तो नहीं? चुपचाप आंसू पोंछ लेते हैं।
पर्दे पर कुछ भी नहीं है, पर्दा बिलकुल खाली है। सच तो यह है, जितना खाली है, उतना ही अच्छा पर्दा है। एक-एक पर्दे के पचास-पचास हजार रुपये भी खर्च करने पड़ते हैं, खाली होने की ही कीमत है। पर्दा बिलकुल खाली है, एक रेखा भी उस पर नहीं है। बिलकुल कोरा है, एकदम कोरा है। जितना कोरा है, उतना कीमती है। उस पर सिर्फ धूप-छाया का खेल है और लोग रो रहे हैं। अगर हम सोचेंगे तो बड़ी हैरानी होगी।
हम कपड़ों से भी बंध जाते हैं। रात सपना देख रहे हैं, नींद खुल गई है, लेकिन छाती धड़कती चली जा रही है। अभी घबड़ाहट लगी है। वह सपने में जो देखा था, वह पीछा कर रहा है। सपनों से बंध जाते हैं, नाटक से बंध जाते हैं, तो जिंदगी जो इतनी सच है बाहर, उससे तो हम बंध ही जाएंगे। हमारी बंधने की कीमियां, केमिस्ट्री है कु

छ। हमारे बंधने की कोई भीतरी तरकीब है जो कहीं भी बांध देती है। हम बंधने को राजी हैं, कुछ भी मिल जाए, उसी से बंध जाते हैं।
एक आदमी घर छोड़कर चला जाता है। बंधने की तरकीब साथ लिए चला जाता है। फिर आश्रम से बंध जाता है। घर छोड़ा था, फिर आश्रम बंध जाता है। बच्चे छोड़े थे, बेटे-बेटियां छोड़े थे, फिर शिष्य-शिष्याएं इकट्ठे हो जाते हैं। वह उनसे बंध जाता है।
एक बहुत बड़े जैन मुनि की मैं जीवन कथा पढ़ रहा था। लिखा है कि एक शिष्य से उन्हें बड़ा प्रेम था। निश्चित ही मुनि प्रेम करे, तो आध्यात्मिक ही करता है, साधारण लोग प्रेम करें, तो शारीरिक होता है। आध्यात्मिक प्रेम था। कभी उस शिष्य को साथ नहीं छोड़ने देते थे। निरंतर उसी के साथ प्यार करते थे।
फिर दूसरे शिष्यों को ईर्ष्या हो गई। संन्यासियों को भी ईर्ष्या होती है। ईर्ष्या तो साथ चली जाती है, संन्यास से क्या संबंध है? दूसरे शिष्यों ने कहा, यह नहीं चलेगा। इसको कभी तो छोड़िए। इसको किसी दूसरे रास्ते पर, दूसरे मार्गों पर, दूसरे गांवों में भ्रमण करने दीजिए।
गुरू बमुश्किल राजी हुए। एक गांव में खुद चौमासा किया, दूसरे गांव में शिष्यों ने चौमासा किया। बीच में नदी है, वर्षा के दिन हैं, लेकिन दोनों, नदी के किनारे दोनों तरफ, सुबह आकर खड़े होकर एक-दूसरे को देख लेते हैं। बड़ी तृप्ति मिलती है। उनका प्रेम आध्यात्मिक है। और अगर आप अपनी पत्नी को सुबह देखे बिना तृप्त न हों, तो यह शारीरिक है।
नाम बदल लेते हैं। आदमी भीतर अगर वही रह गया, तो नाम बदल लेने से कुछ भी नहीं हो जाता है। मैं एक और महात्मा का जीवन पढ़ता था। तीस साल पहले उन्होंने घर छोड़ दिया। फिर उनकी पत्नी मरी, तीस साल बाद! वे बनारस में थे। पत्नी के मरने की खबर पहुंची, तो उन संन्यासी ने कहा, चलो झंझट मिटी। उनकी जीवन कथा में उनके शिष्यों ने लिखा है, इतना महान आदमी कि पत्नी मरी, तो उसने राग का एक शब्द न कहा, उसने कहा, चलो, झंझट मिटी।
मैंने पढ़ा तो मैं बहुत हैरान हुआ। मैंने उस किताब लिखने वाले लेखक को एक पत्र लिखा और मैंने पूछा, अपने गुरू से पूछना, तीस साल पहले जिस पत्नी को छोड़ आए थे, उसकी झंझट अभी बाकी थी? कि उसके मरने से मिटी! झंझट कहीं भीतर बाकी रह गई होगी। कहीं भीतर सब वही चलता रहा होगा। वह पत्नी अभी भी पत्नी थी?
पत्नी छोड़कर भाग जाने का सवाल नहीं है, मेरे होने की धारणा अगर बाकी है, तो हजार मील दूर भी जो है, वह मेरा है। छोड़कर भाग जाऊं, तो भी मेरा है। आंख बंद कर लूं, तो भी मेरा है। वह मर जाए, तो भी मेरा है। मेरे को भाव, उसका फैलाव, नए रास्ते खोज लेगा। और एक खूंटी छोड़ेगा तो दूसरी खूंटी पर जम जाएगा। एक जगह से हटेगा, दूसरी जगह फिर निर्माण कर लेगा।

हमारा, मेरा, मैं, मेरे संसार का निर्माता है। हम क्रिएटर हैं। एक संसार हम बनाते हैं , एक संसार परमात्मा ने बनाया है। वह सत्यों का संसार है। वहां ट्रुथ्स हैं, वहां फैक्ट्स हैं, तथ्य हैं। एक संसार हम भी बनाते हैं। वहां सपने हैं, फिक्शंस हैं।
कौन बंधता है? कौन बांधता है? यह ठीक से समझ लेना जरूरी है। यह एक बार ठीक से ख्याल में आ जाए, तो भीतर की यात्रा बड़ी सुगम है। भीतर की यात्रा कठिन नहीं है। लेकिन बाहर से बंधे हुए भीतर की यात्रा कैसे हो सकती है? और हम सब बंधे हैं। लेकिन हम कहेंगे, बाहर हमें बांधे हुए हैं।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, हम क्या करें? पत्नी-बच्चे बांधे हुए हैं। मकान-दुकान बांधे हुए हैं। मैं हैरान होता हूं कि कौन किसको बांधे हुए हैं? कौन किसको बांध सकता है? हम बंधे हुए हैं, इस सीधे से सत्य को स्वीकार नहीं करना चाहते हैं, इसे भी दूसरों पर थोप देते हैं।
साधु-संन्यासी स्त्रियों को गाली दिए चले जा रहे हैं कि स्त्रियां नर्क का द्वार हैं। वह तो स्त्रियां किताबें नहीं लिखती हैं, नहीं तो पुरुष को नर्क का द्वार लिखतीं। स्त्रियों ने किताबें लिखी नहीं, इस झंझट में वे पड़ी ही नहीं। सब किताबें पुरुष लिखते हैं, तो वह लिखते हैं, स्त्रियां नर्क की द्वार हैं। कौन नर्क का द्वार हो सकता है, अगर हम ही खुद नर्क के द्वार नहीं हैं तो? लेकिन मनुष्य का तर्क सदा खुद को बचा लेता है।
आप मुझे गाली देंगे, मैं क्रोध से भर जाऊंगा, तो मुझे कभी ख्याल नहीं आएगा कि क्रोध मुझमें था, इसलिए गाली क्रोध को जगा सकी। अगर क्रोध न होता, तो गाली नपुंसक हा जाती, व्यर्थ हो जाती, निकल जाती। छेद नहीं पाती कहीं। लेकिन कहूंगा मैं यह, कि तुमने मुझे क्रोध करवा दिया। कहूंगा यह कि लोग मुझे क्रोध करवा रहे हैं, मैं क्या कर सकता हूं?
और ध्यान रहे, जितनी मनुष्य के मन की खोज-बीन होती हस, उतना पता चलता है कि जो आदमी क्रोध करता है, अगर उसे कोई गाली न दे, कोई क्रोध का मौका न दे, तो भी वह आदमी मौके खोज कर क्रोध करेगा ही। वह बच नहीं सकता।
अगर एक आदमी को हम कमरे में बंद कर दें, जहां कोई भी नहीं है, तो भी वह आदमी क्रोध करेगा। हो सकता है फाउंटेनपेन को गाली दे और पटक दे। अब फाउंटेनपेन बिचारा तो गोली नहीं दे सकता है। हो सकता है, दरवाजे को धक्का मार कर खोले, और दरवाजे के साथ ऐसा व्यवहार करे, जैसा दुश्मन के साथ करता है। और हो सकता है, कपड़े इस भांति फेंके कि उनकी हत्या कर रहा हो। और जूते इस भांति उतारे, जैसे जन्मजात शत्रुता उनसे हो।
वह आदमी क्रोध तो जारी रखेगा, वह क्रोध जारी रखेगा। वह दीवालों को गाली देने लगेगा। वह सपने में लड़ना शुरू कर देगा। अकेल आदमी भी क्रोध करेगा। क्रोध भीतर है, तो निकलेगा। बाहर तो सिर्फ खूंटियां हम खोदते हैं। और इसलिए अगर क्रोधी आदमी को ऐसे लोगों के साथ रहने मिल जाए, जो क्रोध का मौका न दें, तो इस बात से भी उसे क्रोध आएगा कि कैसे लोग मिल गए हैं! उसे पता नहीं चलेगा कि यह क्या हो रहा है, लेकिन परेशान और बेचैन हो जाएगा।

क्रोध हमारे भीतर है, बाहर सिर्फ खूंटियां हैं। लेकिन हम जोर यह देते हैं कि दूसरे ल ोग क्रोध करवाते हैं। इसलिए हम क्रोधित हो जाते हैं।

बुद्ध एक गांव के पास से निकले हैं। कुछ लोगों ने बहुत गालियां दी हैं। पत्थर फेंके हैं । बुद्ध ने उनसे कहा—मैं जाऊं, मुझे जल्दी दूसरे गांव पहुंच जाना है। अगर तुम्हारी ब ातें पूरी हो गई हों, तो मुझे आज्ञा दो, या कि मैं थोड़ी देर और रुकूं? बातें बाकी हैं। उन लोगों ने कहा—बातें? हम सीधी गालियां दे रहे हैं, सुनाई नहीं पड़ता आपको? ह म सीधे तीर चला रहे हैं, ख्याल में नहीं आता आपको? ये बातें नहीं हैं। हम जितनी गंदी गालियां दे सकते हैं हमने दी हैं। आप क्रोधित नहीं हो रहे हैं?

बुद्ध ने कहा—कौन कब किसको क्रोधित कर सका है। आज तक सुना तुमने कि कोई किसी को क्रोधित कर सका हो? हां, कोई चाहे तो क्रोधित हो सकता है।

लोग क्रोधित होते हैं, कोई किसी को क्रोधित नहीं करता। बहाने बन जाते हैं, दूसरे लोग खूंटियां बन जाते हैं। टांगते हम सदा अपने को ही हैं।

बुद्ध ने कहा—तुमने गालियां दीं, मैंने सुनीं। मैं समझा कि तुम बड़े क्रोध में हो। बात खत्म हो गई। गालियां तुम दे रहे हो, मेरा क्या संबंध है? अब मैं तुमसे कहता हूं, अ गर मैं न निकलता, तो तुम किसी और को भी गालियां देते। तुम कोई और खोज ले ते, जिसको गालियां देते।

अगर असली आदमी न मिले, तो लोग मूर्तियां बनाकर, कपड़े के पुतले बनाकर, कप. डे के पुतले बनाकर, उसी को गालियां देकर जला देते हैं। असली आदमी मिलना जरू री थोड़े ही है। अगर पाकिस्तान से झगड़ा हो जाए, तो अयूब खां का पुतला ही जला कर बड़ी तृप्ति मिलती है। अब आदमी पागल है। और रावण का पुतला तो हम जला ए ही चले जा रहे हैं हजारों साल से। क्रोध हम ऐसे भी निकाल लेते हैं।

बुद्ध ने कहा—मैं न होता तो तुम कोई और खोज लेते। मुझसे क्या संबंध है? तुम्हें गा ली देनी है। फिर मैंने तुम्हारी गालियां सुन लीं, लेकिन मैं तुम्हारी गाली लेने को राज ी नहीं हूं। मैं तब लेता था, जब मुझे क्रोध करने में रस आता था। तब मैं गालियां ले लेता था; क्योंकि बिना गालियां लिए क्रोध करना मुश्किल है। मैं तत्काल ले लेता। तुम देते नहीं कि मैं फौरन ले लेता। अब मैं लेता नहीं।

दस वर्ष पहले तुम्हें आना था, तो बड़ा मजा आता, तुमको भी बड़ा मजा आता। खा ली हाथ न जाते, मैं भी तुम्हें गालियां लौटा देता। लेकिन आज तुम्हें खाली हाथ वाप स लौटना पड़ेगा, या अपनी ही गालियों को वापस ले जाना पड़ेगा। और कोई उपाय नहीं है।

मैं लेता नहीं हूं। मैं मजबूर हूं। मैंने लेना बंद कर दिया है, क्योंकि मेरे भीतर जो लेने वाला तत्त्व था, वह मैंने विदा कर दिया है। अब मेरे भीतर क्रोध नहीं है, तुम्हारी ग ालियां व्यर्थ हैं। मेरे क्रोध में तुम्हारी गालियों की सार्थकता थी। तुम्हारी गाली का अर्थ मेरे क्रोध में था। वह खत्म हो गया है। गालियां सुन ली हैं मैंने, जैसे कोई सूने भवन में चिल्ला दे। आवाज गूंजे और विदा हो जाए, भवन फिर सूना हो जाए। मैं जाऊं? दूसरे गांव मुझे जल्दी पहुंचना है।

वे लोग तो बड़ी मुश्किल में पड़ गए। चलते वक्त बुद्ध ने कहा, तुम्हें देखकर मुझे बड़ी दया आती है। दूसरे गांव में कुछ लोग मिठाइयां लाए थे, मैंने कहा, मेरा पेट भरा है, वे वापस ले गए। क्या किया होगा उन लोगों ने उन मिठाइयों का?
एक आदमी ने उस भीड़ में से कहा—गांव में बांट दी होगी, और क्या किया होगा!
बुद्ध ने कहा—तुम क्या करोगे? तुम गालियों के थाल सजाकर लाए थे, अब वापस ले जाना पड़ेगा। तुम क्या करोगे? मैं तो लेता नहीं हूं। तुम बड़े गलत आदमी के पास आ गए हो।
लेकिन दस साल पहले बुद्ध भी यही कहता कि तुमने मुझे क्रोधित करवा दिया है। हमारी दलील और हमारा तर्क यह है कि हम सब दूसरे पर टांग देते हैं। दूसरे हमें बांधे हुए हैं। दूसरे क्रोध करवा रहे हैं। दूसरे मोह पैदा करवा रहे हैं। धन बांधे हुए है, पद बांधे हुए हैं, गांव-घर बांधे हुए हैं।
कोई किसी को बांधे हुए नहीं है। हम बंधना चाहते हैं, इसी लिए बहाने खोज लेते हैं। और एक बहाना छोड़ेगें, हमारी बंधने की पुरानी आदत जीवित रहेगी। हम दूसरा बहाना खोज लेंगे और उससे बंध जाएंगे।
बंधन की हमारी आतुरता है। हम भीतर से गुलाम होने को बहुत उत्सुक हैं। बिना जंजीरों के हमें अच्छा नहीं लगेगा। लेकिन अगर वह हमें ख्याल आ जाए कि हम ही बंधते हैं, तो फिर बड़ी मुश्किल हो जाएगी। फिर एक ही सवाल रह जाएगा, नहीं बंधना है, तो बांधने वाले सूत्रों को भीतर से तोड़ दो।
अभी हम क्या करते हैं? अभी भी बंधन से लोग भागते हैं। सूत्र नहीं तोड़ते। खूटियां बदल देते हैं। खूटियां बदलने वाले लोगों को हम संन्यासी कहते हैं। सूत्र नहीं तोड़ते। वह जो गुलामी की भीतरी आकांक्षा है, वह नहीं टूटती । एक स्त्री अपने पति को छोड़ देती है, फिर वह कृष्ण की मूर्ति के सामने कहती है कि तुम्हीं मेरे पति हो। मामले में फर्क नहीं पड़ता है।
दिमाग वही है, वह कृष्ण से कहती है, कब मेरी सेज पर आओगे? वह चल रहा है भीतर। वही दिमाग है, वही बनावट है, सोचने का वही ढांचा है, वही प्रोजेक्शन है, वही कल्पनाएं फिर पकड़ने लगी हैं। अब पति छूट गया है, तो कृष्ण पति हो गया है, लेकिन पति पैदा करने की जो कामना है, वह जाएगी नहीं, वह जा नहीं सकती।
वह ऐसे कैसे जाएगी? पति को छोड़ने से जाएगी? घर छोड़ने से जाएगी? मेरा आश्रम! फौरन खड़ा हो जाएगा, और वह आश्रम उतना ही पकड़ लेगा।
जाएं आश्रमों में, खोजें साधु-संन्यासियों को! खाते-बही खोले हुए, हिसाब-किताब रख रहे हैं आश्रमों का। जाएं, देखें, आश्रमों के मकान बना रहे हैं। खड़े हैं धूप में, बरसात में। ऐसा साधारण आदमी भी, गृहस्थ आदमी भी खड़ा नहीं होता। लेकिन गृहस्थ खड़ा होगा, तो वे कहेंगे, बंधन में पड़े हो। आश्रम बनाने से आदमी बंधन में पड़ता ही नहीं?
लेकिन आदमी अगर भीतर वही है, तो क्या फर्क पड़ सकता है कि हम क्या कर रहे हैं। धोखा जरूर हम अपने को दे सकते हैं। खूंटी बदलने से धोखा पैदा होता है। मैं

आपसे इस बात को जोर देकर कहना चाहता हूं कि बाहर कोई भी आपको बांधे हुए नहीं है। शिकायत कभी किसी की मन में मत लेना कि किसी ने मुझे बांधा है। किसी ने आज तक पृथ्वी पर किसी को नहीं बांधा। और पदार्थ बेचारा क्या बांधेगा? पत्थर मिट्टी क्या बांधेंगे? किसी स्त्री की भी जरूरत है बांधने के लिए? कोई जरूरत नहीं है। उसकी स्मृति भी बांध सकती है।

बंधते हम हैं, बंधने की हम तलाश में हैं। यह सत्य ठीक से ख्याल में आ जाए, तो भीतर जाना बहुत आसान है। क्योंकि तब हमें किसी को छोड़ना नहीं है। तब हमें बंध ने की प्रवृत्ति को ध्यानपूर्वक देखना, जानना, पहचानना है कि मैं कब और कहां बंध जाता हूं? मैं कैसे बंध जाता हूं, मेरा ममत्व कैसे फैल जाता है? मेरा मैं कैसे विस्ती र्ण हो जाता है?

स्वामी राम अमरीका गए और लोग बड़े परेशान हुए। उनके बोलने का ढंग बहुत अज ीब था। अमरीका के आदमी को ख्याल में भी नहीं आ सकता कि कोई ऐसा बोलेगा। राम हमेशा थर्ड पर्सन में ही बोलते थे।

वे कभी यह नहीं कहते थे कि मुझे भूख लगी है। वे यही कहते थे, अब मालूम होता है राम को भूख लग रही है। वे कभी यह नहीं कहते थे कि रात मुझे बहुत ठंड लगी, वे यही कहते थे, रात बड़ा मजा आया, और राम ठंड में बहुत सिकुड़ते रहे। वे कभ ी यह नहीं कहते थे कि रास्ते पर कुछ लोग मिल गए और मुझे गालियां देने लगे, वे लौटकर यही कहते, आज बड़ा मजा आया, हम खड़े देखते रहे, राम को बहुत गालि यां पड़ीं। वह ऐसे ही बोलते थे, जैसे राम कोई दूसरा आदमी है। राम कोई और है, मैं कोई और हूं।

जो आदमी ममत्व को तोड़ना चाहता है, उसे स्वयं को, और स्वयं के होने की जो तस् वीर बन गई है दुनिया में, उसको, और ही तरह देखना जरूरी है। नहीं तो ममत्व न हीं टूटता।

उनसे अमरीका में किसी ने पूछा, आप कहते हैं, राम को भूख लगी है, आपको भूख नहीं लगती?

वह कहते कि मुझे सिर्फ पता चलता है कि राम को भूख लगी है। मैं जानने वाला हूं कि राम को भूख लगी है। सिर्फ मैं जानने वाला हूं कि अब राम का पेट भर गया है। कई दफा तो ऐसा होता है कि मैं जान लेता हूं कि पेट भर गया, और राम खाए ही चले जाते हैं। ऐसा भी हो जाता है कई बार।

यह जो राम, यह जो पर्सनलिटी, यह जो एक व्यक्तित्व हमारे चारों तरफ खड़ा है, य ह व्यक्तित्व और मैं भिन्न हूं। पर्सनलिटी व्यक्तित्व और आत्मा भिन्न हैं। इसका थोड़ा- सा बोध गहरा हो, तो ममत्व टूटना बंद हो जाता है। ममत्व की सीमा सिकुड़नी शुरू हो जाती है।

ममत्व का मूल सूत्र एक ही है कि मैंने व्यक्तित्व को ही मैं समझ रखा है। फिर व्यकि तत्व से संबंधित सारी चीजें मैं होती चली जाती हैं। एक आदमी बड़े मकान में है। इ स आदमी को झोंपड़े में रख दें, तो आपको पता है? इसकी पर्सनलिटी में फर्क पड़ ग

या है, इसका व्यक्तित्व और हो गया है। बड़े मकान में यह बड़ा आदमी था। इसके व्यक्तित्व में बड़े होने का भाव था। इसका मकान छिन गया, इसे एक झोंपड़े में रख दें, तो यह आदमी छोटा हो गया। हो सकता है, झोंपड़े में सब सुविधा हो, फिर भी यह आदमी छोटा हो गया। इसके व्यक्तित्व को सिकुड़ना पड़ा।

व्यक्तित्व हमारे शरीर पर सीमित नहीं है। व्यक्तित्व हमारे सारे ममत्व पर सीमित है। सारा ममत्व हमारा व्यक्तित्व है। जितना ममत्व है, उतना ही हमारा व्यक्तित्व है। बाप बेटे को अपना हिस्सा समझता है, एक्सटैंशन है वह उसी का। मां अपने बेटे को अपना हिस्सा समझती है, कहती है मेरा ही फैला हुआ एक हाथ है। बेटे को क्यों तृप्त है कि मां तकलीफ में पड़ जाती है। अपना ही फैला हुआ एक हाथ पीड़ित होता है।

मकान को आग लगती है, तो मालिक तकलीफ में पड़ जाता है। खुद का व्यक्तित्व कहीं से जलने लगता है। किसी आदमी से उसका पद छीनो, कितना बेचैन हो जाता है। पद छीनने से क्या फर्क पड़ता है? एक आदमी को कुर्सी से उतार दो। उतर कर कुर्सी से खड़े हो जाना चाहिए।

नहीं, इतना आसान नहीं है। कुर्सी उसके व्यक्तित्व का हिस्सा हो गई है, उसकी पर्सनलिटी हो गई है। कुर्सी थी, तो वह था। कुर्सी नहीं है, तो सब मामला गड़बड़ हो गया है। तब उसे अब कुछ और होना पड़ेगा। देखे हैं, जैसे कोई आदमी भूतपूर्व हो जाता है—भूतपूर्व और बहुत भूतपूर्व—हमारे मुल्क में मिनिस्टर हैं। गांव-गांव में वही हैं। भूतपूर्व मिनिस्टर बढ़ते चले जाते हैं। एक जमाना आएगा कि हमें बताना पड़ेगा कि यह आदमी भूतपूर्व मिनिस्टर नहीं हैं; क्योंकि इतने लोग भूतपूर्व मिनिस्टर होते चले जाते हैं। भूतपूर्व मिनिस्टर को देखा है आपने कैसा हो जाता है? जैसे कपड़े की क्रीज निकल जाए, ऐसा हो जाता है। एकदम व्यक्तित्व लोचपोच हो जाता है।

एकदम व्यक्तित्व गया। वही व्यक्तित्व था, वही सब कुछ था, वही जान थी, वही अकड़ थी, वही चारों तरफ का फैलाव था, वह एकदम सिकुड़ गया आदमी।

तो आदमी मर जाना पसंद करता है, लेकिन पद छोड़ना पसंद नहीं करता। इसलिए जब तक कोई न मर जाए, तब तक पद छुड़ाना बड़ा मुश्किल हो गया है। मर जाता है, बेचारे को मजबूरी हो जाती है, लोग जल्दी से लाश उठाकर ले जाते हैं। इधरा राख नहीं उठ पाती, और जो रो रहे हैं चारों तरफ बैठे हुए, इस फिक्र में लग जाते हैं, जरा गड़बड़ न हो जाए, कौन कुर्सी पर बैठ जाए! इधर लाश नहीं उठी है, कुर्सी पर बैठने का विचार शुरू हो गया है।

आदमी मरघट पर पीछे पहुंचता है, कुर्सी पर बैठने का इंतजाम पहले होने लगता है। वही सारे लोग जो रो रहे हैं, उसके मरघट पर खड़े होकर, कि बड़ा दुख हुआ कि आप मर गए और चित्त में भगवान को धन्यवाद दे रहे हैं कि अगर यह न मरता, तो वह जगह खाली होने वाली नहीं थी। अब जगह खाली है, अब जल्दी यह निपटारा हो, मैं भागूं, उस कुर्सी पर और न बैठ जाए तब तक।

हमारा व्यक्तित्व, हमारे धन, हमारे मकान, हमारे पद, हमारी प्रतिष्ठा सबसे जुड़ा हु आ है। हिटलर ने जिस दिन अपनी आत्महत्या की, मरने के पहले कितना सिकुड़ गया होगा? मरते दम तक हिटलर यह घोषणा करता रहा है रेडियो पर कि हम जीत र हे हैं। बर्लिन में दुश्मन आ गया, जर्मनी तो गया, राजधानी जा रही है। बर्लिन के बा हर के हिस्सों में बम गिर रहे हैं। बर्लिन के ऊपर दुश्मन के जहाज उड़ रहे हैं, लेकिन हिटलर अपने मकान के बाहर आकर देखने को राजी नहीं है।

उसके मित्रों ने कहा—आप क्या कर रहे हैं? सब गया है।

लेकिन हिटलर कहता है कि तुम गद्दार हो, तुम झूठे हो, बाहर निकल जाओ। मुझसे हार की बात मत करो। और वह रेडियो पर घोषणा करता है कि हम जीत रहे हैं। हमारी जीत में कोई शक नहीं है।

पागल हो गया होगा। क्या हुआ होगा उसको? उसके दरवाजे के बाहर गोलियां चल रही हैं। दुश्मन के सिपाहियों की चोटें और पैरों की आवाजें उसके घर के बाहर आ र ही हैं, और वह रेडियो पर कह रहा है कि हम जीत रहे हैं? हमारी जीत सुनिश्चित है।

और यदि उसके मित्र उससे कह दें कि आप क्या कर रहे हैं? पागल हो गए हैं?

वह उनसे कहता है, गोली मरवा दूंगा, बाहर हो जाओ। इस तरह की झूठी बातें मुझ से मत कहो। हम कभी हार सकते हैं, जर्मनी कभी हार सकता है?

क्या हो गया होगा उसके मन को? विक्षिप्त, वह अपने व्यक्तित्व को छोड़ने को राजी नहीं है। वह जीतता हुआ, फैलता हुआ, हेल फ्युहरर, वह व्यक्तित्व इतना बड़ा! वह कैसे मान लेते कि हम हार रहे हैं। वह मरना मान सकता है, हारना नहीं मान सक ता।

और जब उसे पता ही चल गया है पक्का, कि हार सुनिश्चित हो गई है, और जर्मन पार्लियामेंट के ऊपर दुश्मन का कब्जा हो गया है। तब वह मर जाना पसंद करता है। वह गोली मार कर मर जाता है। लेकिन, मरते वक्त तक भी वह फ्यूहरर, मरते त क भी वह विजेता है। वह हारा हुआ आदमी नहीं है।

हमारे व्यक्तित्व का फैलाव है, और उस व्यक्तित्व को हम पकड़े हुए हैं। और वही ह मारी जगह है, वहीं से भीतर हम आत्मा तक नहीं पहुंच जाते हैं। पर्सनलिटी से जो जकड़ गया है, वह इफेंस तक नहीं पहुंचता। व्यक्तित्व से जो जकड़ गया है, वह आत मा तक नहीं पहुंचता है।

तो एक बोध भीतर विकसित करना जरूरी है अंतर्यात्रा के लिए, अंधेरे प्रकाश की ओ र जाने वाले यात्री के लिए, कि मैं कौन हूं।

यह पद मैं हूं? पद नहीं था तब भी मैं था। पद नहीं होगा, तब भी मैं रहूंगा। तो नि श्चत ही, पद तो मैं नहीं हो सकता।

यह धन मैं हूं? धन नहीं था, तो भी मैं था। धन नहीं होगा तो भी मैं रहूंगा। यह धन मैं हूं? तो धन तो मैं नहीं हो सकता।

ये बेटे, ये पत्नी, यह मित्र, ये समाज, यह संगठन, यह राज्य, यह देश, यह मैं हूं? इ
नका सचेत बोध भीतर होना चाहिए।
और जैसे-जैसे बोध होता है, वैसे-वैसे लगता है कि कहीं कुछ है, जो मैं नहीं हूं, और
 मैंने मान रखा है कि मैं हूं। कुछ है जो मैं बिलकुल नहीं हूं, लेकिन मैं जोर से चिप
क गया हूं उससे, और मान रहा हूं कि मैं हूं। यह मुझे बाहर रोके हुए है, यह मेरे ब
ाहर से बंधन हैं। व्यक्तित्व, ममत्व, मेरे बाहर से जुड़ा हुआ, मेरा बंधन है।
हिटलर ने कभी शादी नहीं की, मरने के दो घंटे पहले शादी की। शादी नहीं की जिंद
गी भर; क्योंकि हिटलर कभी किसी को अपने बराबर मानने को राजी नहीं हो सका।
 हिटलर का कोई मित्र नहीं था। कोई उसे तू नहीं कह सकता था। उसके व्यक्तित्व
को भारी चोट लग जाती। तू कोई भी नहीं कह सकता। हिटलर के कंधे पर कोई मि
त्र भाव से हाथ नहीं रख सकता था। उसी दिन खत्म कर दिया जाता।
हिटलर की आज्ञा में कोई इंकार नहीं कर सकता था। इसलिए पत्नी जैसी निकटतम ि
कसी को साथ लाना खतरनाक है। वह तू भी कह सकती है, कंधे पर हाथ भी रखेगी
। तो हिटलर ने शादी ही नहीं की।
एक लड़की से प्रेम था। एक वर्ष तक वह उसके पास थी। एक दिन उस लड़की ने क
हा—मुझे मां से मिलने जाना है।
हिटलर ने कहा—नो—नहीं! हिटलर चला गया दफ्तर।
उस लड़की ने कहा—इसमें क्या बात है, नहीं की? मैं मिलकर घंटे भर में आ जाती
हूं।
वह मिलने गई। हिटलर लौटकर आया। उसने आकर पूछा—तू मां से मिलने गई थी?
उसने कहा—हां।
उसने उसे गोली मार दी उसी वक्त। मित्रों ने कहा—यह तुम क्या करते हो, तुम इत
ना प्रेम करते हो?
उसने कहा—मैं सिर्फ हो को प्रेम करता हूं। नहीं को मैं बिलकुल प्रेम नहीं करता। यह
औरत किसी मतलब की नहीं है। इसने इंकार किया है, इसने मेरी बात नहीं मानी, ि
हटलर की! फ्यूहरर की! वह व्यक्तित्व है, वही मैं हूं।
मरने के दो घंटे पहले शादी की। उस औरत को वह बारह साल से प्रेम करता था, ले
किन टालता रहा, उससे विवाह नहीं किया। मित्रों ने कहा, तो उसने कहा—विवाह नह
ीं कर सकता हूं, क्योंकि कोई मेरे कंधे पर हाथ रख दे। तो कोई मुझसे तू कहकर बो
ले दे। यह असंभव है। मैं फ्यूहरर हूं।
दो घंटे पहले, जब मरने के करीब आ गया, आत्महत्या करनी है, एक पादरी को दौ.
डाकर उठवाया, सोए हुएक किसी पादरी को उठवा लाओ। उस औरत को नींद से बुल
वाया और कहा कि जल्दी कठघरे में चलो! नीचे तलघरे में शादी हो गई। कोई मौजू
द न था। एक पादरी था, एक दो मित्र थे, एक हिटलर था, वह औरत थी।
उस औरत ने कहा—इतनी जल्दी क्या पड़ी है?

उसने कहा—अब देर नहीं है। अब समय नहीं है। शादी हो गई और शादी के बाद जो पहला काम किया, वह आत्महत्या—दोनों ने आत्महत्या कर ली।
हिटलर से उस पादरी ने पूछा भी कि आप मरते वक्त शादी क्यों कर रहे हो? उसने कहा कि जीते-जी करना मुश्किल था। मैं किसी को निकट और समान नहीं मान सकता हूं।
हम सब भी छोटे-मोटे हिटलर तो हैं ही, बड़े नहीं होंगे। छोटे-मोटे सब हैं। और सबका एक व्यक्तित्व का ढांचा है। उस व्यक्तित्व के ढांचे को बचाने के लिए जिंदगी भर लड़ते हैं। उसी लिए धन, उसी लिए पद, उसी लिए सब।
बाप अपने बेटे को कहता है, मेरी इज्जत का ख्याल रखना। ऐसा कोई काम मत करना कि मेरी इज्जत पर आंच आ जाए। यह बेटा भी इज्जत बचाने के लिए साधन है। यह बेटा भी एक उपकरण है, एक मीन्स है कि बाप की इज्जत बचे। हमारा कुल, हमारा परिवार, हम विशिष्ट हैं, इसे बचाना।
हम साधारण लोग नहीं है। सब अहंकार का प्रक्षेपण है। इसीलिए तो बेटा न हो, तो बाप को बड़ी बेचैनी होगी। क्योंकि फिर अहंकार को प्रक्षेपण करने के लिए आगे कौन बचेगा? इसलिए बेटा होना जरूरी है।
ये हमारी सारी चेष्टाएं किसलिए हैं? एक व्यक्तित्व की हमारी धारणा है कि मैं कुछ हूं। और इस मैं को हम मजबूत करते हैं सब तरफ से। यही मजबूती हमारा बंधन है, यही हमें बाहर से बांध लेती है। नहीं! खोज करनी पड़ेगी, मैं हूं? कपड़ों में, इज्जत में, प्रतिष्ठा में, सम्मान में, मैं हूं? या मैं कुछ अलग हूं।
ईरान में एक सम्राट ने अपने दरबार के बुद्धिमान लोगों को कहा कि मुझे एक ऐसा सूत्र लिखकर दे दो, जो हर समय काम आ सके, सुख में भी, दुख में भी। जीत में भी, हार में भी। जीवन में भी, मृत्यु में भी, एक सूत्र। ज्यादा नहीं चाहता हूं।
बुद्धिमानों ने बहुत खोजा। बड़े-बड़े शास्त्र बुद्धिमान ला सकते थे, एक सूत्र लाना बहुत मुश्किल था। जितना कम बुद्धि का आदमी हो, उतनी बड़ी किताब आसानी से लिख सकता है। छोटा सूत्र खोजना बहुत मुश्किल बात है। बड़ी कठिन बात है।
रूजवेल्ट से कोई पूछ रहा था कि अगर आपको दस मिनट बोलना हो, तो कितनी तैयारी करनी पड़ती है? रूजवेल्ट ने कहा—दस मिनट? दो दिन तैयारी करनी पड़ती है। और उसने कहा—जब दो घंटे बोलना हो?
तो रूजवेल्ट ने कहा—तैयारी की कोई जरूरत ही नहीं है। फिर तो मैं बोलना शुरू कर दूंगा।
बुद्धिमान जिनको हम कहते हैं, पंडित जिनको हम कहते हैं, वे बहुत फैलाव कर सकते हैं, लेकिन बोलना बहुत मुश्किल बात है। सीड, बीज पकड़ना बहुत मुश्किल बात है।
तो पंडित बहुत मुश्किल में हो गए। उस सूत्र, जो सुख में भी काम आ सके, दुख में भी? जीत में भी, हार में भी, जीवन में भी, मृत्यु में भी? उन्होंने कहा—यह तो बड़ा मुश्किल है।

फिर एक फकीर के पास गए। उस फकीर ने कहा—यह तुम्हें लिख कर देता हूं, लेकिन तुम मत देखना, क्योंकि तुम्हारी समझ में नहीं आएगा। तुम्हारी समझ में आ सकता होता, तो तुमने खुद ही खोज लिया होता। इसे बंद कर देता हूं एक ताबीज में। ताबीज सम्राट को दे देना और कहना कि जब जरूरत पड़े, खोलकर सूत्र पढ़ लेना।
ताबीज सम्राट को दे दिया गया। दो वर्ष तक ख्याल भी नहीं रहा, ताबीज पड़ा रहा गले में। फिर सम्राट हारा, दुश्मन जीत गया। सम्राट भाग रहा है। दुश्मन की ताकत पीछे आ रही है। सेनाएं सब भाग गई हैं, बिखर गई हैं। हार निश्चित हो गई है। सम्राट जान बचाने को जंगल में भाग रहा है। दुश्मन पीछे हैं।
तेज घोड़ा सम्राट का, आगे जाकर खड्ड पर ठहर गया है। नीचे खड्ड है, जहां आगे अब कोई जाने का एक क्षण भी, एक पल भी उपाय नहीं है। एक कदम आगे नहीं जाया जा सकता। पीछे दुश्मन आ रहा है। आवाजें बढ़ती जा रही हैं, घोड़ों की टापों की। उसे ख्याल आया, अब क्या करूं?
फिर ख्याल आया ताबीज का। ताबीज खोला, एक छोटा सा वाक्य लिखा है जिसका अर्थ है, दिस टू विल पास, यह भी चला जाएगा। पढ़ा, हंसने लगा। कहा, देखें। देखें, चला जाता है या नहीं। ख्याल आया, जिंदगी में सब तो आया और चला गया। तो यह भी कैसे रुक जाएगा। हो सकता है, चला जाए। और सच ही घोड़ों की तेज आती हुई टापें बिखर गईं।
जीवन के बहुत अनुभव उसे भी ज्ञात थे—सब आता है, सब चला जाता है। हो सकता है जो आज आ गया है, यह भी चला जाए। अभी घबड़ा रहा था। अब हंसकर प्रतीक्षा करने लगा कि देखें, चला जाता है या नहीं।
अब तक खुद हिस्सेदार था, भाग था खेल का, अब द्रष्टा हो गया। देखें यह भी चला जाता है या नहीं? भूल गया, मैं ही हिस्सा हूं अभिनय का एक। मैं ही मुसीबत में पड़ा हूं, यह भूल गया। मैं ही मौत के करीब खड़ा हूं, यह भूल गया। तब ख्याल आया, देखूं, यह भी चला जाता है या नहीं।
खड़े होकर घोड़े पर बैठे देखने लगा और द्रष्टा हो गया। आश्चर्य, पीछे से घोड़ों के टापों की बढ़ती आवाज धीमी-धीमी हो गई। वे कहीं और रास्ते पर भटक गए हैं। जिंदगी के जंगल के रास्ते बहुत बड़े हैं। भटक गए हैं कहीं। घोड़ा लौटाकर वापस लौट आया है। ताबीज बंद कर लिया है, हंस रहा है।
और पंद्रह दिन बाद उसकी सेनाएं इकट्ठी हो गईं। वह जीत गया और वापस राजधानी लौट रहा है। स्वागत सत्कार है, फूल-मालाएं हैं, दिए जले हैं, धूप जली है, नृत्य है, राज महल सजा है, वह वापस लौट रहा है। सीढ़ियां चढ़कर खड़ा हो गया है, सोने के सिंहासन पर बैठने को है। तब उसे फिर ख्याल आ गया। ताबीज खोलकर देखा। लिखा है, दिस टू विल पास, यह भी गुजर जाएगा। खूब हंसने लगता है।
दरबारी पूछने लगे—आप हंसते हैं?

उसने कहा—अब हंसता ही रहूंगा। अब एक ख्याल आ गया है। सब बीत जाता है। और जो नहीं बीत जाता, वही मैं हूं। चीजें आतीं और चली जाती हैं। सब आता है, बीत जाता है। जो बीत जाता है, उसी को पकड़ लेना व्यक्तित्व है, पर्सनलिटी है।

अंग्रेजी का शब्द पर्सनलिटी बहुत अदभुत है। वह ग्रीक ड्रामा में जो लोग ऊपर मुंह पर मुखौटे पहनकर नाटक करते थे, उस मुखौटे को कहते थे परसोना। नाटक में चेहरा दूसरा लगा लिया, उस दूसरे चेहरे को कहते थे परसोना। उसी से बना है पर्सनलिटी। वह जो हम चेहरे लगाए हुए हैं जिंदगी में, और उन्हीं को पकड़ लिया है जो से, वही हमारा व्यक्तित्व है।

उस सम्राट ने कहा—अब कोई फिक्र नहीं। जीवन भी वही है, मौत भी वही है, हार भी वही है, जीत भी वही है। क्योंकि सभी बीत जाता है। जब सभी बीत जाता है, तब सभी समान है। सुख भी वही है, दुख भी वही है। मित्र भी वही, शत्रु भी वही। अपना भी वही, पराया भी वही। जब सभी बीत जाता है, तो बराबर है। जो शेष रह जाता है, अब मैं उसकी ही खोज करूंगा। उस फकीर से जाकर पूछो कि शेष क्या रह जाता है? सब बीत जाता है, शेष क्या रह जाता है?

वे भागे हुए फकीर के पास गए। उस फकीर ने कहा—मुझसे मत पूछो। जो बीत जाता है, तुम उसको देखते रहो। तुम्हें उसका पता चल जाएगा, जो शेष रह जाता है। वह मुझसे पूछने मत आओ। तुम सिर्फ द्रष्टा बन जाओ कि जो बीत जाता है, उसको देखते रहो। फिर जो शेष रह जाता है, वही रह जाएगा। तुम वही हो—तुम वही हो, जो शेष रह जाता है।

लेकिन क्या हम वही हैं, जो शेष रह जाता है? क्या हम वही हैं जो जन्म के पहले थे? क्या हम वही हैं, जो मृत्यु के बाद होंगे?

नहीं! हमने बहुत कुछ जोड़ लिया है। न मृत्यु के बाद हो सकते हैं, न जन्म के पहले थे। हमने बीच में बहुत कुछ जोड़ लिया है, बहुत कुछ इकट्ठा कर लिया है। वही हमारा ममत्व है, वही हमारा व्यक्तित्व है, वही हमारा फैलाव है, वही हमारा बंधन है, वही कारागृह है। कोई और नहीं बांधे है। हमने मैं को जितना फैला लिया है, उतना ही बंध गए हैं।

और मैं हमने किस पर फैला लिया है? जो बीत जाता है। जो बीत ही रहा है। जो टिकता नहीं क्षण भर, रोज बीत जाता है। कल आप क्या थे, आज आप वही हैं? आप इस कमरे में आए थे, जो थे वही आप इस कमरे के बाहर जा सकेंगे? असंभव है। घंटे भर में गंगा का पानी बह गया।

आपके व्यक्तित्व का भी बहुत पानी बह गया। घड़ी भर पहले जो आप थे, अब आप वही नहीं हैं। लेकिन मन यही माने चला जाएगा कि मैं वही हूं, जो घड़ी भर पहले था। हम बंधे हुए, बहते हुए व्यक्तित्व को बांध कर बैठ गए हैं। आप वही सोच रहे हैं? जो आप कल थे, वही हैं।

कोई वही नहीं है, जो कल था। यहां तो सब बह रहा है। हां, गंगा के किनारे खड़े हो जाएं, तो ऐसा लगेगा, यही गंगा है जो कल आई थी। लेकिन जो जानता है वह कहे

गा, वह गंगा अब कहां? वह पानी अब कहां? सब गया, अब सब नया है वहां, अब कुछ और ही बह रहा है। लेकिन भ्रम पैदा होता है। वही गंगा है। ऐसे ही भ्रम पैदा ह ोता है कि वही मैं हूं जो कल था।

इससे बहुत भ्रम पैदा होता है। बंधन और जाल पैदा होते हैं और व्यक्तित्व की तरल ता, ठोस–पथरीली हो जाती है। सालिड हो जाती है, पत्थर की तरह बोझिल हो जा ती है।

कौन बांधे है, संसार? कौन बांधे है, पदार्थ? नहीं, हमारा ममत्व हमारा मैं का भाव, हमने अपने को जो समझ रखा है? और क्या समझ रखा है? बहावों को समझ रखा है कि मैं हूं।

वैज्ञानिक कहते हैं कि शरीर रोज बदल रहा है। कुछ मर रहा है, कुछ नया आ रहा है। आपके पास शरीर वही है घड़ी भर बाद। कुछ मरकर शरीर से बाहर फिक रहा है, कुछ नया जीवित शरीर को रोज मिल रहा है। अभी एक क्षण पहले आपने जो श वांस ली थी, बाहर हो गई है, अब वह आपके पास नहीं है। दूसरी श्वांस आ रही है, और आप जान भी नहीं पाएंगे कि बाहर हो जाएगी। उतनी ही तेजी से सब बदल र हा है।

वैज्ञानिक कहते हैं, सात साल में पूरा शरीर बदल जाता है। एक कण भी वही नहीं ब चता, जो पहले था। और मन तो और तेजी से बदल रहा है। एक क्षण मन वही नहीं है, जो था। सुबह क्रोध में थे, अब शांति में हो सकते हैं। अभी गाली दे रहे थे, अभ ी प्रार्थना कर रहे हो सकते हैं। अभी मन में आग ली थी, अभी वर्षा हो रही हो सक ती है। अभी कांटे ही कांटे थे, अभी फूल खिल गए हों। मन प्रतिफल बदल रहा है, भ ाग रहा है, सब बदल रहा है।

शरीर और मन के इस बदलती हुई दुनिया को हमने समझ रखा है, मैं हूं? तो हम ब. डे असत्य में उलझ गए हैं। और इस असत्य में उलझे हुए ज्ञान की, प्रकाश की यात्रा कैसे हो सकती है?

असत्य ही अंधकार है, असत्य ही अज्ञान है, और उसे हम पकड़े हुए हैं। उसे छोड़ने का जरा भी हमारा मन नहीं है। मरते दम तक छोड़ना नहीं चाहते हैं। आखिरी क्षण तक हम अपने को पकड़े हुए हैं। जो टूट ही रहा है, जा ही रहा है, उसे पकड़े हुए हैं । मरने की यही तो पीड़ा है बूढ़े होने की यही तो पीड़ा है। बदलने की यही तो पीड़ा है कि जिसे पकड़ते हैं, वही छूटता चला जाता है।

लेकिन पकड़े हैं, पकड़ना नहीं छोड़ते हैं, जिसे पकड़ते हैं वह छूट जाता है, लेकिन प कड़ना नहीं छोड़ते हैं, फिर पकड़ लेते हैं, फिर पकड़ लेते हैं। ऐसा किलगिंग माइंड य ह पकड़ने वाला जो चित्त है, यह चित्त भीतर की यात्रा पर सबसे बड़ा अवरोध है, स बसे बड़ा हिन्डेंस है।

नहीं, संसार नहीं रोके हुए है, हम रुके हुए हैं। और यह स्मरण आ जाए, और यह ख याल आ जाए, तो इस बंधन को तोड़ देना कठिन है? यह जरा भी कठिन नहीं है। क

योंकि जो बंधन मैंने बनाए हों, उन्हें तोड़ना कठिन कैसे हो सकता है। एक छोटी सी कहानी, और इस सुबह की चर्चा को मैं पूरा करूंगा।
मैंने सुना है, रोम पर एक बड़ा हमला हुआ और वहां के सौ नागरिक पकड़ लिए गए। उन सबकी हत्या की जाने वाली है। वे जंगल में फेंक दिए जाएंगे।
उनमें एक लोहार भी है। कुशल लोहार, जिसने जीवन भर लोहे के सामान बनाए थे, वह भी पकड़ लिया गया। निन्यानवे लोग रो रहे हैं, वह लोहार हंस रहा है। उसके घर के लोगों ने कहा--तुम हंसते हो? हमारी जिंदगी मिट गई तुम्हारे साथ। हम मरे! तुम खो रहे हो, हम कैसे बच सकेंगे तुम्हारे बिना? और तुम रुक नहीं रहे हो?
उसने कहा--घबड़ाओ मत--तुम जानती हो तुम जानते हो, पत्नी से कहा, बेटों से कहा कि मैं लोहार हूं। जिंदगी भर मैंने लोहे के सामान बनाए। मेरी सारे जगत में यही ख्याति थी कि मुझसे बड़ा कोई कारीगर नहीं है। मैं इन जंजीरों को तोड़कर सांझ तक वापस आ जाऊंगा। घबड़ाओ मत। सूरज के ढलते मेरी प्रतीक्षा करना।
फिर वे सौ ही बड़े नागरिक दुश्मनों ने पकड़कर जंजीरें पहनाकर, ऐसी जंजीरें जो कभी नहीं खोली जातीं, जिनमें कोई ताला नहीं होता, जो मर जाएं, तो हाथ काटकर ही खुलती हैं--पैरों में, हाथों में जंजीरें डाल दीं। उन सौ ही आदमियों को जंगल में फेंक दिया। वे निन्यानवे आदमी तो रोते हुए जंगल में फेंके गए गड्ढों में। जंगली जानवर उन्हें खा जाएंगे। वह सौवां आदमी हंसता हुआ गड्ढे में गिरा।
गड्ढे कमें गिरते ही जो पहला काम उसने किया, जो कोई भी समझदार करता, हालांकि हम कभी नहीं करते--उसने जो पहला काम किया, जंजीरें गौर से देखीं। जंजीरें क्या हैं? बहुत कम लोग हैं जो जंजीरें गौर से देखें कि जंजीरें क्या हैं?
रोना चिल्लाना एक तरफ, पहले जंजीरें देखीं कि जंजीरें क्या हैं? जंजीरें गौर से देखीं, उसे पता है कि कितनी ही मजबूत जंजीर बनाई जाए, एक जगह कमजोर होती है, जहां से जोड़ी गई होती है। कितनी ही मजबूत जंजीर बनाई जाए, एक जगह कमजोर होती है, जहां से जोड़ी गई होती है। कितनी ही मजबूत जंजीर, एक जगह तो कमजोर होगी ही, जहां से जोड़ी जाएगी।
जोड़ सदा कमजोर होता है। जोड़ से ही चीजें टूटती हैं, ध्यान रहे--और कहीं से नहीं टूटती है। उसने कहा, जोड़ खोज लूं, जोड़ कहां है? जंजीर पर गौर किया, जोड़ तो था। लेकिन छाती पीटकर वह लोहार रोने लगा। अब तक हंसता था, अब रोने लगा।
एक फकीर ने देखा था गांव में इन सौ आदमियों को जाते हुए। फकीर ने देखा, निन्यानवे आदमी रो रहे हैं, एक आदमी हंस रहा है। मालूम होता है, इस आदमी को जिंदगी का राज मिल गया है। वह फकीर इसी खोज में था कि जिंदगी का राज मिल जाए, और जिंदगी का राज जिसको मिल जाता है, वह मौत के सामने हंस सकता है। यह आदमी मरने को है, हंस रहा है?
फकीर पीछे हो लिया था कि दुश्मन छोड़कर चले जाएंगे, तो पूछूंगा कि जिंदगी का राज क्या है? मुझे भी बता दे, इसी की खोज में हूं। मौत के सामने मैं भी खड़े होकर

हंस सकूं। मुझे भी बता दे। वह पीछे-पीछे छिपे चला आया था, वृक्ष के पीछे छिपकर खड़ा था।

जब लोहार को रोते देखा, तो वह हैरान हो गया। उसने कहा—मेरे मित्र, मुझे व्यर्थ तू ने भटकाया। इतनी देर हंसते रहे, अब रोते हो? और मैं यह पूछने आया था कि मौ त के सामने हंसने की कला क्या है?

उस लोहार ने कहा—इससे मैं नहीं हंस रहा था। मुझे मौत-जिंदगी का कुछ पता नहीं, मैं तो सिर्फ लोहार हूं, बेड़ियां, कड़ियां बनाना जानता हूं। सोचा था, तोड़ दूंगा, लेकिन बहुत मुश्किल है। उसने कहा, क्यों? उसने कहा, बेड़ी पर मेरे हस्ताक्षर हैं, मेरी आदत है कि जो भी मैं बनाता था, उस पर हस्ताक्षर कर देता था। वह मेरी ही बनाई हुई जंजीरें हैं।

फकीर ने कहा—तो फिर रोने की क्या बात है, अगर तेरी ही बनाई हुई जंजीरें हैं, तो तू तोड़ सकता है।

उस लोहार ने कहा—वही सोचकर हंसता रहा था कि तोड़ सकूंगा, लेकिन मुझे कमजोर चीज बनाने की आदत नहीं है। टूटना बहुत मुश्किल है। यही तो मेरी प्रसिद्धि थी कि मैं कमजोर चीजें नहीं बनाता हूं। बड़ी मजबूत जंजीरें हैं, टूटना बहुत मुश्किल है।

उस फकीर ने कहा—तू बिलकुल पागल है। मजबूत कितनी ही हो जंजीरें, बनाने वाले से ज्यादा मजबूत नहीं हो सकतीं। बनाने वाले से बनाई गई चीज कैसे मजबूत हो सकती है?

कोई चित्रकार से बड़ा हो सकता है? कितना ही बड़े से बड़ा चित्र, चित्रकार से बड़ा नहीं हो सकता। और कितना ही बड़ा गीत, गीतकार से बड़ा नहीं हो सकता। और कितना ही अदभुत संगीत, संगीतज्ञ से बड़ा नहीं हो सकता, क्योंकि जो जिससे पैदा होता है, उससे छोटा ही रह जाता है।

क्रिएटर से क्रिएशन बड़ा नहीं हो सकता। परमात्मा से दुनिया बड़ी नहीं हो सकती। कोई उपाय नहीं है। बनाने वाला सदा बड़ा रह जाता है। कितनी ही बड़ी मशीन बना लें, कोई मशीन आदमी से बड़ी कभी नहीं हो सकती। वह बनाने वाला सदा पीछे खड़ा रह जाता है।

उस फकीर ने कहा—तू घबड़ा मत, अच्छा मैं जाता हूं। मुझसे तेरा कोई मतलब नहीं। मैं समझा था, तूने जिंदगी का राज पा लिया है, इसलिए आ गया। लेकिन इतना कहे जाता हूं कि घबड़ा मत। तू अगर जंजीरें बनाता रहा है, तो कोई जंजीर तुझसे बड़ी नहीं हो सकती। तू तोड़ सकता है।

और मैंने सुना है, सांझ होते वह लोहार अपने घर वापस पहुंच गया था। उसने जंजीरें तोड़ ली होंगी।

लेकिन हममें से कितने लोग सांझ होते घर को वापस पहुंचेंगे, यह कहना मुश्किल है। जंजीरें हमारी ही बनाई हुई हैं। जंजीरें हमसे कमजोर हैं। जंजीरों में कमजोर कड़ियां हैं, क्योंकि जहां से हमने जोड़ा है, वहां वे कितनी ही मजबूत हों, तो भी मजबूत नहीं हो सकती हैं।

हम जंजीरें तोड़कर घर वापस पहुंच सकते हैं। सांझ होते घर पहुंच जाएं, अच्छा है। उस घर को ही मैं प्रकाश कह रहा हूं। वह भीतर का जो घर है, उसको ही प्रकाश कह रहा हूं। और हमारी जो भटकन है चारों तरफ, उसी को मैं अंधकार कह रहा हूं। पहुंच सकते हैं घर आप भी। उधर घर में बहुत प्रतीक्षा हो रही है कि आओ। हम बाहर भटके चले जा रहे हैं।

एक तो हम जंजीरें कभी देखते नहीं कि किसकी बनाई हुई है। और अगर देख भी लेते हैं, तो रोते-चिल्लाते हैं। दूसरे को दोष देते हैं कि तूने जंजीरें पहना दीं। ऐसे जंजीरें नहीं टूटतीं। किसी ने पहनाई हों, किसी की बनाई हों, जंजीरें तोड़नी पड़ेंगी, लेकिन यहां तो मजा यह है कि निश्चित ही सब जंजीरें हमारी बनाई हुई हैं और जंजीरें हम तोड़ सकते हैं और सांझ होते घर पहुंच सकते हैं।

अंतिम सूत्र के संबंध में कल सुबह बात करूंगा। सांझ आपके प्रश्नों के उत्तर दूंगा। जो भी प्रश्न हों वह लिखकर दे दें। मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना उसके लिए अनुग्रहीत हूं, और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

फूल खिलने का क्षण

पिछली चर्चाओं के संबंध में बहुत से प्रश्न मित्रों से पूछे हैं।

एक मित्र ने बहुत अजीब प्रश्न पूछा है। अजीब इसलिए कि पहली अजीब बात तो यह है कि वह प्रश्न ही नहीं है। उन्होंने पूछा है—प्रश्न भी पूछा है, साथ लिखा है, अगर आपको पता न हो, तो मैं इसका उत्तर आकर दे सकता हूं। उन्हें उत्तर पहले से पता है, तो व्यर्थ पूछने की परेशानी नहीं करनी चाहिए। और अक्सर ऐसा होता है कि हम पूछते हैं, लेकिन उसका हमें पता है, तो हमारा पूछना झूठा हो जाता है। अर्थहीन नहीं रह जाता। अगर पता हो तो बात खत्म हो गई। अगर पता नहीं है, तो ही पूछने में रस है। खोज का आनंद है...

(बीच में प्रश्नकर्त्ता द्वारा कुछ हस्तक्षेप)

मैं उत्तर दे दूं, पूरा कर लेने दें। बड़ी कृपा की कि आप पता भी चल गए कि कौन हैं। उत्तर दे रहा हूं। उत्तर मैं देता हूं। मैंने सोचा था, नाम उनका न लूंगा कि वह पता न चल जाएं, लेकिन वह मानते नहीं हैं। मुझे उत्तर तो लेने दें?

पहली तो बात यह है कि अक्सर हम पूछने के पहले ही, हमारा उत्तर तैयार रखते हैं। जिस आदमी का उत्तर तैयार है, वह आदमी सुनने में भी असमर्थ होता है। सुनने के लिए तैयारी चाहिए। वह भी उसके अंदर नहीं होती। उसके भीतर अपना उत्तर ही घूमता रहता है। सुनने के लिए मुक्त और खुला उसका मन भी नहीं होता।

दूसरी बात है, उन्होंने बड़े मजे की बात लिखी है। उन्होंने लिखा है कि वे रियलाइज सोल हैं, खुद आत्मा को जान चुके हैं। ज्ञान उन्हें उपलब्ध हो चुका है। प्रकाश उन्होंने पा लिया है। और यह भी लिखा है कि मनुष्य जाति में अब तक कोई आदमी, जिस गइराई पर नहीं पहुंचा, उस पर वह पहुंचकर वापस आ गए हैं। तब मुझे बड़ी हैरानी हुई कि मुझ जैसे अज्ञानी को सुनने इतने ज्ञानियों को नहीं आना चाहिए था...

(पुनः हस्तक्षेप)
सुन तो लें पूरी बात, इतनी जल्दी तो नहीं है। परेशान न होइए।
(श्रोताओं से)—उनको कुछ न कहिए, उनको बैठा रहने दीजिए। बीच-बीच में बोलें, त ो कोई हर्जा नहीं, थोड़ा ज्यादा आनंद आएगा। उनमें इतनी उत्सुकता मत लीजिए। अ ाप तो बैठ जाएं। उनमें इतनी उत्सुकता लेने की कोई बात नहीं...
(पुनः गड़बड़ी)
आप लोग बैठ जाएं, कुछ कहते हैं तो हर्ज भी नहीं है। बैठ जाएं, आप उनकी फिक्र न करें।
जिस व्यक्ति को भी ऐसा ख्याल पैदा हो जाए कि मुझे ज्ञान उपलब्ध हो गया है, उसे अब किसी और ज्ञान की जरूरत नहीं रह जाती। जिसे भी यह ख्याल हो जाए कि उ सने परमात्मा को पा लिया है, तो अब पाने को कुछ शेष नहीं रह जाता है। उसकी खोज खत्म हो गई। एक अर्थ में वह आदमी, वह व्यक्ति, अब और किसी अन्वेषण में जाने में असमर्थ हो गया। अंतिम खोज पूरी हो गई। बहुत लोगों को यह ख्याल पैदा हो सकता है।
मैं नहीं कहता कि उनका ख्याल गलत है। लेकिन एक बात पक्की है, चाहे सही हो, चाहे गलत। जिस आदमी को यह ख्याल हो गया है कि मैंने सब जान लिया है, अब जानने का उसे और उपाय नहीं रहा। उसकी जानने की कोशिश अब व्यर्थ परेशानी पै दा करती है, और कुछ भी पैदा नहीं करती। एक व्यक्ति ही नहीं, पूरा समाज भी इ स भ्रम में पड़ सकता है कि, हमने जान लिया है। हमारा देश ऐसे ही भ्रम में बहुत ि दन तक रहा है कि, हमने जान लिया है।
और सब जानने के भ्रम के कारण ही तीन हजार वर्षों से, भारत में कोई नई किरण नहीं उतरी, कोई नया द्वार नहीं खुला, और हमने कोई नई खोज नहीं की। क्योंकि अ ब पूरे समाज को यह ख्याल पैदा हो गया कि सब जान लिया गया, तो अब और जा नने को क्या शेष रह जाता है।
आइंस्टीन से कोई पूछ रहा था, मरने के आठ दिन पहले, कि आप एक वैज्ञानिक बुि द्ध के व्यक्ति में और एक अवैज्ञानिक बुद्धि के व्यक्ति में क्या फर्क करते हैं? आइंस्टी न ने कहा, वह सुनने, समझने जैसा है।
आइंस्टीन ने कहा—अगर एक वैज्ञानिक व्यक्ति से आप सौ प्रश्न पूछें, तो निन्यानवे प्रश्न नों के संबंध में तो वह यह कह देगा, कि मुझे पता नहीं है। सौवें प्रश्न के संबंध में व ह कहेगा, मुझे पता है, लेकिन बहुत थोड़ा। क्योंकि कल और पता हो जाएगा, परसों और पता हो जाएगा। ज्ञान रोज विकासमान है, इसलिए जो मैं कहता हूं इस शर्त के साथ, कि अभी तक जो जाना गया है, वह इतना है। ज्ञान पूरा नहीं है, पूर्ण नहीं है। लेकिन एक अवैज्ञानिक आदमी के बारे में आइंस्टीन ने कहा—अगर आप सौ प्रश्न पूछें, तो वह सौ की जगह एक सौ एक के उत्तर देगा, और हर उत्तर पर दावा करेगा ि क यह उत्तर पूर्ण है, और आखिरी है। इसके आगे उत्तर नहीं हो सकता।

मनुष्य को अज्ञान में रखने का बड़े से बड़ा कारण जो है, वह है ज्ञान की सर्वज्ञता, पू र्णता का भ्रम।
जिस समाज को, जिस व्यक्ति को, जिस राष्ट्र को, यह मस्तिष्क में आफसेशन, यह प ागलपन पकड़ जाए कि सब जान लिया गया, उस आदमी की ज्ञान की सब यात्राएं स माप्त, उसकी नौका किनारे से बंध गई, अब यात्रा आगे नहीं हो सकेगी।
मैं नहीं कहता वह गलत है, लेकिन इतना मैं कहता हूं कि अब उसकी जीवन में कोई अर्थवत्ता, कोई जरूरत नहीं रह गई है। वह व्यर्थ हो गया। इसीलिए तो पुराने लोग कहते हैं कि जिसका ज्ञान पूर्ण हो जाता है, उसे फिर पृथ्वी पर भेजने की कोई जरूर त नहीं पड़ती। उसे मोक्ष में भेज देते हैं। फिर यहां कोई जरूरत नहीं है।
यहां जीवन अधूरा है प्रतिदिन, और सब ज्ञान अधूरा रहेगा सदा। कितना ही हम जानें , फिर भी जानने को अनंत शेष रह जाता है। यही तो परमात्मा की अनंतता है, इनफिनिट है। हम एक तरफ कहते हैं, परमात्मा अनंत है, और दूसरी तरफ एक आदमी कहता है, मैंने परमात्मा को जान लिया है। इन दोनों में क्या अर्थ हुआ।
अगर परमात्मा अनंत है, तो मैं कितना ही जान लूं, तो भी अनंत जानने को सदा शे ष रह जाएगा और मैं कभी दावा नहीं कर सकता कि मैंने जान लिया। परमात्मा के अनंत होने का एक ही अर्थ हो सकता है कि हम सीमित, कितना जान सकेंगे?
हम एक किनारे से थोड़ा-सा स्वाद ले लें, काफी है, लेकिन जो स्वाद ले लेगा अनंत का, जो भी थोड़ा-सा स्वाद ले लेगा, जो थोड़ा भी आंख खोल सकेगा उस प्रकाश की तरफ, वह यह भूल ही जाएगा कि मैं, और जानता हूं। क्योंकि उस प्रकाश में मैं तो खो जाता है ऐसे ही, जैसे सुबह सूरज निकलता है, पत्तों पर बड़े ओस के कण सूरज की रोशनी में विलीन हो जाते हैं। ऐसे ही हम, हमारे मैं, उस प्रकाश की रोशनी में विलीन हो जाते हैं।
इसलिए उपनिषदों ने कहा है कि जो कहता हो मैं जानता हूं, जान लेना, वह कम-से-कम निश्चित है कि नहीं जानता है। जो कहता हो कि मैं जानता हूं, निर्णय दे दिया उसने कि वह नहीं जानता है। क्योंकि यह दावा बहुत गहरे में सूक्ष्मतम अहंकार है। काई आदमी दावा कर सकता है, मैं धनी हूं। कोई आदमी दावा कर सकता है, मैं प द वाला हूं। कोई आदमी दावा कर सकता है, मैं ज्ञानी हूं। कोई आदमी दावा कर स कता है, मैं त्यागी हूं, लेकिन सब दावे के पीछे एक ही खड़ा हुआ है, और वह मैं ज्ञा न की, सत्य की प्रकाश की यात्रा में, सबसे बड़ी बाधा है।
मैं कोई पूर्ण ज्ञानी नहीं हूं, इसलिए किसी से कोई झगड़ा नहीं है—कोई झगड़ा नहीं है। और मुझे अपने को अज्ञानी मान लेने में जितना सुख मालूम पड़ता है, उतना किसी और चीज में मालूम नहीं पड़ता। क्योंकि अज्ञानी हूं तो खोज सकता हूं। तो परमात्मा और शेष रह गया है, उसे और जाना जा सकता है। और कभी नहीं चाहता कि यह खोज बंद हो जाए, इसे हम जानते ही चलें, जानते ही चलें। हम उसे कितना ही जा न लें, तो भी वह शेष रह जाएगा। क्योंकि जिस दिन ऐसा हो जाए कि परमात्मा भी

पूरा जान लिया गया, उस दिन आत्महत्या के सिवाय क्या उपाय रह जाएगा? फिर करने को क्या बचता है?

बर्ट्रेण्ड रसल ने कहीं एक मजाक लिखी है। लिखा है कि मैं स्वर्ग या मोक्ष जाने से बहुत डरता हूं। किसी ने पूछा, क्यों?

बर्ट्रेण्ड रसल ने कहा--इसलिए डरता हूं कि एक तो मोक्ष में कोई प्रश्न नहीं होंगे; क्योंकि वहां सभी ज्ञानी होंगे। पूर्ण ज्ञानी वहां रहते हैं। कोई बातचीत नहीं हो सकेगी। क्योंकि किससे कौन बात करेगा? और बड़े मजे की बात है, वहां खोजने को कुछ न होगा, करने को कुछ न होगा, जीने को कुछ न होगा, बस बैठे रहना, बैठे रहना! होना और होना! बहुत बोर्डम पैदा हो जाएगी।

बर्ट्रेण्ड रसल कहता है--मोक्ष जाने से बहुत डर लगता है। और वहां से लौटने का भी उपाय नहीं, यानी एंट्रेंस है, एक्जिट नहीं है। एक दफा चले गए, वापस लौटने का उपाय नहीं। कितना ही तड़पो, लौटने का रास्ता ही नहीं है।

मोक्ष से लौटने का सवाल कहां है? बर्ट्रेण्ड रसल कहता है कि अज्ञानी ही भले, पूर्ण ज्ञान से तो क्षमा चाहते हैं।

रवीन्द्रनाथ मर रहे हैं। जिस दिन मृत्यु हुई है, सुबह एक आदमी ने रवीन्द्रनाथ को आकर कहा; बूढ़ा आदमी है, रवीन्द्रनाथ को प्रेम करता है। कहा कि अब प्रभु से प्रार्थना करो कि अब दुबारा जगत में न भेजे, मुक्ति दे दे, मोक्ष दे दे, आवागमन से छुटकारा दे दे।

रवीन्द्रनाथ आंख बंद किए पड़े थे। आंख खोली, कहा--क्या कहते हैं? मैं, और मुक्ति मांगू? नहीं, मैं तो मांगूंगा, निरंतर मुझे वापस भेज देना। अभी बहुत जानने को शेष रह गया, अभी बहुत जीने को शेष रह गया। और मैं मुक्ति मांगू? तो परमात्मा को बड़ा एतराज हो जाएगा! उसने भेजा, और मैं मुक्त होना चाहता हूं। मैं मुक्ति नहीं मांगूंगा; क्योंकि उसके बंधन ही बड़े आनंदपूर्ण थे। और इस जगत की यात्रा बड़ी रस से भरी थी। मैं चाहूंगा अगर मुझे योग्य पाया हो, तो बार-बार भेज देना, ताकि यह खोज, यह जीना, यह जीवन की अनंत-अनंत दिशाओं में यात्रा जारी रहे। मैं मुक्ति नहीं मांग सकता हूं।

लेकिन कुछ लोग, कुछ समाज, कुछ परंपराएं मृत हो गई हैं--धारणा पकड़ कर कि सब जान लिया, सब पा लिया, सब हो गया। फिर मृत्यु के, महामृत्यु के, महा अंत के और क्या है? उन मित्र ने जो प्रश्न पूछा है वह भी बहुत बढ़िया है, इस पर भी थोड़ी बात कर लेनी चाहिए।

उन्होंने पूछा है--क्या आप भारतीय संस्कृति को गलत मानते हैं?

भारतीय और अभारतीय का सवाल नहीं है। आज तक मनुष्य के जीवन में जिस संस्कृति से हमने व्यवस्था दी है, अगर वही सही होती, तो जीवन के सारे दुख, सारी पीड़ाएं, सारे तनाव, सारी चिंताएं विदा होनी चाहिए थीं। पांच हजार वर्षों के प्रयोग के बाद, चिंताएं निरंतर बढ़ती चली गई हैं, दुख गहरा होता चला गया है। आदमी ज्यादा पीड़ित, ज्यादा परेशान होता चला गया है...।

(पुनः हलचल)
उन्हें जाने दें, जाना हो तो। दरवाजा खोल दें, वह परेशान हो रहे हैं, उनको जाने दें। आप सब बैठिए।
मनुष्य की जो भी समाज-व्यवस्था, जो भी सभ्यता, जो भी संस्कृति हमने निर्मित की है, ये उसी के फल हैं। हमने जो धारणाएं निर्मित की हैं, जो संस्कार निर्मित किए हैं, ये उसके ही परिणाम हैं। यह सवाल भारतीय, अभारतीय का बिलकुल नहीं है। सवाल है ढांचे का कि पुराना ठीक है या नए की खोज करें।
अगर पुराना ठीक है, तो फिर हम पुराने ढांचे में ही जिए चले जाएं, अगर पुराना ठीक साबित न हुआ हो, तो हम नए संस्कार, नई संस्कृतियां, नई शिक्षाओं, नई दिशाओं की खोज करें। यह सवाल है। यह भारतीय, अभारतीय का सवाल ही नहीं है।
आज तक मनुष्य ने एक ढंग से सोचा था। उस ढंग से सोचकर हमने प्रयोग भी किया है। आदमी ने जीने की कोशिश भी की है, परिणाम क्या है? परिणाम अत्यंत फेडिक, अत्यंत दुखद आया है। जीवन हमारे सामने खड़ा है, यह परिणाम है! क्या इस जिंदगी को ही आगे दोहराए चले जाना है? या कोई बदलाहट चाहिए? जैसे मैं उदाहरण के लिए दो-चार बातें कहूं--
जैसे हमने पुराने समस्त इतिहास में सब मनुष्यों को राष्ट्रीयता सिखाई--भारतीय होना, चीनी होना, जापानी होना, जर्मन, इंग्लिश, अमरीकी, रूसी। पुरानी पूरी संस्कृतियां देशी, राष्ट्रीय, एक भूगोल की सीमा को मानकर जीती हैं। उनका आग्रह था, हम विशिष्ट हैं दूसरों से। भारतीय होना विशिष्ट होना है, चीनी होना विशिष्ट होना है, जापानी होना विशिष्ट होना है।
ये सारी संस्कृतियां राष्ट्रीय थीं। और राष्ट्रीय संस्कृतियों ने जितने युद्ध और हिंसा और परेशानी दी है, अब आगे भी राष्ट्रों को बनाए रखना है, या विदा कर देना है? क्या मनुष्यता को एक होना चाहिए पूरी पृथ्वी को या खंड-खंड में टूट कर ही हमें जिए चले जाना है? पुरानी सब संस्कृतियां राष्ट्रीय थीं। भविष्य की संस्कृति अंतर्राष्ट्रीय ही हो सकती हैं।
अगर हमने सोच-विचार के काम किया, तो वह भारतीय नहीं होगी, चीनी नहीं होगी, जापानी नहीं होगी, मानवीय होगी। ह्यूमन होगी, जागतिक होगी, युनिवर्सन होगी। खंड-खंड में तोड़कर हमने कितना उपद्रव पैदा किया है, यह आज सोचना बहुत मुश्किल मालूम पड़ता है।
अगर हम तीन हजार वर्षों का इतिहास उठाएं, तो आदमी रोज लड़ता रहा है सत्य के नाम पर! धर्म के नाम पर! जाति के नाम पर आदमी लड़ता ही रहा है। अगर पूरे इतिहास की किताब कोई पढ़कर कहे, तो कहना पड़ेगा, मनुष्य की परिभाषा करने में अरस्तू कहता है--मैन इज ए रेशनल एनिमल, आदमी बुद्धिशाली प्राणी है।
इतिहास देखकर कहना पड़ेगा, नहीं, मैन इज ए वारिंग एनिमल। आदमी युद्ध करने वाला प्राणी है। तीन हजार साल सिवाय युद्ध के हमने कुछ भी नहीं किया है। और सारी शक्ति युद्ध के अस्त्र-शस्त्र खोजने में लगा दी है। आज जमीन पर इतनी गरीबी है

, इतना दुख है, लेकिन सारी जमीन की और साठ प्रतिशत संपत्ति नए बम ईजाद करने में संलग्न है। और राष्ट्रों के कारण! अगर राष्ट्र न हों, तो यह सारी संपत्ति मनुष्य को सुखी करने में संलग्न हो सकती है।

नहीं, पुरानी खंड-खंड पृथ्वी आगे अखंड होनी चाहिए। रूसी पहला अंतरिक्ष यात्री यूरी गागरिन आकाश में उठा—पहला आदमी! उसने पृथ्वी के वायुमंडल को छोड़ा। लौटने पर उसके मित्रों ने पूछा, ऊपर जाकर तुम्हें कैसा भाव उठा? पहला क्या भाव उठा? किस की याद आई?

यूरी गागरिन ने कहा, क्षमा करना, रूस की याद नहीं आई, याद आई मेरी पृथ्वी की, माई अर्थ, माई रसा नहीं, मेरा रूस नहीं। क्योंकि दूरी से देखने पर सारी पृथ्वी एक मालूम पड़ी, पहली दफे पता चला कि पृथ्वी एक है। खंड सब आदमी के बनाए हुए हैं। पृथ्वी बिलकुल एक है, कोई खंड नहीं है। मेरी पृथ्वी! ऐसा भाव उठा। उसमें अमरीका भी था, रूस भी था, चीन भी था—सब थे! और पृथ्वी अखंड थी।

मनुष्य जितना ऊंचा उठेगा, चाहे आकाश में चाहे अंतरात्मा में, उतने खंड गिरते चले जाएंगे। जितना ऊंचा उठेगा आदमी, उतने खंडों के ऊपर उठेगा। जितना नीचा गिरेगा आदमी, उतना खंडों में गिरेगा।

भारतीय संस्कृति भी बड़ा खंड है। अगर भारत में गांव-गांव घूमे, तो पता चलेगा—महाराष्ट्र अलग संस्कृति है, गुजरात अलग संस्कृति है, तमिल अलग, आंध्र अलग, मलयाली अलग! और गुजरात में भीतर प्रवेश कर जाएं, तो पता चलेगा—सौराष्ट्र अलग, गुजरात अलग! और भीतर घुसते चले जाएं तो पता चलेगा—सबके अपने-अपने, बहुत ही छोटे-छोटे आंगन हैं। इन छोटे-छोटे आंगनों को पृथ्वी में बांट दें अगर हम, तो सिवाय कलह के और युद्ध के क्या पैदा हो सकता है?

इसलिए मैं कहता हूं, अब तक की संस्कृतियां भारतीय थीं, जापानी थीं। अगर अच्छी दुनिया बनानी है, तो आने वाली संस्कृति भारतीय नहीं होगी। जापानी नहीं होगी। पूर्वी नहीं होगी, पश्चिमी नहीं होगी—संस्कृति होगी, मनुष्य की होगी, पूरी पृथ्वी की होगी, सार्वलौकिक होगी, सार्वजनीन होगी, हम सबकी होगी। एक पृथ्वी, वन वर्ल्ड, एक जगत की होगी। इसलिए भारतीय संस्कृति और गैर-भारतीय संस्कृति के भेद में और विचार में पड़ने का कोई प्रयोजन नहीं है।

यह भी ध्यान रहे—अब तक की सारी संस्कृतियां मनुष्य के संबंध में बहुत गहरे अज्ञान पर खड़ी हैं। असल में, मनुष्य के संबंध में हमारा ज्ञान ही बहुत कम है। हम पदार्थ के संबंध में जितना जानते हैं, उतना मनुष्य के संबंध में नहीं जानते। तीन हजार-साढ़े तीन हजार साल पहले, मनु ने एक संस्कृति का आधार रखा था।

साढ़े तीन हजार साल पहले आदमी के संबंध में ज्ञान इतना कम था कि जिसका कोई हिसाब लगाना मुश्किल है। उस ज्ञान के आधार पर मनु ने कुछ सूत्र बनाए। उस समय के ज्ञान के लिए शायद वे श्रेष्ठतम सूत्र रहे होंगे। साढ़े तीन हजार वर्षों में आदमी के ज्ञान ने अदभुत गति की है। इतना विकास हुआ है कि अगर हम आदमी के पूरे ज्ञ

ान का प्रयोग करें, तो एक बिलकुल ही, और तरह की संस्कृति निर्मित होगी, जो कि अतीत में कभी निर्मित नहीं हुई थी। उदाहरण के लिए—

एक आदमी सिगरेट पी रहा है। तो पुरानी संस्कृति कहती है कि सिगरेट पीना पाप है। बंद करो, सिगरेट मत पियो। पांच हजार साल से हम समझा रहे हैं, सिगरेट मत पियो। कोई फर्क नहीं पड़ता है। सिगरेट पीने वाला पिये ही चला जाता है। रोज सिगरेट पीने वाला बढ़ता चला जाता है। अरबों, खरबों रुपये की आदमी सिगरेट पीता है, तंबाकू पीता है, चिलम पीता है। हजार उपाय हैं, कितना हमने चिल्लाया कि सिगरेट मत पियो। कितना हमने समझाया कि नुकसान होता है, लेकिन आदमी पिये चला जाता है। क्या हम चिल्लाते रहें आगे भी? पांच हजार साल काफी नहीं है चिल्लाने के लिए?

नहीं, नया ज्ञान मनुष्य के बाबत यह कहता है कि जो आदमी तंबाखू खाता है, या सिगरेट पीता है, उसके शरीर में निकोटिन की कमी है और जब तक निकोटिन की कमी है, कोई शिक्षा काम नहीं करेगी। निकोटिन पूरा हो, आदमी सिगरेट से, धूम्रपान से मुक्त हो सकता है।

मैक्सिको में एक बड़ी लेबोरेट्री पिछले पंद्रह वर्षों से काम करती रही है, और नतीजे बहुत अदभुत हैं। एक बूंद निकोटिन की, आपके शरीर में डाल दी जाए, फिर आप सिगरेट पिएं, तो बिलकुल कचरा मालूम पड़ेगी। वह सिगरेट से जो निकोटिन जा रहा है, वही आपको जरूरी मालूम पड़ रहा है। उसी के लिए आप सिगरेट पिए चले जा रहे हैं। नया मनुष्य अब इसकी फिक्र छोड़ देगा—कि तुम जाओ और सिगरेट मत पियो। जो बच्चे सिगरेट पीने लग जाते हैं, मां-बाप उनका परीक्षण करवा सकें कि उनमें निकोटिन की कमी तो नहीं है—कमी है, तो निकोटिन की कमी पूरी कर दो। सिगरेट पीने वाला बच्चा खबर दे रहा है कि शरीर में कहीं कुछ कमी है। आप हैरान होंगे, अस्सी परसेंट लोगों के शरीर में निकोटिन की कमी है। थोड़े बहुत लोगों के शरीर में नहीं है कमी। वह कुछ प्राकृतिक भूख मालूम पड़ती है। बहुत कम लोगों के शरीर में निकोटिन पूरा है। लेकिन जिसके शरीर में पूरा है वह सिगरेट न पीने से महात्मा हो जाएगा?

मामला सिर्फ निकोटिन का है और कुछ भी नहीं है। मनुष्य के संबंध में हमारा ज्ञान इतना बड़ा है, एक-एक चीज के संबंध में हमारा ज्ञान इतना बड़ा है कि अब हम पुरानी बातों को दोहराए चले जाएं, जिनसे कोई फल नहीं मिलता, परिणाम नहीं मिलता, बहुत गलत बात है।

हम हजारों साल से यह मानते रहे हैं कि एक आदमी इसलिए गरीब है कि उसके भाग्य में गरीब होना लिखा है। अब यह बात नहीं मानी जा सकती। यह बात सरासर झूठ है। किसी के भाग्य में गरीब होना नहीं लिखा है।

समाज की व्यवस्था गरीब और अमीर को पैदा करती है। अगर समाज की व्यवस्था बदल जाए, तो गरीब-अमीर को मिटाया जा सकता है, बिना किसी भाग्य की रेखा को

जरा भी छुए। बीस करोड़ लोग रूस में एक भाग्य के हो गए। बीस करोड़ लोग! वह ी खोपड़ी है, वही हाथ की रेखाएं हैं। कोई फर्क नहीं पड़ा है हाथ की रेखाओं में। हम अभी अपने मुल्क में जानते हैं, सैकड़ों राजा थे मुल्क में। एक व्यवस्था से वे विदा हो गए। सैकड़ों राजाओं की हाथ की रेखाएं एकदम से राजा होने की न रह गई हों, ऐसा नहीं हो सकता। हिरोशिमा में एटम गिरा, एक लाख आदमी मरे। उनके हाथ की रेखाएं देखें, किस-किस की मौत आ गई थी एक साथ? एक लाख आदमियों की मौत आ गई एक साथ! एक घड़ी में! हाथ की रेखाएं झूठी साबित हो गई हैं।
भाग्य की रेखाएं, समाज की व्यवस्थ की सुरक्षा है। भाग्य की कोई रेखा नहीं है इस तरह की कि किसी को गरीब बनाए, किसी को अमीर बनाए। पुरानी सारी संस्कृति भ ाग्य पर, कर्म पर है, और एक-एक आदमी की अपनी जीवन व्यवस्था पर निर्भर थी, समाज की व्यवस्था का कोई बोध नहीं था। सोशल कंसेप्ट ही नहीं था, कोई समाज क ी धारणा नहीं थी।
क्या हम इसी को दोहराए चले जाएं? एक भिखमंगे को यही कहें कि तेरा भाग्य है ि क तू भीख मांग रहा है। और धनपति को समझाएं कि तुम दो पैसे इसे दान देते चले जाओ क्योंकि तुम्हारा सौभाग्य है कि तुम्हें दान देने का अवसर मिला है। यह हम क हते रहें?
इससे गरीबी तो नहीं मिटेगी। इससे गरीबी नहीं मिट सकती है, आगे भी नहीं मिट स कती है। और जिस समाज को, जिस जाति को यह ख्याल हो जाए भाग्य का, वह दे श एकदम शक्तिहीन हो जाता है। भाग्य एकदम इम्पोटेंस ला देता है, सब तरफ निवी र्य छा देता है। क्योंकि भाग्य से हम खत्म हो गए।
अगर भाग्य नहीं है, और हमें कुछ करना है, तो शक्तियां जगती हैं। परमात्मा सबके भीतर है और बड़ी शक्तियां लिए भीतर है। लेकिन भाग्य ने सबके परमात्मा को एक दम शक्तिहीन कर दिया है। पुरानी संस्कृति भाग्यवादी थी, फेटलिस्ट थी। मनुष्य की भविष्य की संस्कृति भाग्यवादी नहीं हो सकती है। मनुष्य की भविष्य की संस्कृति पुरुषा र्थ की होगी।
अगर गरीबी है, तो मिटाएंगे। अगर बीमारी है, तो मिटाएंगे। अगर उम्र कम है, तो बढ़ाएंगे। नहीं, अब यह नहीं चलेगा कि एक आदमी मान कर बैठ जाए कि मेरी उम्र सत्तर साल की थी, इसलिए सत्तर साल जिया। आदमी की उम्र कितनी भी बढ़ाई जा सकती है। और वैज्ञानिक इस ख्याल में है कि कोई भी आदमी कितने ही लंबे समय तक जीवित रखा जा सकता है। और आज नहीं कल, पचास वर्षों के भीतर, हम य ह सूत्र खोज लेंगे कि आदमी को अंतहीन काल तक जीवित रखा जा सके।
एक अमरीकी अरबपति मर गया है पांच वर्ष पहले—अपनी लाश को वैज्ञानिकों को सौं प गया है। और कई करोड़ रुपये का फंड सौंप गया है साथ में कि उसकी लाश को फ्रीज करके, ठंडा करके सुरक्षित रखा जाए तब तक, जब तक मनुष्य को पुनरुज्जीवि त करने और लंबी उम्र देने का नियम न मिल जाए। जिस दिन मिल जाए, उस दिन उसकी लाश को पुनरुज्जीवित किया जाए।

वह लाश सुरक्षित है, उस पर भारी खर्च हो रहा है और वैज्ञानिकों को आशा है कि ि
जस दिन सूत्र मिल जाएगा, उस दिन लाश को पुनरुज्जीवित दिया जा सकेगा।
दुनिया कहां जा रही है? मनुष्य का ज्ञान क्या खोज रहा है? लेकिन नहीं, वह पुराने ढांचे की बुद्धि, वह क्या कहती है? पुरी के शंकराचार्य ने भी क्या कहा? उन्होंने कहा
, यह चांद!क आदमी गया ही नहीं, यह आर्मस्ट्रांग वगैरह सब कपोल-कल्पनाएं हैं, स
ब कोरी बकवास है। कोई कहीं गया नहीं। सब अफवाह हैं। और अगर पहुंच भी गए हों तो यह असली चांद नहीं है। असली चांद हमारा, शास्त्रों का, सूरज के भी आगे है
।
दुनिया हंसेगी हम पर, हमारे बच्चे भी कल हंसेंगे हम पर, और सोचेंगे कि किस तरह
 के लोग हैं। उसका कारण है। पुरानी संस्कृति मानती थी, सब पा लिया गया,सब जा
न लिया गया। आगे अब कुछ जानने को नहीं है। उन्होंने जो सूत्र और नियम बनाए थे, उस समय के ज्ञान के लिए पर्याप्त थे। लेकिन ज्ञान रोज आगे बढ़ रहा है।
जिनने गणना की है, वे लोग कहते हैं कि अट्ठारह सौ वर्षों में जीसस से लेकर, जित
ना ज्ञान विकसित हुआ था, उतना पिछले डेढ़ सौ वर्षों में विकसित हुआ। और पिछले
 डेढ़ सौ वर्षों से जितना ज्ञान विकसित हुआ था, पंद्रह वर्षों में हुआ है। और पिछले पंद्रह वर्षों में जितना विकसित हुआ है, आने वाले डेढ़ वर्ष में होगा। इतनी तीव्रता से
 ज्ञान का विस्तार और फैलाव है, हम जीवन के बाबत इतना जान रहे हैं, जिसकी ि
क कल्पना करनी कभी संभव नहीं थी।
इन सबको ध्यान में रखकर, नई संस्कृति निर्मित करनी पड़ेगी। नई संस्कृति का पुराने
 से कोई बहुत संभव होने वाला नहीं है। नई संस्कृति के सारे आधार नए होंगे। बच्चों
 को हम शिक्षा दे रहे हैं। सारी शिक्षा हमारी बहुत पुराने ढांचे की है। जो नवीनतम खोज हो गई है, उसकी एप्लीकेशन अभी मुश्किल मालूम पड़ रही है।
रूस में वे एक नया प्रयोग कर रहे हैं। वे प्रयोग कर रहे हैं कि बच्चों को बजाय दिन में शिक्षा देने के, रात में स्लीप-टीचिंग देना ज्यादा उचित होगा। दिन भर बच्चे खेलें,
 क्योंकि बच्चों का खेलना टूट जाता है, जो कि एक बहुत बड़ा नुकसान है।
पांच साल के बच्चे को हम स्कूल में भर्ती कर देते हैं। उसका बचपन बुढ़ापे में बदलन
ा शुरू हो जाता है। पांच साल के बच्चे को स्कूल में भर्ती कर दिया। वह कभी खेल नहीं पाया, आनंद से नाच नहीं पाया, तैर नहीं पाया, वृक्षों पर चढ़ नहीं पाया, पहाड़ि
यों पर दौड़ नहीं पाया। बस्ते का बोझ ही उसका पहाड़ बन गया। स्कूल की सीढ़ियां उतरना-चढ़ना ही उसका सारा खेल हो गया।
पांच-छः घंटे, पांच साल के बच्चे को हम स्कूल में बिठा देते हैं। उसकी सारी बुद्धि क
ो जड़ता उपलब्ध हो जाती है। सारा मन कुंठित हो जाता है। अभी दौड़ने का वक्त थ
ा, छलांग लगाने का, कहीं रुकने का नहीं चंचल होने का। हमने थिर होकर उसे पांच
 घंटे बिठा दिया।
स्कूल से छुट्टी होते वक्त देखा है आपने? बच्चे कैसे जोर से चिल्लाते हुए स्कूल से बा
हर निकलते हैं? जैसे किसी कारागृह से बाहर निकले हों। वह कारागृह हो गया है। व

ह कारागृह है। लेकिन अभी तक कोई उपाय नहीं है, यह हमारी समझ के बाहर था ि
क हम क्या करें।

रूस में मनोवैज्ञानिकों ने नया प्रयोग सफल कर लिया है, और वह कहते हैं कि बच्चों
को दिन भर खेलने दो, कूदने दो, नाचने दो, जो उन्हें करना हो। उनका बचपन मत
छीनों; क्योंकि बचपन एक बार छीन लिया गया, फिर दुबारा नहीं मिलेगा।

और ध्यान रहे, जिसका बचपन छीन लिया गया, उसकी जवानी भी थोड़ी अधूरी रहेग
ी। क्योंकि वह बचपन के जो आधार, उनकी जवानी को जो ताजगी देते, वह कभी र
खे ही नहीं गए। वह छिटक गए, वह बिखर गए। दिन भर खेलने दो, उससे बचपन
मत छीनो।

रात में उसके सोते में एक स्लीप-टीचिंग हो सकती है। रात सोते में उसके कान के प
ास टेप रिकार्डर लगाकर, उसे सारी शिक्षा दी जा सकती है, जो दिनों में, महीनों में
नहीं दी जा सकती। उस पर वे सफल होते चले जा रहे हैं।

निश्चित ही आने वाले स्कूल रात में लगा करेंगे। बच्चे स्कूल में जाकर सो जाएं, दिन
भर घर रहें, रात स्कूल में सो जाएं। सुबह घर लौट आएं। ये संभावनाएं बढ़ती चली
जा रही हैं, और बड़ी अदभुत संभावनाएं आदमी खोज रहा है।

एक शिक्षक मरता है, तो अब तक हमारे पास एक ही उपाय है कि अगर मैं कुछ जा
नता हूं, तो मैं आपको बताऊं तभी आपको पता चलेगा। एक शिक्षक मरेगा, तो उस
का जो ज्ञान है, उसकी जो स्मृति है, वह सब उसके साथ नष्ट हो जाएगी। वैज्ञानिक
सफल हो गए हैं इस बात में, कि मैमोरी को ट्रांसप्लांट किया जा सके। एक आदमी
मरे, तो उसकी सारी स्मृति एक नए बच्चे को दी जा सके--सारी स्मृति का, पूरी स्मृ
ति का ढांचा निकालकर बच्चे को दिया जा सके।

ये इतनी बड़ी संभावनाएं हैं कि सारी शिक्षा दूसरी होगी। मनुष्य के संबंध दूसरे होंगे।
अब तक हम यही सोचते थे कि हर बच्चे को मां-बाप के पास पाला जाना चाहिए। य
ह बहुत सोचने-विचारने पर गलत साबित होता चला जा रहा है।

और इतनी हैरानी की बात पता चल गई है कि मां-बाप के पास जब तक बच्चे पढ़ते
हैं, तब तक अच्छे बच्चे पैदा करना मुश्किल है। उसके कई कारण समझ में आते हैं,
जो हमें ख्याल में भी नहीं हो सकते।

एक बच्चा अपनी मां के पास बड़ा होता है। बीस साल तक वह एक ही स्त्री को जान
ता है, अपनी मां को! उसके प्रेम को जानता है। और किसी स्त्री को नहीं जानता है,
और किसी के प्रेम को नहीं जानता है। उसके मन में स्त्री की एक इमेज, एक धारणा
बन जाती है। उसके अचेतन मन में स्त्री की एक कल्पना प्रविष्ट हो जाती है, जो उ
सकी मां के आधार पर निर्मित होती है। अगर उसको ऐसी पत्नी मिल जाए, जो ठी
क उसकी मां जैसी है, तब तो यह दाम्पत्य सफल होगा, अन्यथा कलह निश्चित है।
और हर आदमी अपनी पत्नी से उसी कलह में पड़ा हुआ है, वह मां की खोज कर र
हो है, जाने-अनजाने! और मां कहां मिलने वाली है? और? और हर पत्नी अपने पि

ता की खोज कर रही है, लेकिन पिता कहां मिलने वाला है? वह जो इमेज उनके म न में बैठ गया है पुरुष और स्त्री का, वही खोज चल रही है।

इसलिए सारी दुनिया का दाम्पत्य एक कलह है। ऊपर से हम कुछ कहें, ऊपर से हम मुस्कराएं, ऊपर से हम बताएं कि सब ठीक है, लेकिन जो खोज करते हैं, जो खोज में भीतर जाते हैं, उन्हें पता है कि चेहरे पर मुस्कराहटें हैं, भीतर बड़ी कलह है।

मैंने सुना है, एक आदमी की औरत मर गई। वह रो रहा है। औरत की अर्थी बांधी गई और घर के बाहर निकाली जा रही है। बाहर एक पीपल का दरख्त है, अर्थी उस से टकरा गई। वह औरत मरी नहीं थी, सिर्फ बेहोश थी, टकराने से हिल गई। उसने आवाज दी कि मुझे बांधा हुआ क्यों है? अर्थी उतारनी पड़ी। औरत तीन साल तक और जिंदा रही। फिर दुबारा मरी। जब अर्थी निकाली जाने लगी, वह आदमी रो रहा है। लेकिन अर्थी निकालने वालों से कहा कि भाइयो, सम्हालकर निकालना, फिर दरख्त से न टकरा जाना।

भीतर सब कलह हो गई है। भीतर छुटकारे का भाव है। कितनी बार पत्नी सोचती है आत्महत्या कर लें। नहीं करती है, दूसरी बात है। कुछ तो कर ही लेती हैं। कितनी बार पति सोचता है, कहां चला जाऊं? दब जाऊं, कहां चला जाऊं? लेकिन पुरानी संस्कृति उस ढांचे का जरा भी नहीं समझ पाती कि बात क्या है। मानव-शास्त्र कहेगा बात यह है कि वह जिसे खोज रहा है, वह नहीं मिल सकता। तो किसी बच्चे को मां के पास पालना एकदम बहुत खतरनाक है।

इजरायल में उन्होंने कुछ प्रयोग किए हैं, किबुत्ज नाम की एक व्यवस्था से। बच्चों को स्कूल में पाला जा रहा है, नर्सरीज में पाला जा रहा है। एक नर्स तीन महीने से ज्यादा बच्चे के पास नहीं रहेगी। बीस की उम्र तक पहुंचते-पहुंचते बच्चे के करीब बहुत तरह की स्त्रियां आएंगी—मां भी आएगी कभी, मिलने आएगी, चली आएगी। कभी बच्चा दिन दो दिन के लिए घर जाएगा, फिर वापस लौट आएगा। एक बच्चा इतनी स्त्रियों के परिचय में आएगा कि उसके पास स्त्री की कोई फिक्स इमेज, कोई ठहरा हुआ चित्र नहीं होगा। वह किसी भी स्त्री के साथ एडजेस्ट हो सकता है। फिक्स्ड इमेज हुआ, ठहरा हुआ चित्र हुआ, तो फिर समायोजन बहुत मुश्किल है।

बीस साल के अनुभव से उन्होंने जो नतीजे निकाले हैं, वह यह है कि इजरायल में पति-पत्नी के बीच जैसा प्रीतिपूर्ण संबंध पैदा हो रहा है, वैसा पृथ्वी पर कभी भी नहीं रहा होगा।

मां से छुड़ाना पड़ा बच्चे को। आमतौर से हम सोचते हैं कि मां के पास बच्चा नहीं पलेगा, तो सब गड़बड़ हो जाएगा। और एक मजे की बात हुई कि मां के पास बच्चा पलता है, तो मां चौबीस घंटे तो प्रेम नहीं दे सकती?—चौबीस घंटे प्रेम देना बड़ा टौडिअस काम है। बड़ा महंगा, मुश्किल काम है कि चौबीस घंटे प्रेम देना पड़े—घंटे-आधे घंटे चलता है।

प्रेम चौबीस घंटे चला, तो भारी और वजनी हो जाती है बात। मां चौबीस घंटे तो प्रेम नहीं दे सकती। घड़ी-आधी घड़ी प्रेम देगी। नाराज भी होगी, मारेगी भी, डांटेगी भी

। खुश भी होगी। बच्चे के मन में मां के प्रति प्रेम भी पैदा होग घृणा भी पैदा होगी— दोनों एक साथ होगी। जब वह नाराज होगी, तब बच्चा घृणा करेगा और जब वह प्रे म करेगी, तब बच्चा प्रेम करेगा।

एक ही औब्जेक्ट, एक ही व्यक्ति के प्रति प्रेम और घृणा, बच्चे का मन बड़ा खतरना क काम्पलेक्स हो जाएगा। इसलिए बाद में वह जिसको भी प्रेम करेगा उसको साथ में घृणा भी करेगा। यह बड़ी मुश्किल बात है। हम जिसको प्रेम करते हैं, उसको हम कह ीं किसी कोने पर घृणा भी करते हैं। इसलिए प्रेम को घृणा में बदल जाने में क्षण भर की भी देर नहीं लगती। प्रेम कभी भी घृणा बन सकता है।

अगर मेरी आपकी बहुत दोस्ती है, बहुत प्रेम है, जरा सी बात और सब घृणा में बद ल जाएगा। घृणा पीछे खड़ी है। दूसरा हिस्सा है। इसी सिक्के का दूसरा हिस्सा है। वे कहते हैं, मां के पास बच्चे को अगर पाला पूरे वक्त, तो घृणा और प्रेम एक ही व्यकि त से जुड़ जाएंगे जो जिंदगी भर व्यक्ति के मन को द्वंद्व में रखेंगे कांफ्लिक्ट में रखेंगे। उचित है कि बच्चे को मां से दूर पालो। मां कभी मिलने आएगी, तो प्रेम करेगी, ब च्चा कभी घर जाएगा, तो प्रेम करेगी। प्रेम का ही भाव मां के प्रति बनेगा, घृणा का नहीं।

और एक व्यक्ति के प्रति प्रेम का अगर बीस साल तक भाव बने, तो वह व्यक्ति कांि फ्लक्ट के बाहर होता है। वह एक व्यक्ति को बिना घृणा किए प्रेम करने में सफल हो जाता है।

पूरी संस्कृति के आधार, परिवार के आधार बहुत गलत हैं। बहुत ही गलत हैं। लेकिन जो नया ज्ञान मनुष्य के जीवन के संबंध में, रोज नए अध्याय खोल रहा है—हम कुछ अंधे हैं, हम उस सबका कुछ प्रयोग नहीं करना चाहते। नई कार आती है, हम उस का उपयोग कर लेते हैं। नया मकान बनता है, हम नया मकान बना लेते हैं।

आदमी, आदमी के संबंध में जो नई खोज होती है, उसका उपयोग नहीं करता। और सब चीजों में नया हो जाता है। फाउंटेन-पेन नया आ जाएगा, कार नई आ जाएगी, सड़क नई बन जाएगी, हवाई जहाज नया आ जाएगा—पदार्थ के संबंध में जितनी खोज होती है, आदमी उसका उपयोग करता है। आदमी के संबंध में जो खोज होती है, उ सके बाबत आदमी बहुत डरता है।

क्योंकि खुद के संबंध में प्रयोग करने में पूरे जीवन की व्यवस्था बदलनी पड़ेगी, और उसमें डर लगता है कि हम उसके मामले में पुराने ही बने चले जाते हैं। सब नया हो गया है, सिर्फ आदमी पुराना है।

और सब नए के साथ पुराना आदमी बहुत बेमौजूं हो गया है, एब्सर्ड हो गया है। उस का कोई तालमेल नहीं बैठता है। और इसलिए तकलीफ हो गई है। फिर कुछ बुद्धिमा न लोग कहते हैं, जो नया हो गया है, उसको भी पुराना कर दो। हवाई जहाज छोड़ो, रेलगाड़ी छोड़ो, मशीन छोड़ो, बड़ी मशीन की जरूरत नहीं है—सब छोड़ दो पुराने हो जाओ। और बाहर भी पुराना कर लो।

एक रास्ता तो यह है कि हम बाहर भी सब पुराना कर लें। मनु के जमाने में जो बैल गाड़ी थी, उस पर ही चलें, तो मनु की स्मृति की समाज-व्यवस्था चल सकती है। और मनु के जमाने में जो इंतजाम था जीवन का, वही हम बाहर भी स्वीकार करें।
नहीं! बाहर तो हमने आइंस्टीन तब आई हुई दुनिया को स्वीकार कर लिया और मनुष्य के भीतर मनु को पकड़े हुए हैं। आइंस्टीन और मनु के बीच साढ़े तीन हजार साल का फासला है। हमने हर आदमी के भीतर साढ़े तीन हजार साल का तनाव, टेंशन पैदा कर दिया है, हम उसको चिंता में डाले हुए हैं। मुश्किल में डाले हुए हैं।
दो रास्ते हैं--या तो बाहर भी हम पीछे लौट चलें। कोई राजी नहीं होगा। कोई राजी नहीं है, होना भी नहीं चाहिए। कौन राजी होगा वापस लौट जाने को? पीछे आदिम हो जाने के लिए? फिर दूसरा रास्ता यह है कि हम आदमी को आगे ले आएं। आदमी के संबंध में जो भी नवीनतम ख्याल आए हैं, उनका भी हम प्रयोग कर लें। सब बदलना पड़ेगा--विवाह की व्यवस्था, परिवार की व्यवस्था, मां-बाप के संबंध, सब बदलने पड़ेंगे। तो शायद अब तक जो हमने बनाया है, उससे एक भिन्न समाज बन जाए।
जो खोजते हैं, उन्हें क्या दिखाई पड़ता है? उन्हें यह दिखाई पड़ता है कि हर आदमी इतना पीड़ित और परेशान है कि अपनी पीड़ा और परेशानी निकालने के हजार उपाय खोजता है। रास्ते पर कोई आदमी लड़ रहा है, आप भीड़ लगाकर खड़े हो जाते हैं। कभी आपने सोचा है, आप क्यों देखने के लिए उत्सुक हो जाते हैं? दो आदमी लड़ रहे हैं, आपको क्या मतलब है?
नहीं! आप हजार जरूरी काम छोड़कर भीड़ में खड़े हो गए हैं। और भीतर से दिल धडक रहा है और बड़ी प्रतीक्षा कर रहे हैं कि हो जाए कुछ जोरदार। कस-म-कस हो जाए, मुक्केबाजी हो जाए, तो आनंद आ जाए। पुलक आ रही है भीतर।
हालांकि ऊपर से भीड़ लगे हुए लोग कहेंगे, भाई क्यों लड़ रहे हो? लड़ो मत। भीतर कहेंगे कहीं ऐसा न हो कि लड़ें ही न! लड़ जाएं तो आनंद हो जाए। अगर उन्होंने मान ली भीड़ की बात और कहा--अच्छा आप कहते हैं तो हम नहीं लड़ते, तो भीड़ बडी उदास वापस लौटेगी। कुछ भी नहीं हुआ बेकार समय जाया हुआ। और अगर वह लड़ गए, तो हमें भी बहुत रस आएगा। किस बात का रस आ रहा है?
हम भी लड़ना चाहते हैं। लड़ नहीं पाते हैं, तो आइडेंटिटी खोज रहे हैं कि लड़ाई हो, तो हम देख लें। फिल्म देखते हैं आप? डिटेक्टिव फिल्में हैं, स्टंट पिक्चर्स हैं, गोलियां चल रही हैं, कारें एक दूसरे के पीछे पागल होकर दौड़ रही हैं, तब आपने देखा--फिल्म के हाल में क्या हो जाता है? सबकी रीढ़ एकदम से सीधी हो जाती है।
योगी कितना ही सिखाएं कि रीढ़ सीधी रखना, कोई नहीं सुनता। लेकिन जब स्टंट फिल्म में कोई कार किसी के पीछे दौड़ती है पागल होकर, पहाड़ी रास्तों पर मोड़ लेती है, तब आप देखें, फिल्म के भीतर एक आदमी कुर्सी से टिका हुआ मिल जाए, समझना कि बहुत अदभुत आदमी है। सबकी रीढ़ सीधी हो जाएगी। जरा भी चूक न जाए, और सबके हाथ-पैर में गति आ जाएगी, जैसे आप ही कार को चला रहे हों, या आपका ही पीछा किया जा रहा हो।

हम आइडिन्टिटी कर रहे हैं। नहीं तो स्टंट फिल्में कौन देखेगा? और जासूसी कहानियां कौन पढ़ेगा? जो पढ़ रहे हैं, जो देख रहे हैं, उसके पीछे भीतर कारण हैं। युद्ध में कौन रस लेगा? युद्ध होता है, तो कितनी ताजगी छा जाती है? सुबह जो आदमी आठ बजे उठता है वह पांच बजे उठकर रेडियो खोलने लगता है कि क्या खबर है! जो कभी सुबह देखा नहीं, जिसने सूरज उगते नहीं देखा, वह बाहर खड़े होकर रास्ता देखता है, अखबार वाला कब आ जाए!

युद्ध शुरू होने के बाद आपने देखा, आदमी कितने ताजे मालूम पड़ते हैं? गति मालूम पड़ती है, हाथ-पैर में ताकत मालूम पड़ती है, शिथिल, ढीले-ढाले नहीं हो जाते, कुछ हो रहा है।

भीतर हमारे युद्ध की बड़ी आकांक्षा है कुछ हो जाए, बुरे की बड़ी आकांक्षा है, क्योंकि हम बहुत क्रोध में, बहुत दुख में, बहुत पीड़ा में जी रहे हैं। कुछ हो जाए, उस कुछ हो जाने में हम बड़ा रस लेते हैं। उस रस में रुग्ण भाव है। जब तक मनुष्य का जीवन भीतर से दुख से भरा है, तब तक बाहर के युद्ध बंद नहीं हो सकते।

जब तक मनुष्य भीतर से परेशान है, तब तक बाहर से शांति की सब बातें फिजूल हैं। विनोबा से लेकर बर्ट्रेंड रसेल तक सारे लोग शांति की बातें करते हैं। लेकिन शांति नहीं हो सकती। क्योंकि आदमी को जो आपने व्यवस्था दी है, वह उसे भीतर से अशांत और परेशान कर देती हैं। एक-एक आदमी अशांत है, तो दुनिया शांत कैसे हो सकती है?

जब तक एक-एक आदमी शांत न हो जाए, दुनिया में शांति खोजनी असंभव है। क्योंकि दुनिया हम सबका जोड़ है, और क्या है? संस्कृति बदलनी पड़ेगी। यह सवाल भारतीय का नहीं है। यह संस्कृति पुरानी है, वह जो अब तक हमने सोचा और जाना था, उससे बहुत ज्यादा जाना गया है। उसका प्रयोग करना पड़ेगा।

घबड़ाहट क्या है? पुराने का प्रयोग हो चुका—काफी हो चुका, पांच हजार वर्ष किसी भी प्रयोग को देने के लिए काफी है। नए की प्रयोग करने की हिम्मत जुटानी चाहिए। हो सकता है, नया भी असफल हो जाए, तो हम और नए को खोजेंगे। डर क्या है? जिंदगी तो खोज है निरंतर, अगर यह भी असफल हुआ, और नया खोजेंगे। असफलता भी नए की तरफ ले जाएगी।

आइंस्टीन एक युवक के साथ एक रिसर्च का, शोध-कार्य में लगा हुआ था। उन्होंने सात सौ प्रयोग किए। सब प्रयोग असफल हो गए। वह युवक इस बूढ़े के साथ प्रतिदिन प्रयोग करता है और असफल हो जाता है प्रयोग! परंतु आइंस्टीन उसी उत्साह से रोज सुबह फिर हाजिर है। उतनी ही खुशी से फिर प्रयोग शुरू कर रहा है। उसने आइंस्टीन से पूछा, हम सात सौ बार असफल हो गए, आप थक नहीं गए?

आइंस्टीन ने कहा, असफल? हम, सात सौ बार असफल नहीं हुए। सात सौ दिशाओं में हमने खोज लिया। सात सौ दिशाएं असफल हो गईं। हम जीतते चले जा रहे हैं। कम दिशाएं बची हैं। धीरे-धीरे और मिनिम्वइजेशन हो जाएगा, और दिशाएं खत्म हो

जाएंगी, फिर एक ही बच जाएगी। जहां सफल होना निश्चित है। हमारी जीत चल र ही है। सिर्फ एक तरह के लोग हार जाते हैं जो प्रयोग करना बंद कर देते हैं!
हमने तो बंद ही कर दिए हैं प्रयोग हजारों साल से। हम कोई प्रयोग नहीं करते। हम छोटा-मोटा प्रयोग भी नहीं करते हैं। हम तो बंधी हुई लीक पर चलने के लिए आदी हो गए हैं--आटोमेटा मशीन हो गए हैं, आदमी नहीं है। बंधी हुई लीक है। पिता ऐसा करते थे, उनके पिता ऐसा करते थे, उनके पिता ऐसा करते थे। उनके बेटे भी वैसा ही किए चले जा रहे हैं।
यह शुभ नहीं है। बगावत चाहिए, विद्रोह चाहिए, नए के प्रयोग की कोशिश चाहिए। नया भी गलत हो सकता है, लेकिन प्रयोग न करने से गलत, कोई प्रयोग नहीं हो स कता। प्रयोग करना ही चाहिए। होगा गलत, छोड़ेंगे और नए का प्रयोग करेंगे। पुराना मनुष्य का ढांचा असफल हो गया है। यह कोई कहने की बात है? हम अपने को दे खकर कह सकते हैं। हम फल हैं उस ढांचे के। एक और प्रश्न--
एक मित्र ने पूछा है कि भीतर जाने में यदि कोई पागल हो जाए, तो क्या करें?
उन मित्र को पता नहीं, जब तक कोई बाहर है तब तक ही पागल होता है। भीतर जाने में पागलपन छूटना शुरू होता है। लेकिन ऐसा हो सकता है कि भीतर गया हुआ आदमी दूसरों को पागल मालूम पड़ने लगे।
मेरे एक मित्र हैं, वे पागल हो गए हैं, 1936 में, बूढ़े आदमी हैं अब तो वे, पागल हो गए हैं घर से भाग गए। तो कहीं भी कुछ उपद्रव किया। आगरा में अदालत ने उन को छः महीने की सजा दे दी। लेकिन देखा अदालत ने कि आदमी पागल है, तो उन्हों ने कहा कि यह सजा पागलखाने में बिताई जाए। वह लाहौर के पागलखाने में भेज दि ए गए।
वह मुझसे कहते थे कि दो महीने तक बड़े मजे में दिन कटे; क्योंकि मैं भी पागल था और तीन सौ पागल और मिल गए थे। मित्र मिल गए, समाज मिल गया था बहुत मजे में दिन कटे। दो महीने बाद फिनैल का एक डब्बा कहीं रखा हुआ मिल गया पाग लखाने में, तो उठाकर पी गए। फिनैल का डब्बा पी लिया, तो इतनी कै, इतने दस्त हुए कि सारे मस्तिष्क की और शरीर की गर्मी निकल गई, तो वह ठीक हो गए।
लेकिन वे मुझसे कहते थे कि जब मैं ठीक हो गया, तब मेरी असली मुसीबत शुरू हुई। क्योंकि तीन सौ आदमी पागल थे--कोई मेरी टांग खींचता है, कोई मेरा कान पकड़ ता है, कोई चांटा मार जाता है, कोई मेरे ऊपर बैठ जाता था। दो महीने तक मैं भी यह कर रहा था, तो कोई गड़बड़ न थी, सब ठीक था।
अब वहां तीन सौ आदमी के बीच, एक आदमी जो पागल नहीं है, उसकी मुसीबत है। वह चिल्ला-चिल्ला कर कहता है डाक्टरों से कि मैं पागल नहीं हूं। लेकिन डाक्टर कहते हैं, यह तो सभी पागल कहते हैं। इसमें तो कोई बात ही नहीं है। वह जितना जोर से चिल्लाता है, डाक्टर कहते हैं, शांत रहो! यह सभी पागल कहते हैं। जोर से चिल्लाओगे ते और बड़ी सजा हो सकती है। वह मुझसे कहते थे कि चार महीने मैंने

ऐसा नर्क भोगा कि मैं भगवान से रोज प्रार्थना करता कि कोई तरकीब से मुझे फिर पागल कर दे।

पागलों के बीच ठीक हो जाना बड़ा मुश्किल मामला है। भीतर जाने वाला आदमी पागल नहीं होता। लेकिन बाहर की भीड़ को पागल दिखाई पड़ सकता है। जीसस हमें पागल ही दिखाई पड़े, नहीं तो हम सूली पर लटकाते? लगा कि यह आदमी पागल है। खत्म करो इस आदमी को। सुकरात हमें पागल ही मालूम पड़ा, नहीं तो हम जहर पिलाते! लगा, यह आदमी पागल है, इसे खत्म करो।

भीतर गया आदमी हमें पागल मालूम पड़ सकता है, लेकिन भीतर गया आदमी पागल होता नहीं। बाहर ही हम पागल हैं। हम करीब-करीब पागल हैं। हमारे पागलपन में डिग्री के फर्क हैं। एक आदमी ज्यादा पागल है, तो दिखाई पड़ने लगता है। हम नार्मल पागल हैं, तो हमें कभी पता नहीं चलता।

जिंदगी चलती चली जाती है। लेकिन हम थोड़ी खोज-बीन करेंगे, तो हमें पागलपन के लक्षण अपने में मिलने कठिन नहीं हैं।

एकांत में चले जाएं, द्वार बंद कर लें, एक कागज और कलम ले लें और लिखें कि आपके मन में क्या चलता है। आधा घंटे तक जो भी चलता हो, उसे लिख डालें। और फिर किसी मित्र को दिखाएं। वह एक दफा कागज को देखेगा और दूसरी दफा आपको देखेगा। फिर कागज को देखेगा, फिर आपको देखेगा। वह कहेगा, जल्दी बैठिए रिक्शे में, किसी डाक्टर के पास ले चलें। आपके दिमाग को यह क्या हो गया है? ये तुम्हारे भीतर कैसी बातें चलती हैं।

हालांकि अगर वह मित्र भी एकांत में बैठकर लिखेगा, तो ये ही बातें उसके भीतर भी चलती हैं। और अगर वह जिस डाक्टर के पास ले जा रहा है, वह भी एकांत में लिखेगा, उसके भीतर भी यही बातें चलती हैं। कोई फर्क नहीं है। लेकिन हम भीतर झांकते ही नहीं हैं कैसा पागलपन है भीतर? कभी आप, आप कभी झांकें, खोजें, तो पता चलेगा, क्या-क्या पागलपन के ख्याल उठते हैं। कैसे-कैसे विचार उठते हैं। हम उन्हें दबाए हुए हैं।

पागल वह है, जो दबाना भूल गया और निकल गया। हम संयमी भी पागल हैं, संयम साधे हुए हैं। लेकिन जरा में संयम टूट सकता है, दिवाला निकल जाए, पत्नी मर जाए, कुछ भी हो जो। जरा में सब गड़बड़ हो सकता है। और भीतर की सब भाप बाहर आ सकती है। जरा सी स्थिति में बदलाहट हो सकती है। 99 डिग्री पर सब उबल रहे हैं। 100 डिग्री हो जाए, तो भाप बन जाए।

यह जो हमारी हालत है यह स्वस्थ हालत नहीं है। भीतर जितने हम गहरे जाएंगे, उतना हम स्वास्थ्य के करीब पहुंचेंगे, क्योंकि भीतर वह सोर्स, वह केंद्र है, जहां से जीवन की धाराएं मिलती हैं।

आपने ख्याल किया होगा, पागल आदमी की नींद चली जाती है। और जिसकी नींद चली जाए, उसके पागल होने का डर पैदा होता है; क्योंकि नींद में भर हम भीतर जाते हैं थोड़ा-सा। जिंदगी में जागते, तो कभी जाते नहीं। गहरी नींद हो जाती है, तो भ

ीतर चले जाते हैं। और भीतर के जो जीवन के रस-स्रोत हैं, उनको लेकर वापस लौट आते हैं। इसीलिए सुबह हम ताजा लगते हैं। सुबह की ताजगी, रात को भीतर उतर जाने का फल है।

जो जितनी गहरी नींद सोता है, उतना ताजा हो जाता है। अगर रात भर नींद न आए, तो सुबह हम पागल जैसे हो जाते हैं। अगर दस-पंद्रह दिन नींद न आए?

चीन में वह एक काम करते थे, सजा देते थे, एक कठिन-से-कठिन सजा थी—जिसको फांसी से भी ज्यादा कठिन सजा देनी होती अब फांसी से ज्यादा कठिन और क्या होगा ? तो उसे एक खास सजा देते थे।

वह सजा यह थी कि उसे एक कोठी में खड़ा कर देते थे, जिस कोठी में चारों तरफ से भाले छिदे होते हैं। वह आदमी जरा भी यहां-वहां हो, तो भाले छिद जाएं और उसकी खोपड़ी पर एक-एक बूंद पानी टपकता रहता था—टप, टप, टप—चौबीस घंटे! नींद उसको आ नहीं सकती। हिलेगा, डुलेगा, जरा ही नींद आई, झपकी लगी कि भाला छिद जाएगा। और वह टप-टप जो है, वह उसकी खोपड़ी को खा रही है ऊपर से। टप-टप, जब वह परेशान हुआ जा रहा है। धीरे-धीरे टप-टप ऐसा मालूम होने लगा जैसे पहाड़ टूट रहा है। निरंतर, निरंतर, और नींद नहीं आ सकती। पंद्रह दिन में वह आदमी विक्षिप्त हो जाएगा।

पंद्रह दिन भी बहुत ताकतवर लोग टिक सकते हैं। आमतौर से तीन दिन में आदमी पागल हो जाएगा। यह सबसे बड़ी सजा दी फांसी के बाद। ईजाद करने वाले लोग हुए हैं, खतरनाक लोग हैं। वह क्या-क्या ईजाद कर लें, नहीं कहा जा सकता।

लेकिन एक बात तय है कि हम जितनी गहरी नींद में आते हैं उतने ताजे होकर वापस लौटते हैं। भीतर हम जितने उभरते हैं।

अभी नींद का बहुत विश्लेषण चलता है—अमरीका में कोई दस लेबोरेट्रीज खड़ी की गई हैं, जिनमें कोई दस हजार लोगों पर प्रयोग चलता है। रोज रात को सैकड़ों आदमी सुलाए जाते हैं, उनकी नींद की जांच करने के लिए। जिस आदमी को सपने चलते रहते हैं, वह आदमी सुबह उठकर कहता है कि ताजगी नहीं आई, और रात भर करीब-करीब सपने चलते रहते हैं। बहुत कम लोग हैं, जिनको थोड़ी-बहुत देर के लिए सपने बंद होते हैं।

जितनी देर के लिए सपना बंद होता है, उतनी देर तक नीचे डुबकी लग जाती है। और अब तो जांचने के उपाय हैं। मशीन जांच लेती है कि आदमी कितना गहरा गया है नींद में। सपने में चलता है, तो ग्राफ ऊपर बनता है। गहरा जाता है तो नीचे; क्योंकि जो खोपड़ी की नसें हैं, वह सपने मग चलती हैं तेजी से, नींद आती है, शिथिल हो जाती है। गति बिलकुल धीमी हो जाती है। कौन आदमी कितनी गहरी नींद में गया है?

उन्होंने जो हिसाब लगाया है, वह यह है कि जो आदमी जितनी गहरी नींद में चला जाता है, उस आदमी के पागल होने की उतनी कम संभावना है। और जो आदमी नीं

द में ऊपर-ही-ऊपर घूमता रहता है, उसके पागल होने का कभी भी डर है—एक छोट
ी-सी चीज उसे पागल कर देगी।

तो नींद में तो हम बेहोश होकर भीतर जाते हैं और धर्म हमें वह प्रक्रिया सिखाता है
कि हम होश से भीतर पहुंच जाएं। नींद में तो बेहोश भीतर हम जाते हैं। धर्म हमें व
ह प्रक्रिया और विज्ञान और मैथड सिखाता है कि हम कैसे होशपूर्वक भीतर पहुंच जा
एं।

तो भीतर जाने से कोई कभी पागल नहीं होता। दूसरों को पागल दिखाई पड़ सकता
है। लेकिन, अगर कोई भी आदमी भीतर जाना शुरू करेगा, तो पहले-पहले उसको भी
लगेगा कि कहीं मैं पागल तो नहीं हो रहा। उसका कारण है—उसका कारण यह है ि
क उसने कभी भीतर झांका ही नहीं। पागल तो हम हैं। भीतर कभी झांका ही नहीं,
इसीलिए तो पता नहीं चलता। झांकेंगे तो पता चलेगा।

एक लड़का खेल रहा है हाकी। उसके पैर में चोट लग गई है, खून बह रहा है। वह
खेल में तल्लनी है। सारी भीड़ को दिखाई पड़ रहा है कि उसके पैर से खून बह रहा
है। उसको भर पता नहीं है। पता नहीं होने से खून नहीं बह रहा है, ऐसा नहीं है, खू
न तो बह रहा है। लेकिन उसकी पूरी अटेंशन, पूरा ध्यान खेल में उलझा हुआ है। खे
ल बंद हुआ, और वह एकदम कहता है—अरे! मेरे पैर में चोट लग गई है। चोट अभी
नहीं लगी, चोट लगी ही थी, अब पता चला है; क्योंकि ध्यान उस तरफ गया।

जो लोग बाहर ही बाहर भटक रहे हैं—दुकान में, बाजार में, मंदिर में, मस्जिद में घूम
रहे हैं, उनको भीतर का ध्यान भी नहीं है वहां पागलपन इकट्ठा हो रहा है। जब को
ई आदमी भीतर जाएगा, तो पहली दफा उसे पता चलेगा कि यह क्या है, कहीं मैं पा
गल तो नहीं हो रहा?

पागल नहीं हो रहे हैं। पागलपन था भीतर, पहली दफा ध्यान गया है। और अगर ध्या
न गया है, तो पागलपन मिट सकता है। क्योंकि ध्यान से बड़ी चीज पागलपन को मिट
ाने की, और कोई भी नहीं है। और अगर ध्यान बाहर ही बाहर भटकता रहा, तो पा
गलपन भीतर इकट्ठा होता चला जाएगा।

जुंग ने, जिसने अपनी जिंदगी में शायद पृथ्वी पर सर्वाधिक पागलों का इलाज किया,
और पागलों के संबंध में इससे बड़ा कोई जानकार खोजना मुश्किल है। जुंग ने लिखा
है कि मैंने जितने लोगों का अनुभव किया है जो पागल हो गए हैं, उनमें मुझे ऐसा म
ालूम पड़ता है, वे लोग अधिक हैं जिनका धार्मिक साधना से कोई भी संबंध नहीं रहा
है।

एक मनोवैज्ञानिक यह कहे, तो हैरानी की बात है। कह रहा है वह यह कि जो लोग
पागल हो गए हैं, मुझे ऐसा लगता है कि उनकी जिंदगी में धर्म से कोई भी संबंध नह
ीं रहा है।

पश्चिम में जोर से पागलपन बढ़ा है, पूरब में पागलपन थोड़ा कम है। पश्चिम में जोर
से बढ़ा है। अमरीका में तो डर है कि पचास वर्ष ऐसे ही चला तो कौन किससे इला

ज करवाएगा, यह तय करना मुश्किल हो जाएगा। जोर से पागलपन बढ़ता चला गया है। स्वीकृत हो गया सामान्य बीमारी हो गई। क्यों?

भीतर जाने के सब द्वार हमने छोड़ दिए हैं, भीतर हम जाते ही नहीं।

नींद का एक द्वार था प्राकृतिक, वह भी छोड़ दिया है। रोशनी पैदा हो गई है, रात दिन में बदल गई है। अब रात सोने की कोई जरूरत नहीं है। रात नाचो तीन-चार बजे तक, गीत गाओ, कूदो-खेलो, रात भर का तनाव, दिन भर का तनाव, लेटो बिस्तर पर, करवटें बदलो। सुबह सिर उठाओ, फिर दौड़ शुरू हो जाए। आदमी पागल नहीं होगा तो और क्या होगा?

भीतर जाना बंद हुआ है, उससे आदमी पागल हो रहा है। भीतर हम जितने जाएंगे उतने हम ओरीजनल सोर्स, यह हमारे भीतर जो उदगम है जीवन का, शक्ति का, वहां हम पहुंचते हैं। वहां से हम उतनी ही ताकत लेकर बाहर आते हैं। अगर कोई व्यक्ति यह कला सीख जाए भीतर जाने की तो दिन में कई बार भीतर जा सकता है, जब आंख बंद करे भीतर चला जाए। एक डुबकी ले, ताजा हो, बाहर आ जाए। जिंदगी बिलकुल और ही हो जाएगी।

हम अपने दरवाजे पर खड़े हैं। घर के दरवाजे पर बाहर धूप है, हम भीतर चले जाते हैं। फिर भीतर सर्दी लग रही है। हम बाहर चले आते हैं। अगर जीवन साजपूर्वक जिया जाए, तो अपने भीतर और बाहर जाना इतना ही आसान है, जैसे घर के बाहर जाना और भीतर आना। इतना ही आसान है।

पर जिस दिन इतना आसान अनुभव धीरे-धीरे प्रविष्ट हो जाता है, उस दिन आदमी देखता है कि बाहर! बाहर तो सिर्फ जीना है। जीवन के मूल स्रोत भीतर हैं। बाहर तो केवल संबंध हैं, सत्य भीतर है। बाहर तो केवल एक विस्तार है, गहराई भीतर है।